इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

IKKISAVIN SADI KI AADIVASI HINDI KAVITA KA VISHLESHNATMAK ADHYAYAN

[मिज़ोरम विश्वविद्यालय के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध]

कुसुम कुमारी

KUSUM KUMARI

MZU Regn.No.6897of 2014

Ph.D. Regn.No.: MZU/Ph.D/806 of 21.05.2015

हिंदी विभाग

DEPARTMENT OF HINDI

शिक्षा एवं मानविकी संकाय

SCHOOL OF EDUCATION AND HUMANITIES

दिसंबर-2020

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

IKKISAVIN SADI KI AADIVASI HINDI KAVITA KA VISHLESHNATMAK ADHYAYAN

प्रस्तुति,

कुसुम कुमारी

हिंदी विभाग

By
Kusum Kumari
Department of Hindi

शोध-निर्देशक

डॉ. सुषमा कुमारी

Supervisor
Dr. Sushma Kumari

सह- शोध- निर्देशक

डॉ. प्रीति राय

Joint supervisor
Dr. Priti Rai

[मिज़ोरम विश्वविद्यालय के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध]

Submitted
In partial fulfilment of the requirement of the degree of Doctorate of Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl.

हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आइज़ोल -796004

केंद्रीय विश्वविद्यालय
A Central University
(Accredited by NAAC with 'A' Grade)

Department of Hindi
Mizoram University
Aizawl - 796004

दिनांक -03/12/2020

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कुसुम कुमारी** ने मेरे निर्देशन में हिंदी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजोल से डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी (पीएच.डी) हिंदी की उपाधि हेतु **'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन'**, विषय पर शोध- कार्य किया है। प्रस्तुत शोध कार्य शोधार्थी की अपनी निजी गवेषणा का फल है यह इनका मौलिक कार्य है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, प्रस्तुत शोध- प्रबंध या इसके किसी भी अंश को किसी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी प्रकार की उपाधि हेतु अद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं प्रस्तुत शोध- प्रबंध को मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजोल की मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति करती हूँ।

प्रीति राय

(डॉ. प्रीति राय)
सह - शोध-निर्देशक

(डॉ. सुषमा कुमारी)
शोध-निर्देशक

घोषणा- पत्र

मैं **कुसुम कुमारी** एतद द्वारा घोषित करती हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विषय सामाग्री मेरे द्वारा किए गए शोध –जहाँ तक मुझे ज्ञात है, न किसी अन्य को कोई उपाधि प्रदान की गयी है न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में प्रस्तुत किया गया है-कार्यों का सुपरिणाम है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध मिज़ोरम विश्वविद्यालय के सम्मुख हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी (पीएच.डी) हिंदी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(प्रो.संजय कुमार)	(डॉ. सुषमा कुमारी)	प्रीति राय (डॉ. प्रीति राय)	(कुसुम कुमारी)
अध्यक्ष	शोध-निर्देशक	सह-शोध निर्देशक	अनुसंधित्सु

भूमिका

प्रस्तुत शोध- प्रबंध का विषय है- 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन'। 'आदिवासी' शब्द सुनते ही आँखों के समक्ष सबसे पहले आदिवासियों की रंग–बिरंगी पोशाक के चित्र उभरने लगते हैं जो अपने विशेष प्रकार के नृत्य-गीत के लिए प्रसिद्ध हैं। आदिवासी विमर्श के साथ अब हम जानने लगे हैं कि ये विभिन्न क्षेत्रों में विविध भाषा और विविध पहनावे के साथ रहते हैं। ये वर्षों से गैर आदिवासियों द्वारा छले जाते रहे हैं और आज अपने अस्तित्व व अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे हैं। आज आदिवासी और गैर आदिवासी मिलकर आदिवासी साहित्य की रचना कर रहे हैं। ऐसे साहित्य का अध्ययन- अध्यापन भी हो रहा है। मैंने भी इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं के माध्यम से आदिवासी समाज को समझने का प्रयास किया है।

एम.ए. की पढ़ाई करने के पश्चात मेरे मन में अपनी पढ़ाई आगे जारी रखने की इच्छा जगी। मुझे मिज़ोरम विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. करने का अवसर प्राप्त हुआ। विषय-चयन हेतु मेरे गुरुजनों ने मेरा मार्गदर्शन किया। प्रो. संजय कुमार, डॉ. सुषमा कुमारी, डॉ. प्रीति राय और डॉ. अमिष वर्मा ने मुझे सलाह दी कि आदिवासी कविताओं में कम शोध हुए हैं, तो मुझे कविताओं पर ही शोध कार्य करना चाहिए। मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई क्योंकि अन्य विधाओं की अपेक्षा मुझे कविता में अधिक रुचि रही है। विभाग के सभी शिक्षकों के मार्गदर्शन में मेरे शोध कार्य का विषय - 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन' का चयन हुआ।

मुझे अपने शोध कार्य के लिए निर्देशक के रूप में डॉ. प्रीति राय को चुनने का अवसर मिला। लेकिन लगभग दो वर्ष उपरांत उनके लखनऊ जाने की वजह से डॉ. सुषमा कुमारी मेरी शोध-निर्देशक बनीं और मेरा शोधकार्य उनके मार्गदर्शन में आगे बढ़ने लगा। मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे इनके मार्गदर्शन में कार्य करने का अवसर मिला।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में इक्कीसवीं सदीं की आदिवासी हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी लोक जीवन, संस्कृति, समाज, संघर्ष और मुक्ति का इतना गहन अध्ययन-विश्लेषण कदाचित पहले नहीं हुआ होगा, जितना इसमें किया गया है। आदिवासी कविता में मौजूद आदिवासी जीवन के विविधरंगी पहलुओं, उनके संघर्ष, पीड़ाएँ, स्त्री के शोषण और स्त्री मुक्ति का विश्लेषण करना ही इस शोध-प्रबंध का मुख्य लक्ष्य है। मेरा यह शोध-कार्य अपने आप में एक मौलिक प्रयास कहा जा सकता है।

इस विश्लेषणात्मक अध्ययन में आदिवासी और गैर-आदिवासी कवियों की कविताओं को शामिल किया गया है, जिसमें कुल 45 कवियों की आदिवासी कविताओं को शामिल किया गया है, जिनमें से 34 आदिवासी कवि -कवयित्री हैं और 11 गैर-आदिवासी कवि-कवयित्री हैं। इनमें से पूर्वोत्तर के 02 आदिवासी कवि और 07 कवयित्री हैं। इस शोध कार्य में 17 कवयित्रियों की कविताओं को शामिल किया गया है जो चौथे अध्याय का आधार है। इस शोध कार्य के अध्ययन के लिए हिंदी भाषा में रचित और हिन्दी भाषा में अनूदित आदिवासी कविताओं को शामिल किया है।

भारत के लगभग सभी क्षेत्रों की आदिवासी हिंदी कविताओं का अध्ययन-विश्लेषण मेरे शोध कार्य में शामिल है, जिसमें झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश,

बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, महाराष्ट्र, असम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मेघालय और मिज़ोरम के आदिवासी-गैर आदिवासी कवियों की कविताएं शामिल की गई हैं। इस शोध प्रबंध में जिन गैर-आदिवासी कवियों को शामिल किया है उनमें रणेन्द्र, लीलाधर मंडलोई, एकांत श्रीवास्तव, चंद्रकांत देवताले और ज्ञानेंद्रपति प्रमुख हैं।

मैंने झारखंड, जहाँ सबसे अधिक आदिवासी हिंदी साहित्य रचा जा रहा है, से कविताओं को सबसे पहले शामिल किया, तत्पश्चात अन्य क्षेत्रों तथा पूर्वोत्तर से जितनी भी हिंदी कविताएँ मिलीं, सबको अपने अध्ययन में शामिल कर आदिवासी जीवन, समाज, संस्कृति, उनकी समस्याएँ-संघर्ष एवं आदिवासी स्त्री जीवन के कई अनछुए पहलुओं को इस शोध-प्रबंध में उजागर करने का प्रयास किया है।

अपने शोध कार्य हेतु सामग्री संकलन करना मेरे लिए सबसे बड़ी चुनौती रही। अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला, नई दिल्ली से मुझे कुछ सामग्री मिली, किंतु मुख्य आधार ग्रंथ की प्राप्ति मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय और मिज़ोरम की सेंट्रल लाइब्रेरी से हुई, साथ ही आदिवासी रचनाकारों से सीधे दूरभाष पर हुए संपर्क, ऑनलाइन ई-बुक, नॉटनल से मैंने सामग्री संकलन किया। सामग्री संकलन में डॉ. अमिष वर्मा सर का भी विशेष सहयोग मिला। मैं ह्रदय से उनकी आभारी हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में बांटा गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक 'आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य: अवधारणा, स्वरूप एवं विकास' है जिसके अंतर्गत दो उप-अध्याय रखे गए हैं। प्रथम उप-अध्याय है – 'आदिवासी: अवधारणा एवं स्वरूप'। यहाँ 'आदिवासी' शब्द के अर्थ सहित विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं से 'आदिवासी' शब्द के

सही अर्थ एवं स्वरूप को समझने की कोशिश की गई है। आदिवासियों की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए आदिवासी क्षेत्रों का वर्गीकरण किया गया है। आदिवासियों की विशेष पहचान बनाने वाली उनकी संस्कृति की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालने सहित आदिवासियों की प्रमुख समस्याओं पर बात की गई है। अपनी पहचान के लिए आदिवासियों द्वारा किए जा रहे प्रयासों को भी इसमें देखा जा सकता है। दूसरे उप-अध्याय 'आदिवासी साहित्य की अवधारणा' में साहित्य पर चर्चा करते हुए आदिवासी साहित्य की अवधारणा को समझने की कोशिश की गयी है। आदिवासी साहित्य को लेकर विविध मतों एवं आदिवासी और गैर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा बताई गई विशेषताओं को जान-समझकर निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति' है जिसके प्रथम उप-अध्याय 'आदिवासी समाज एवं संस्कृति' में आदिवासी समाज की विशेषताओं, समस्याओं, रूढ़ि-अंधविश्वासों एवं विकृतियों तथा उनके पीछे के कारणों को भी समझने की पूर्ण कोशिश की गई है। आदिवासियों की सांस्कृतिक विशेषताओं को समझने और उस समाज में घर कर रही विकृतियों सहित इनके बीच के आपसी संबंधों को कविताओं के उदाहरणों के माध्यम से दिखाने की कोशिश की गई है। दूसरे उप-अध्याय 'आदिवासी समाज में स्त्री' में आदिवासी स्त्री की छवि, उसके श्रम, उसकी चिंताएँ, उसकी महत्ता, समस्याएँ, समाज में उसका स्थान आदि बातों को कविताओं के उदाहरणों से समझने की कोशिश की गई है।

तृतीय अध्याय 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी मुक्ति के प्रश्न' है। इसके अंतर्गत तीन उप-अध्याय हैं। पहले उप-अध्याय 'आदिवासी संसाधनों पर कब्जे की राजनीति' में सरकार एवं उद्योगपतियों द्वारा आदिवासी संसाधनों पर कब्जा करने की छल-कपट से भरी हुई राजनीति पर चर्चा करते हुए परिणामतः पैदा हुई आदिवासियों की समस्याओं एवं उनकी पीड़ा को दिखाने का प्रयास किया गया है। दूसरे उप-अध्याय 'संस्कृति संरक्षण का सवाल' में आदिवासियों के लिए उनकी संस्कृति क्या महत्त्व रखती है, अपनी संस्कृति के प्रति उनके गहरे लगाव तथा बाहरी समाज के हस्तक्षेप के कारण उनकी संस्कृति में आई विकृति सहित संस्कृति के विलुप्त होने के उनके डर को कविताओं में मौजूद उदाहरणों से रेखांकित करने का प्रयास हुआ है। तीसरे उप-अध्याय 'आदिवासियों के पलायन की समस्या' में पलायन के विभिन्न कारण, पलायन के दर्द और उससे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं की कविता के माध्यम से पड़ताल करने की कोशिश की गई है।

चतुर्थ अध्याय 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न' को दो उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहले उप-अध्याय 'विवाह, परिवार और अर्थ स्वातंत्र्य का सवाल' में आदिवासी स्त्री की घर-परिवार में मौजूदा स्थिति, शोषण के विभिन्न स्वरूप, विवाह संबंधित उनकी परेशानियाँ, उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति और उससे जुड़े संघर्षों को दर्शाने के साथ ही इनसे मुक्ति औए विद्रोह के स्वरों को कविताओं के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है। दूसरे उप-अध्याय 'स्त्री–मुक्ति की राहें' में आदिवासी स्त्रियों के विभिन्न शोषणों पर चर्चा के साथ ही इनसे मुक्ति की राह भी सुझाई

गई है। आदिवासी समाज में भी स्त्रियाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था के शोषणकारी तंत्र से बच नहीं पायीं हैं। इसीलिए आदिवासी स्त्रियाँ आज अपने सभी तरह के शोषण जिसमें आर्थिक, मानसिक, दैहिक, राजनैतिक, पारिवारिक शोषण शामिल है, के खिलाफ विद्रोह के बिगुल बजा रही हैं। ये अपने घर, परिवार और समाज को नियंत्रित करती अंध-श्रद्धाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, चूल्हा-बिस्तर तक सीमित अपनी इयत्ता से मुक्ति के गीत गाती हैं। घर, परिवार और समाज को नयी राह दिखाती हुई ये आगे बढ़ रही हैं।

पांचवे अध्याय 'इक्कीसवीं' सदीं की आदिवासी हिंदी कविताओं का भाषागत वैशिष्ट्य' में आदिवासी कविताओं में प्रयुक्त भाषा की विशेषताओं, उसमें प्रयुक्त शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, अलंकारों, बिंब और प्रतीकों के माध्यम से आदिवासी कविताओं की विशिष्टता को रेखांकित करने का प्रयास किया है। इस अध्याय के दूसरे भाग के अन्तर्गत आदिवासी कविताओं में अभिव्यक्ति की विविध शैलियों, कविता की प्रस्तुति की मौलिकता, उसमें मौजूद गहरे भाव आदि विशेषताओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है। अंत में पूरे शोध-कार्य का निचोड़ एवं निष्कर्ष 'उपसंहार' के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मेरी, शोध-निर्देशक डॉ. सुषमा कुमारी के दिशा-निर्देशन और सहयोग से ही आज यह शोध-प्रबंध जमा हो पा रहा है। इस शोध कार्य के दौरान ही लगभग एक-डेढ़ साल तक मैं अपनी स्वास्थ्य संबंधी समस्या से ग्रसित रही, जिसके कारण पीएचडी छोड़ने का ख्याल आया। लेकिन मैम के सहयोग और प्रेरणा से ही फिर से एक नयी ऊर्जा के साथ कार्य करना शुरू किया और परिणाम यह शोध प्रबंध है। मेरी व्यक्तिगत और अकादमिक समस्या को इन्होंने जितनी बेहतर ढंग से सुलझाया, उनके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास

शब्द नहीं है। व्यस्त दिनचर्या होने के बावजूद उनके निरंतर सहयोग और कुशल मार्गदर्शन से ही यह कार्य सम्पन्न हो सका है। गैर-हिन्दी भाषी क्षेत्र में रहने के कारण मेरे लिए भी हिन्दी भाषा में लेखन कार्य मुश्किल रहा। इन्होंने इस शोध-प्रबंध में मेरी भाषिक - त्रुटियों का भी सुधार किया साथ ही आवश्यकतानुसार टाइपिंग -कार्य में भी सहयोग दिया। मैं, उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस शोध कार्य के दौरान विभाग के सभी गुरुजनों का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ। अपने विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. संजय कुमार के प्रति मैं आभार व्यक्त करती जिन्होंने समय- समय पर मुझे प्रोत्साहित किया और पीएच.डी. एक्सटेंशन में सहयोग प्रदान किया। इनके सहयोग के बिना यह शोध कार्य जमा कर पाना मुश्किल था। मैं तहे दिल से सर का शुक्रिया अदा करती हूँ। संकायाध्यक्ष प्रो. सुशील कुमार शर्मा और डॉ. अमिष वर्मा के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को पूर्ण करने हेतु समय-समय पर मुझे प्रेरित किया।

अपने सरकारी उच्च विद्यालय के पूर्व प्रधानाचार्य श्री निर्मल के. पुन और मिज़ोरम शिक्षा विभाग के पूर्व निदेशक श्री एच.लल एंगमोया के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध-कार्य हेतु अनुमति दी और छः माह का अवकाश प्रदान कर मुझे प्रोत्साहित किया और शुभकामनाएँ दीं। मेरे विद्यालय के सभी सहकर्मियों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर प्रोत्साहित किया और विद्यालय में मेरी अनुपस्थिति में मेरी कक्षाओं को संभाला।

यहाँ हिंदी में टाइपिंग करने वाले गिने-चुने हैं। इस कार्य में मिज़ोरम के हिंदी और नेपाली पत्रकार श्री आर. पी. पौड्याल, मेरी छोटी बहन समान बिनीता पाण्डेय और रोबी.... ने मेरा भरपूर सहयोग किया। इनके सहयोग के बिना भी यह शोध कार्य संपन्न नहीं हो पाता। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

मैं अपने परिवारजनों के प्रति आभारी हूँ, विशेषकर अपने जीवनसाथी के प्रति जिन्होंने प्रतिपल मेरे साथ रहकर मेरे शोधकार्य को संभव और सफल बनाया। मैं अपने दोनों बेटों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य के दौरान मुझे खाना बनाने जैसे दायित्व से मुक्त रखा और आवश्यकतानुसार मेरे इस कार्य में सहयोग दिया।

अंत में मैं अपने सारे मित्रों और शुभचिंतकों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर आगे बढ़ने और शोधकार्य को पूर्ण करने हेतु प्रोत्साहित किया।

कुसुम कुमारी

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्रमाण पत्र	
घोषणा पत्र	
भूमिका	i-viii
प्रथम अध्याय : आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य : अवधारणा , स्वरूप एवं विकास	1-38
(क) आदिवासी : अवधारणा एवं स्वरूप	
(ख) आदिवासी साहित्य की अवधारणा	
द्वितीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति	39-85
(क) आदिवासी समाज एवं संस्कृति	
(ख) आदिवासी समाज में स्त्री	
तृतीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी मुक्ति के प्रश्न	86-144
(क) आदिवासी संसाधनों पर कब्ज़े की राजनीति	
(ख) संस्कृति संरक्षण का सवाल	
(ग) आदिवासियों के पलायन की समस्या	
चतुर्थ अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न	145-209
(क) विवाह , परिवार और अर्थ स्वातंत्र्य का सवाल	
(ख) स्त्री – मुक्ति की राहें	
पंचम अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं का भाषागत वैशिष्ट्य	210-298
(क) भाषा	
(ख) शैली	
उपसंहार	299-309
संदर्भ ग्रंथ सूची :	310-316
(क) आधार ग्रंथ	
(ख) सहायक ग्रंथ	
(ग) पत्रिकाएँ	
अनुसंधित्सु का संक्षिप्त जीवन-वृत्त	317
अनुसंधित्सु का विवरण	318

प्रथम अध्याय

आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य : स्वरूप एवं विकास

(क) आदिवासी अवधारणा एवं स्वरूप

(ख) आदिवासी साहित्य की अवधारणा

प्रथम अध्याय

आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य:अवधारणा, स्वरूप एवं विकास

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश होने के साथ-साथ एक बहुलतावादी देश भी है जहाँ विभिन्न जातियां, जनजातियां, धर्म तथा संस्कृतियां पाई जाती हैं। देश की उन्नत और विकासशील समाज व्यवस्थाओं से एकदम अलग-थलग रहने तथा प्रकृति की गोद में, जंगलों में अपने ढंग से अपनी संस्कृति के साथ मस्तमौला जीवन जीने वाले आदिवासियों की अपनी एक अलग ही दुनिया है, एक अलग ही पहचान है। इनकी दुनिया में न तो छल-कपट है, न ही कोई दिखावा ।

भारत में लगभग 532 जनजातियाँ पायी जाती हैं जो भारत की जनसंख्या का करीब 7 प्रतिशत है। इनकी अपनी अलग दुनिया है जो कि पहाड़ों एवं जंगलों की दुनिया है किंतु एक उन्नत समाज के दृष्टिकोण से देखें तो ये बहुत पिछड़े हैं। हालांकि इन्हें मुख्यधारा द्वारा उपेक्षित नजरों से देखे जाने से कोई शिकायत नहीं है। उन्हें अपने आदिवासी होने पर पूर्ण गर्व है एवं अपनी दुनिया में वे बेहद खुश हैं। किन्तु आज उन पर जो बाहरी हमले हो रहे हैं, उनके साथ जो राजनीतिक साजिशें की जा रही हैं, उन सब से उनकी जीवन-शैली तहस-नहस हो रही है। उनकी सबसे बड़ी पूँजी माने जाने वाले जल, जंगल और जमीन ही उनसे छीने जा रहे हैं। अपने साथ लगातार किए जा रहे छल कपट को अब आदिवासी समाज समझने लगा है। वह विद्रोह की आवाज उठाने लगा है, आंदोलन करने लगा है। आज आदिवासी जागरूक हो रहे हैं। यह चेतना सामाजिक के साथ-साथ साहित्यिक स्तर पर भी देखने को मिलती है। आदिवासी

साहित्य ने आज हिंदी साहित्य में अपना स्थान बनाकर राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज की समस्याओं, चिंताओं, अधिकारों को मुखरता से अभिव्यक्त कर रहा है। आदिवासी लेखन कविताओं, कहानियों तथा उपन्यासों में देखने को मिल रहा हैं। इन लेखनों में आदिवासियों में उभर रही चेतना को देखा जा सकता है। 'विकास' के नाम पर आज आदिवासियों के साथ कई किस्म के छल-कपट किए जा रहे हैं। सरकार ने इनके लिए कानून तो कई बना रखे हैं किंतु ये कानून किसी काम का नहीं हैं। नतीजतन वे हारते हैं और कई बार तो उन्हें अपनी जिंदगियाँ गंवानी पड़ती हैं । अपने हक की लड़ाई में वे मारे जाते हैं। विकास के नाम पर उनसे उनकी ही सम्पत्ति अर्थात जल, जंगल और जमीन, जिन्हें वे अपनी जान से भी ज्यादा प्यार करते हैं, छिनी जा रही है। आदिवासियों को आज अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को खो देने का डर सता रहा है।

क) आदिवासीः अवधारणा एवं स्वरूप

आदिवासी शब्द दो शब्दों के मेल से बना है ' आदि ' यानी आरंभ ' वासी' यानी निवासी। तो आदिवासी का सही अर्थ निकलता है, आरंभ के निवासी। दूसरे अर्थो में कहा जाए तो मूल निवासी।

'आदिवासी' शब्द को विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया हैः- प्रो. गिलानी के अनुसार "*एक विशिष्ट भू-प्रदेश में रहने वाला, समान बोली बोलने वाला, अक्षरों की पहचान न होने वाला, समूह, गुट आदिवासी समाज कहलाता है*।"[1]

डॉ. विवेकी राय के अनुसार - *"पिछड़े, अंचलों, पहाड़ों वनों के निवासियों को आदिम-आदिवासी माना है।"* [2]

मित्रेश्वर के अनुसार, *"वह समुदाय जो आदिकालीन और प्राचीन परंपराएँ, अपने पारिवारिक-सामाजिक जीवन में, व्यवहार करता है, आदिवासी है। जन्म से मृत्यु तक चलने वाले संस्कार, ऋतुओं के आधार पर होने वाले उत्सव, पारिवारिक और सामुदायिक रीति-रिवाज की पारंपरिकता, आदिवासी होना निर्धारित करते हैं।"* [3]

गिलिन के अनुसार- *"स्थानीय आदिवासियों के किसी भी ऐसे संग्रह को हम जनजाति कहते हैं जो एक सामान क्षेत्र में निवास करता हो, एक सामान भाषा बोलता हो तथा समान संस्कृति के अनुसार व्यवहार करता हो।"* [4]

डॉ.पंडित बन्ने के अनुसार- "*एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण का समूह है, जिसकी सामान्य भूमि हो, सामान्य भाषा हो, समान्य सांस्कृतिक परंपरा हो और जिस समुदाय का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओत-प्रोत हो, एक जनजाति कहलाता है।*" [5]

आर.एन मुखर्जी के अनुसार- *"जनजाति एक वैसा मानव समूह है जिसके सदस्यों के पास आम अभिरुचि, आम भाषा, आम निवास क्षेत्र, आम सामाजिक नियम तथा आम आर्थिक पेशा होती है।"* [6]

डॉ. डी.एस. मुजुमदार - *"एक मात्र सामयिक जाति, एक ही भू-प्रदेश में निवास करने वाले, एक ही भाषा बोलने वाले, विवाह, व्यवसाय आदि में एक ही नियम का पालन करने वाले*

पारस्परिक संबंध और व्यवहार के बारे में पूर्वानुभव पर आधारित निश्चित नियमों का पालन करनेवाले पारिवारिक समूह आदिवासी जाति है।"[7]

आदिवासी समुदायों को अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जैसे प्रिमिटिव (आदिम), इंडिजिनस (देशज), ओरिजिनल (देशज), नेटिव (मूलनिवासी), ट्राइब (वनवासी) जंगली जाति और आदिवासी। हरिराम मीणा ने भी मूल निवासी के बारे में कहा है - *"मूलवासी किसी भूखंड पर निर्विवाद रूप से लम्बे समय से वंशानुगत क्रम में निवास करने वाले ऐसे जन हैं जिनका नस्ल विशेष से गहरा संबंध होता है। यहाँ नस्ल, भू-भाग एवं प्राचीनता महत्वपूर्ण शब्द है।"*[8] हालांकि उपर्युक्त शब्द पढ़ने-सुनने में एक से लगते हैं किंतु ऐसा बिल्कुल नहीं हैं। इन नामों को यदि ध्यान से देखें या पढ़े तो कुछ आदि समय के अर्थ को दर्शाते है तो कुछ आदिम अवस्था को। भाषा में कई शब्द एकार्थी तो कई शब्द अनेकार्थी होते हैं। आदिवासी कौन है और कौन सा शब्द इनके लिए सही बैठता है इसकी पड़ताल करना आवश्यक है।

'इंडिजिनस' शब्द का यदि हम अर्थ खोजे तो ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में पाएंगे कि इसका शाब्दिक अर्थ ' देशज' है और देशज का अर्थ है कि ये यहीं के रहने वाले हैं। इससे इनके समुदाय की पहचान का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अंग्रेजी में 'आदिवासी' शब्द के लिए 'ओरिजनल' या 'प्रिमिटिव' जैसे शब्द प्रचलित हैं, जो केवल 'आदि समय' तक का ही बोध कराते हैं। अंग्रेजी का 'ट्राइब' और हिंदी का 'जनजाति' दो शब्द हैं जो आदिवासियों के लिए अधिक प्रचलित हैं। किंतु फिर भी ये शब्द किसी समुदाय की विशेषता बताने में लगभग असफल हैं। आदिवासियों को

वनवासी के नाम से भी जाना जाता है, किंतु आदिवासियों को वनवासी के नाम से पुकारना गलत है। 'वन' यानि जंगल; और वनवासी का सीधा अर्थ निकला जंगलवासी। आदिवासियों को जंगली कह देने से उनकी पहचान पूर्ण नहीं होती और यह आवश्यक नहीं कि आदिवासी केवल जंगलों में ही रहे और गैर - आदिवासी मैदानों में। आदिवासियों को वनवासी नाम से सख्त एतराज है। उन्हें यह नाम गाली की तरह लगता है। फिर एक शब्द आता हैं 'जनजाति' जिसे ' ट्राइब ' का हिंदी अनुवाद माना जाता हैं। 'जनजाति एक प्रशासनिक शब्द है। जहाँ किसी विशेष क्षेत्र का संकेत नहीं मिलता । डॉ. अंबेडकर के आग्रह पर भारतीय संविधान में सन् 1959 को अनुच्छेद 342 के तहत 'आदिवासी' शब्द के बजाय 'जनजाति' शब्द अपनाया गया था, जहाँ, जनजाति की कोई परिभाषा नहीं दी गयी है। संविधान के तहत जिन लोगों को अनुसूचित किया गया उनमें से कई लोगों को उनके आर्थिक रूप से पिछड़े होने की वजह से आदिवासी नहीं होता। आदिवासियों की तो अपनी अलग धर्म, रीति -रिवाज, भाषा , संस्कृति, शासन-व्यवस्था होती हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी एक सामूहिक जीवन व्यतीत करते हैं। ये अधिकतर पर्वतीय प्रदेश या जंगलों में रहते हैं जिनकी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, देवी-देवता, धर्म, दर्शन, नियम कानून, पर्व-त्योहार, नाच-गान तथा राग आदि होते हैं तथा जिनको संविधान में अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत रखा गया है।

आदिवासी की प्रमुख विशेषताएँ

आदिवासी की अलग-अलग परिभाषाओं को देखते हुए अब लगभग यह बताया जा सकता है कि आदिवासी समूह की क्या विशेषताएं हैं और क्या हो सकती हैं-

1. **अपना निश्चित भू-भाग** :- प्रत्येक आदिवासी अपने समुदाय के साथ प्रायः एक निश्चित भू-भाग में ही रहता है। गैर-आदिवासियों के संपर्क में आकर या रोजगार की तलाश में ये आदिवासी अपने भू-भाग से अलग भी होते हैं किंतु अपने भू-भाग से उनका गहरा लगाव होता है। प्रत्येक आदिवासी अपने अपने भू-भाग में अलग नाम से जाने जाते हैं जैसे संथाल, भील, मुंडा, शबर, गारो, खासी, नागा, मिजो आदि। इन नामों के पीछे कई दंतकथाएं जुड़ी रहती हैं। इन्हें अपने इन विशिष्ट नाम से गहरा लगाव एवं गर्व है।

2. **निश्चित बोली:**- प्रत्येक आदिवासी समूह की अपनी एक विशिष्ट बोली व भाषा होती है जिससे उनका विशेष लगाव रहता है। आज कई आदिवासी समूहों ने अपनी बोली व भाषा में साहित्य रचा है । इसी साहित्य को हिन्दी व अंग्रेजी में अनुवाद कर आज हम इनके और करीब आ गए हैं। इनकी बोली व भाषा प्रत्येक भू-भाग में अलग-अलग है। अतः जिस प्रकार इनका एक निश्चित भू-भाग है, उसी प्रकार एक निश्चित बोली व भाषा भी है।

3. **युवा-युवती संगठन** :- जिस प्रकार हर समाज का अपना एक युवा-युवती संगठन होता है, उसी प्रकार आदिवासी समाज का भी अपना युवा संगठन होता है। यह संगठन बहुत ही सक्रिय होता है और हर कार्य सुव्यवस्थित तरीके से करता है। इनके मुकाबले एक प्रगतिशील समाज भी पीछे रह जाता है। इसका एक अच्छा उदाहरण मिजो आदिवासियों में भी देखा जा सकता

है। मिजो आदिवासी समाज में यह संगठन व्यवस्थित रूप में आगे बढ़ रहा है। इसे Young Mizo Association (Y.M.A.) के नाम से जाना जाता है। मिजो जाति के हर प्रकार के कार्य में इनकी सहभागिता रहती है। संगठन ने जगह-जगह अपने प्रगतिशील कार्य की छाप छोड़ी है। उनका अपना युवागृह भी है जिसे मिज़ो भाषा में 'जोलबूक' कहते हैं। इस युवागृह में गाँव के युवक - युवतियाँ इकट्ठे होकर खूब मनोरंजन करते हैं। वे रात-भर खाते-पीते एवं नाच-गान करते हैं। इस प्रकार के युवागृह मध्य प्रदेश के आदिवासियों में भी पाए जाते हैं जिन्हें 'घोटुल' के नाम से जाना जाता हैं। इस तरह नागा, संथाल, मुंडा आदि के भी अपने- अपने युवागृह हैं जिन्हें क्रमशः 'मोरूग', 'अखरा' और 'गितीओरा' नाम से जाना जाता है।

4. **वैवाहिक संस्कार:-** आदिवासी समाज में वैवाहिक संस्कार कुछ अलग विशेषताएं लिए हुए हैं जो उन्हें भारत के अन्य समाजों से विशिष्ट बनाते हैं। विवाह केवल यौन इच्छा की संतुष्टि मात्र नहीं, बल्कि अनेक आर्थिक एवं सामाजिक जरूरतों की पूर्ति भी करता है।

आदिवासी समाज के सभी सदस्य अपनी जाति में ही विवाह संबंध रखते हैं। समूह के बाहर किसी को विवाह की आज्ञा नहीं होती। वे अपने समूह में ही विवाह संपन्न करते हैं। इसका कारण यह है कि अपरिचित जाति के प्रति उनेक मन में बैठा डर, अपनी जाति व संस्कृति को बचाए रखने की चिंता और भौगोलिक अलगाव है। हालांकि आजकल अन्य जातियों के संपर्क में आने के कारण उनके अपनी जातियों से बाहर भी संबंध बढ़ रहे हैं।

भारत के आदिवासी समाज में विवाह परंपरा एक समान न होते हुए भी उनके वैवाहिक संस्कारों में बहुत अधिक समानता पायी जाती है। जैसे 'क्रय विवाह' है, इसका अर्थ यह नहीं है

कि लड़की खरीदी या बेची जाती है। इसका अर्थ है लड़की के पिता को एक निश्चित धन राशि या कोई उपहार देना । मिज़ो समाज में भी यह प्रथा लागू है। वर का पिता वधू के पिता को एक निश्चित धन राशि प्रदान करता है जिसे 'सूम ऐयी' कहा जाता है। इस रकम को वधू का पिता अपने सगे – संबधियों में बाँट देता है, तब जाकर विवाह सम्पन्न होता है। यदि किसी कारणवश विवाह संबंध टूट जाता है तो वधू के पिता को यह रकम लड़के वालों को लौटानी होती है। भारत की संथाल, हो, मुण्डा, गोंड, उराँव, नागा, कुकी, भील आदि जातियों में यह प्रथा देखने को मिलती है।

5. **आदिवासी पंचायत :-** आदिवासी अपने समाज को सुव्यवस्थित ढंग से चलाते हैं। इनके हर गाँव में पंचायत की व्यवस्था होती है जो गाँव के बुजुर्गों से मिलकर बनती है। कहीं कोई झगड़ा, जमीन समस्या, वाद-विवाद आदि हो जाये तो गाँव के बजुर्ग ही इन समस्याओं का समाधान निकालते हैं। यहाँ पंचायत के फैसले को महत्व दिया जाता है और इनका सम्मान भी किया जाता है।

6. **एकता का भाव :-** आदिवासियों में सबसे बड़ी खूबी यही है कि उनमें एकता का भाव कूट-कूटकर भरा है। यह उनकी बड़ी विशेषता है। किसी भी कार्य में, चाहे वह खुशी का मौका हो या फिर दुःख का माहौल, उनकी एकता ही उनका सबसे बड़ा हथियार है। उनमें 'मैं' की भावना नहीं है, बल्कि 'हम' कहने में ये ज्यादा गौरवान्वित महसूस करते हैं । इन्हें एकजुट होकर कार्य को निपटाते या समस्याओं को सुलझाते देख शायद हर गैर-आदिवासी भी यही सोचेगा कि काश हमारा समाज भी ऐसा ही हो । इनमें स्वार्थ भावना न के बराबर है । अपने

समाज से इत्तर किसी गैर-आदिवासी के किसी मुसीबत में होने पर भी ये जी-जान लगाकर उनकी मदद अवश्य करते हैं।

7. **अदृश्य शक्तियों में आस्था:**- यह विशेषता आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों में पाई जाती है। प्रत्येक आदिवासी समुदाय किसी न किसी अदृश्य शक्ति में आस्था अवश्य रखता है। ये समुदाय भूत-प्रेत या पूर्वजों को अधिक मानते हैं। आजकल कई आदिवासी समुदाय गैर आदिवासियों के सम्पर्क में आकर अपना धर्म परिवर्तन कर चुके हैं तो अदृश्य शक्तियों में आस्था इनमें अब उस रूप में नहीं रही । फिर भी किसी न किसी रूप में अदृश्य शक्तियों के चंगुल से वे बाहर नहीं निकल पाते हैं ।

8.**आर्थिक क्रिया-कलाप** - आदिवासी समूह अपने पूर्वजों के व्यवसाय को ही अपनाते हैं- जैसे शिकार करना, वन उत्पादों को बटोरना या बेचना, खेती-बाड़ी करना आदि। आज शहरों की चका-चौंध ने कई आदिवासियों को अपनी ओर खींच लिया है तो कई आदिवासी शहरों की ओर अन्य व्यवसाय की खोज में भी निकल रहे हैं।

9. **वेशभूषा :-** प्रत्येक आदिवासी समुदाय का अपना विशेष पहनावा होता है। उनकी वेशभूषा रंग बिरंगी व आकर्षक होती है। ये अपनी वेशभूषा जैसे कपड़े, गहने आदि स्वयं ही बनाते हैं । रंग-बिरंगे पत्थरों, पंक्षियों के पंख, जानवरों के बाल व कांटों आदि से वे सुन्दर आभूषण बनाते हैं जिन्हें पहनकर वे अलग ही तरह की शोभा पाते हैं। आज शहरी समाज के सम्पर्क में आकर इनके पहनावे में बदलाव अवश्य देखा जा सकता है । कई आदिवासी आज शहरों में आकर बस जरूर गए हैं किन्तु विशेष पर्व या मौकों पर वे अपनी वेशभूषा अवश्य पहनते हैं।

10. **संगीत - नृत्य का महत्व :-** संगीत और नृत्य से आदिवासियों को गहरा लगाव है। ये इनके जीवन का अभिन्न अंग है जो कभी इनसे अलग नहीं हो सकता। ये अपने सुख-दुःख, ख़ुशी-ग़म को संगीत व नृत्य से ही प्रकट करते हैं। जिससे उनका हौसला बढ़ता है। कोई भी पर्व-त्यौंहार हो संगीत और नृत्य से। आदिवासियों ने अपने इतिहास को आज तक संगीत के रूप में ही जीवित रखा है। अपने पूर्वजों की गाथा को मौखिक रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत के रूप में जीवित रख पाने के कारण ही आज आदिवासी साहित्य बना और हम इन्हें जान पाए। आदिवासियों के अपने कई छोटे-बड़े आकार के वाद्ययंत्र होते हैं, जो बहुत आकर्षक होते हैं । ढोल, माँदल, बाँसुरी, नगाड़ा, तुडबुड़ी आदि इनके प्रमुख वाद्य हैं ।

आदिवासी क्षेत्रों का वर्गीकरण :

व्यवसाय के आधार पर सन 1891 में पहली बार भारत की जनसंख्या को वर्गीकृत किया गया। तत्पश्चात सन् 1931 में जाति आधारित जनगणना हुई। नृतत्वविज्ञानी एवं सामाजविज्ञानियों ने भी महत्वपूर्ण अध्ययन किये और आजादी के बाद सन् 1950 में आदिवासियों की कुल 212 समुदायों की पहचान की गयी।

"सन् 2001 की जनगणना के मुताबिक आदिवासियों की कुल तादाद 8 करोड़ 20 लाख थी । भारत के आदिवासियो में सिमान्त आदिवासी करीब 11 प्रतिशत हैं जो पूर्वोत्तर के राज्यों तथा हिमालय पर्वत श्रृंखला के इर्द-गिर्द बसे हुए हैं, शेष 81 प्रतिशत आदिवासी अन्य प्रान्तो में हैं, जो उन राज्यों की कुल जनसंख्या का मध्यप्रदेश में 23 प्रतिशत, उड़िसा 22 प्रतिशत,

राजस्थान 12 प्रतिशत, बिहार 8 प्रतिशत, गुजरात 14 प्रतिशत, दादरा नगर हवेली 79 प्रतिशत एवं लक्ष्यदीप 94 प्रतिशत है।"[9]

भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी क्षेत्रों को चार भागों में बाँटा गया। एल.पी.विद्यार्थी ने फिर कुछ असरे बाद यहाँ पाँचवा क्षेत्र अण्डमान निकोबर को जोड़ा और उस क्षेत्र का नाम रखा ' द्वीप समूह' । इसके आधार पर आदिवासियों के निम्नलिखित पाँच क्षेत्र बनते हैं।

1. उत्तरपूर्वी क्षेत्र - इस क्षेत्र के अंतर्गत असम, अरूणाचल, नागालैंण्ड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, सिक्किम और त्रिपुरा आते हैं। इन क्षेत्रों में आदिवासियों की आबादी अधिक है। यहाँ बोडों कर्बी, राभा, खासी, जैंयन्तिया, गारो, कोच, भोट, दिमासा, बोराक, माओं, थारू, कचारी, लेपचा, राजवंशी, नागा, गुजर, खंपा, गादी, मिजो आदि जानजातियाँ बसती हैं।

2. मध्य भारतीय क्षेत्र-सर्वाधिक आदिवासी समुदाय भारत के मध्य भारत क्षेत्र में वास करते हैं। इसके अन्तर्गत मध्य प्रदेश उड़ीसा, बिहार और पंश्चिम बंगाल का समावेश है। यहाँ मुण्डा, संथाल, हो। उरावँ, खोण्ड, मुरिया, माड़िया, खरिया, गदबा, कमार, बैगा, हल्बा, भूईवाँ, कोरकू आदि बसते हैं ।

3. पश्चिम भारतीय क्षेत्र- इस क्षेत्र के अंतर्गत राजस्थान, गुजरात, गोवा, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश (आंशिक) आते हैं जिसमें भील, मीणा, कोंकण, खासा, डफली, महादेव, घोटिया आदि बसते हैं।

4. दक्षिण भारतीय क्षेत्र - इस क्षेत्र में आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, तेलंगाना राज्य आते हैं, जिसमें भेरूकुलू , कोया, गोंड , चेंचू , टोडा, कोटा, इरूला जनजाति बसते हैं।

5. द्वीप समूह क्षेत्र- इस क्षेत्र के अंतर्गत अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दमन और दीव आते हैं। यहाँ निकोबरी ,ओंगी, शामपेन , जाक , आदि जनजातियाँ निवास करती हैं।

आदिवासी संस्कृति :

संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य की सभी क्रियाएँ खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार और सामाजिक नीति- नियम आते हैं। जिस प्रकार भारत अनेकता में एकता को दर्शाता है उसी प्रकार आदिवासी समुदायों में भी विविधता में एकता देखने को मिलती है।

प्रत्येक आदिवासी समुदाय में सांस्कृतिक दृष्टि से कुछ अंतर अवश्य मिलता है, फिर भी आदिवासियों की अपनी कुछ सांस्कृतिक विशिष्टताएँ हैं जिसके कारण ये अन्य समाज-क्षेत्रों की संस्कृतियों से अलग हैं। प्रभु पी. के अनुसार आदिवासियों को अन्य समाजों से अलग करनेवाली सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं- *"अपने क्षेत्र से उनके खास जुड़ाव और उनके समुदाय का प्रकृति से अन्तरंग सम्बन्ध। उनके लिए अपने साधन स्रोतों के प्रबंध का अर्थ यह नहीं है कि अलग-अलग परिवारों के बीच भूमि का बँटवारा कर दिया जाए। आदिवासियों की दृष्टि में कोई व्यक्ति या समुदाय तभी भूमि से जुड़ता है, जब वह अपने पूर्वजों से लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी उस जमीन पर बसा हुआ हो। आदिवासी का क्षेत्र उसकी सामूहिक चेतना का विस्तार होता है, जिसका अपना सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक महत्व है। इसी के बूते पर कबीले के ज्येष्ठ व्यक्ति समुदाय का संचालन करते हैं। आदिवासियों का ज्ञान, अध्यात्म और धर्म-व्यवस्था भी प्रकृति से उसके गहरे संबंधों पर ही आधारित है। उनकी दूसरी विशेषताएँ है- "समुदाय की सभी आवश्यकताओं को समुदाय के भीतर ही पूरा करना और अपनी जरूरतों के लिए बाजार पर*

कम से कम निर्भर रहना। समुदाय का अपने क्षेत्र पर जितना राजनैतिक प्रभुत्व होगा उसी अनुपात में ये विशेषताएँ उस समुदाय में दृष्टिगोचर हो सकती हैं।"[10]

अपने आदिम मूल्यों का संरक्षण करना आदिवासियों का मुख्य ध्येय है। इसका ये अर्थ नहीं है कि ये भौगोलिकता को न अपनाएं और स्वयं को विकास से अवरूद्ध रखे । विकास के साथ इनका विरोध नहीं है। आज आदिवासी पढ़-लिख रहे हैं, गाड़ी, टी.वी, मोबाइल आदि का प्रयोग कर रहे हैं, किंतु यह जरूर है कि इन सब सुविधाओं के बदले या विकास के नाम पर ये अपनी धरती, जाति, भाषा और धर्म का बलिदान कतई देना नहीं चाहेंगे।

एकता-सामूहिकता आदिवासी संस्कृति की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है। वे जो भी कार्य करें, समाज में कुछ नया रचाएँ-बसाएँ, जोड़े-घटाएँ सब कुछ सामूहिकता के साथ ही करते हैं। व्यक्तिवाद का यहाँ कोई स्थान नहीं। व्यक्तिवाद में जहाँ व्यक्ति विशेष का स्वार्थ दिखता है तो सामूहिकता में निस्वार्थ और प्रेम-भाव दिखता हैं। आदिवासी, व्यक्ति विशेष की लाभ-हानि की नहीं सोचता, उसमें बनावटीपन लेश मात्र भी नहीं दिखता। यह गुण उनकी संस्कृति की ही देन है।

आदिवासी संस्कृति का गहरा संबंध जीवन से है, प्रकृति से है। इनकी आवश्यकताएँ कम से कम हैं। दिखावट, सजावट, फैशन आदि का रंग अब तक इन्हें छू तक नहीं पाया। जितना संभव हो, प्रकृति से निकटता बनाए रखने में ये खुश हैं। अनावश्यक औपचारिकता दिखाना ये नहीं जानते। इनकी संस्कृति में सहजता, सरलता, ईमानदारी और भोलापन ही झलकता है। आदिवासी संस्कृति का गहरा संबंध श्रम से है। कठोर श्रम इस संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन

गया है। सभी आदिवासी स्त्री-पुरूष फसल बुआई, कटाई जैसे श्रमसाध्य कार्य नृत्य एवं संगीत के ताल में सहज रूप से पूर्ण कर लेते हैं।

आदिवासियों का समाज व संस्कृति जंगली नहीं है। भले ही वह मुख्यधारा के तथाकथित समाज व संस्कृति से भिन्न हैं किंतु उनकी संस्कृति भव्य एवं उदात्त है । उनकी यही संस्कृति उन्हें विशिष्ट बनाती है, उन्हें गौरव प्रदान करती है।

कुल मिलाकर आदिवासी संस्कृति में प्रकृति प्रेम, नृत्य-गीत, गणचिन्ह, मनोरंजन, उत्सव-पर्व-मेले, निश्छलता, धार्मिक आस्थाएँ, जीवन मूल्य आदि जीवन के अंग बन गए हैं। ये जातिवादी नहीं हैं। इनके लिए सब एक समान है। सामूहिकता इनका सबसे बड़ा हथियार और बेशकीमती जीवन-मूल्य है। इनका समाज व्यक्तियों में नहीं, बल्कि समूहों में जिंदा रहता हैं। यह समुदाय कभी व्यक्तिवादी नहीं रहा। समानतावाद इनकी एक और विशेषता है। जाति समानता के साथ ये लिंग समानता पर विश्वास रखते है। अमीर-गरीब का भेद भाव ये बिल्कुल नहीं रखते ।

आदिवासियों की विभिन्न समस्याएँ :

आज आदिवासी बाहुल्य राज्यों में कई आदिवासी उँचे पद पर अवश्य हैं किंतु आज भी अधिकांश आदिवासी गरीबी और अभावों की जिंदगी जी रहे हैं। विकास और औद्योगीकरण के नाम पर इन पर अत्याचार हो रहे हैं ।

आदिवासी समाज की आजीविका जल, जंगल और जमीन पर निर्भर है। कृषि और वन्य उत्पादों के सहारे वे अपना जीवन जीते हैं। भारत में ब्रिटिश शासनकाल से ही इन मूल

आवश्यकताओं पर उन्हें प्रतिबंध का सामना करना पड़ा। आदिवासियों ने अंग्रेजो के खिलाफ कई आंदोलन भी छेड़े, कई युद्ध लड़े किंतु उन्हे इंसाफ नहीं मिला। जब ब्रिटिश शासन का अंत हुआ तो भारत की अपनी सरकार बनी, जिसने इनकी समस्याओं का समाधान करने के बजाय कई सरकारी नीतियाँ बनाकर उनकी समस्याओं को और बढ़ा दिया । आज आदिवासियों की समस्याएं और बढ़ गयी हैं। तथाकथित सभ्य समाज के संपर्क में आने के कारण उत्पन्न समस्याओं के साथ-साथ ये अपने ही समाज के भीतर की भी कई समस्याओं से जूझ रहे है।

1. मूल अस्तित्व को बचाए रखने की चिंता :

वर्तमान में आदिवासियों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह है कि मुख्यधारा के साथ यदि वे संपर्क स्थापित करते हैं तो उन्हें अन्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अपने मूल अस्तित्व को बचाए रखने की चिंता उन्हें सदैव रहती है । हमें जरूरत है कि उनके मूल अस्तित्व को संरक्षित कर उन्हे भारत का अंग बनाकर रखा जाए । आज आदिवासी स्वयं असमंजस में हैं। आज इनकी अपनी नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच यह संघर्ष जन्म ले रहा है कि अपनी परंपराओं में क्या जोड़ें क्या घटाएँ। आज यदि ये तथाकथित सभ्य समाज के संपर्क में आ भी जाते हैं तो इनके ऊपर अवश्य ही सभ्य समाज अपना रंग चढाने की कोशिश करेगा।

2. सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने की समस्या:

आज आदिवासियों की समस्याएँ और बढ़ गई हैं। मुख्यधारा के संपर्क में आने के कारण उत्पन्न हुई समस्याओं सहित ये अपने ही समाज के भीतर की भी कई समस्याओं से जूझ रहे हैं । अपनी संस्कृति और सांस्कृतिक मूल्यों को ये छोड़ नहीं सकते। किसी अन्य भाषा को ये अपना भी लें तो उस भाषा के साथ जुड़ी संस्कृति इनकी अपनी संस्कृति से मेल नहीं खाती और इनका जीवन शून्य हो जाता है। संजीव तंवर लिखते हैं - *"आदिवासी जन-जातियों के सामने सांस्कृतिक दृष्टि से एक बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गयी हैं । अब सवाल यह उठता है, कि क्या वे अपने परदादाओं के समय से चली आ रही संस्कृति में पूरा विश्वास रखें, पूरी तरह से उसका पालन करें, नग्न रहते हैं तो क्या नग्न ही रहें , जादू-टोने में ही यकीन रखते रहें या वे अपने को समय के साथ बदलें। अगर वे अपने को समय के साथ नहीं बदलते हैं तो सभ्य जातियों की तुलना में वे अपने को हीन समझतें हैं। अगर बदलते हैं तो जिन विश्वासों के आधार पर तथा जिन सांस्कृतिक बातों के कारण वे अपने पहले जीवन में निश्चित थे, सुखी थे, उन सबको उन्हें तोड़ना पड़ता है। आज इस सांस्कृतिक असमंजस के कारण दुनिया की सभी आदिवासी जन-जातियाँ आज एक संकटकालीन युग से गुजर रही हैं।"*[11]

3. विस्थापन की समस्या :

आदिवासियों के सामने एक बड़ी समस्या विस्थापन की है । विकास के नाम पर इन्हें अपनी ही जमीन से बेदखल किया जा रहा है। प्रकृति से सीधा संबध रखने के कारण इन्होंने प्रकृति से उतना ही लिया, जितना आवश्यक हो। अधिकांश आदिवासियों के क्षेत्र में खनिज-भंडार पाए जाते हैं। गैर-आदिवासियों की भूखी नजर इन खनिजों पर है जिसके कारण

आदिवासियों को पूरा का पूरा गाँव छोड़ने पर मजबूर किया जा रहा है । रोजी-रोटी कमाने के लिए उन्हें दूर-दर भटकना पड़ता है। हरिराम मीणा लिखते हैं *"अपनी धरती से आदिवासी की जबरिया बेदखली जमीन के एक टुकड़े से एक परिवार के विस्थापन का पर्याय भर नहीं है। यह समस्या पूरी दुनिया में आदिवासी झेल रहे हैं । एक ओर तो कल्याणकारी सरकारें बीच सड़क में बना दिए गए किसी धर्म-स्थान से घबराकर राष्ट्रीय राजमार्ग तक को मोड़ देती हैं । दूसरी ओर वही सरकारें बड़ी आसानी से विकास का मुखौटा ओढ़कर अंग्रेजी राज के भू-अर्जन अधिनियम,1894 के हथियार से हजारों आदिवासियों को उनकी जमीनों से बेदखल कर देती हैं । यह प्रक्रिया लंबे समय से चल रही है। पहले जमींदारों, औपनिवेशिक ताकतों और बढ़े भू-स्वामियों की महत्वांकाक्षाओं के कारण, अब खनिज ठेकेदारों, वन-शोषकों और बड़े कारखानों वाले उद्योगपतियों के कारण और वैसे भी आदिवासियों के भूमि संबंधी पुश्तैनी अधिकारों का लेखा-जोखा सरकारों के पास नहीं रहा हैं।"*[12]

विकास के नाम पर भारत सरकार ने आदिवासियों की बहुत सी जमीन जब्त कर ली और इन्हें विस्थापन और पलायन के लिए विवश कर दिया। कई आदिवासी रोजगार के लिए शहरों की ओर रूख कर गए, जिससे उनकी भाषा और संस्कृति भी उनसे दूर होती चली गई। अल्प संख्या में बचे आदिवासी मजबूर हो जाते हैं अपने ही इलाके में बंधुआ मजदूर होने के लिए। यदि आदिवासियों से जंगल, जमीन छीनी जाएगी तो इनकी पहचान ही लुप्त हो जाएगी। कुमार कमलेश कहते हैं, *"आदिवासियों की अस्मिता या पहचान कायम रखने के लिए जल, जंगल, जमीन और प्राकृतिक संसाधानों पर इनका अधिकार कायम रहना आवश्यक है।*

साथ-साथ आदिवासियों की जीवन-शैली, परंपरा, भाषा, रीति-रिवाज, संस्कृति और इनकी चतुर्स्तरीय गणतांत्रिक न्याय- प्रणाली कायम रहनी भी इनकी पहचान कायम रखने के लिए आवश्यक है।"[13]

4. **आर्थिक समस्याएँ :**

आदिवासियों से जुड़ी समस्याओं में आर्थिक समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या है जिससे आज वे जूझ रहे हैं। इनकी अर्थव्यवस्था का सर्वप्रधान गुण है प्रकृति पर इनकी निर्भरता । इसलिए इनके जीवन का वनों से सीधा संबंध है। किंतु आज सार्वजनिक या व्यक्तिगत हित के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है । सरकार ने वनों को अपने संरक्षण में ले लिया है जिससे आदिवासी अब वनों से वनोपज संग्रहण नहीं कर पा रहे हैं और जो थोड़ी-बहुत कर भी लेते हैं तो बाजार में उसका उचित मूल्य उन्हें नहीं मिलता जिसके कारण उनका जीवन दयनीय होता जा रहा है।

आदिवासी अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी परंपरागत ढंग से खेती-उपज करते हैं। हालांकि कई आदिवासी आधुनिक प्रक्रिया को भी अपना रहे हैं किंतु अभी भी अज्ञानता के चलते या धन के अभाव में ये तकनीकी सामग्री की व्यवस्था नहीं कर पाते। दूसरा, परिवार बढ़ने के साथ इनकी भूमि भी टुकड़ों में बंट गई है। पुराने ढंग की खेती के इनके तौर-तरीकों के चलते जमीन उपजाऊ नहीं रहती जिससे इन्हें लाभ की बजाय हानि ही होती है। रोजगार या श्रम पर निर्भर होकर आदिवासी कुछ पैसे जरूर कमा लेते हैं। कुछ आदिवासी सरकारी नौकरी भी कर रहे हैं। कोई निजी मालिकों के यहाँ नौकरी भी कर रहे हैं। प्रायः

अशिक्षित होने के कारण इन्हें उँचे दर्जे की नौकरी भी नहीं मिल पाती । सरकारी नौकरी के लिए भी कई लोग रिश्वत लेते हैं। भोले आदिवासी के पास इतनी रकम नहीं होती कि वह पैसों के बल नौकरी पा सके। सरकारी नौकरी की अनुपलब्धता में वे अपने जीविकोपार्जन के लिए कारखानों या मिलों में काम करते हैं जिससे प्राप्त आय बस भूख मिटाने भर के लिए काम आती है।

अर्थव्यवस्था पूरी सामाजिक व्यवस्था का आधार होती है । आदिवासी आज अपने समाज से दूर शहरों में भटकने के लिए मजबूर हैं ताकि कुछ पैसे कमाए जा सकें। ये ऋणग्रस्त हैं, बड़े-बड़े साहूकारों के ऋण को चुकाते-चुकाते उनका जीवन गुजर जाता है और वे केवल बंधुआ मजदूर बनकर रह जाते हैं।

कुमार चौहान और रेनू चौहान के अनुसार, *"जनजातीय अर्थव्यवस्था में कभी-कभी जब जनजातियों के पास लिए गए ऋण को चुकाने की व्यवस्था नहीं हो पाती है तथा उनके पास भूमि, पशु या अन्य कोई इस प्रकार की वस्तु नहीं बचती जिसे बेचकर वे ऋण मुक्त हो सकें ऐसी स्थिति में लिए गए ऋण के बदले में अपने श्रम को प्रदान करते हैं। यदि एक व्यक्ति अपने जीवन में अपना श्रम देकर भी ऋण मुक्त नहीं हो पाता तो उसका बेटा और तत्पश्चात उसके बेटे का बेटा और इस प्रकार कई पीढ़ियों तक उस व्यक्ति के लिए एक ऋण के बदले श्रम देते रहते हैं, यह बंधुवा मजदूरी कहलाती हैं । इसमें व्यक्ति श्रम तो करता है किंतु उसका कोई मूल्य नहीं मिलता है।"*[14]

5. शिक्षा की समस्या:

हालांकि आज भारत सरकार ने आदिवासियों की शिक्षा के लिए कई विद्यालयों की स्थापना की है, छात्रवृतियों की व्यवस्था की है और कई प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं। किंतु बात केवल सुविधाओं की ही नहीं है, बात है भाषा की, संस्कृति की । आदिवासियों को दी जाने वाली शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि जो उनको उनकी भाषा या संस्कृति से दूर न करे, साथ ही उन्हें अपने समाज के प्रति एक कर्तव्यनिष्ठ एवं उपयोगी व्यक्ति बनाए । उन पर जबरदस्ती कोई दूसरी भाषा या दूसरी संस्कृति थोपी जाएगी तो ये अवश्य ही रास्ता भटक जाएँगे। हरिराम मीणा लिखते हैं, *"चाहे बात अंग्रेजों की करें या महात्मा गांधी की, उस दौर में आदिवासी शिक्षा के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा भाषा के माध्यम की थी और उससे बड़ा व्यवधान आदिवासियों के संपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश का रहा। इसीलिए अनेक दावों और आधे-अधूरे प्रयासों के बावजूद परिणाम के स्तर पर आदिवासी समाज के लिए शिक्षा जैसी चिड़िया नदारद ही रही। आदिवासियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अर्थात लम्बी परंपरा और राष्ट्रीय मुख्यधारा के मध्य का विरोधाभास ही एक बड़ा कारण रहा जिसकी वजह से आदिवासी समाज में शिक्षा की स्थिति अभी भी दयनीय है।*

अतीत में अनेक आदिवासी समूहों को वर्चस्ववादी संस्कृतियों में मिश्रित होने के लिए बाध्य किया गया। भील, गोंड़, संथाल, उरांव, मुंडा, खौड, मिजो, नागा, खासी जैसे मुख्य आदिवासी समुदायों ने इस तरह के सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रतिरोध किया और अपनी मौलिक संस्कृति और भाषा को संरक्षित रखने का प्रयास किया। कई लोग ऐसा सोचते हैं कि इस कदर उनके पृथकत्व के कारण राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा पड़ी। ऐसा सोचना गलत और

घातक है। मुख्य प्रश्न यह है कि अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक प्रणालियों को सुरक्षित रखते हुए आदिवासी-जन राष्ट्रीय मुख्य धारा में कैसे आए?"[15]

शिक्षा की सफलता अध्यापकों पर भी निर्भर करती है। आज आदिवासियों के लिए आवश्यक है कि यथा संभव प्रारंभिक शिक्षा इनकी अपनी भाषा में हो। इन्हें अपनी जाति के अध्यापकों की आवश्यकता है जिनसे वे विचारों का आदान-प्रदान अपने ही माहौल में खुलकर करे। अभी भी आदिवासी अध्यापकों की कमी है जिनके द्वारा आदिवासियों की शिक्षा में रूचि लाई जा सके।

6. स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं

मनुष्य के लिए रोजमर्रा के जीवन को सुचारू ढंग से जीने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है एक स्वस्थ्य शरीर का होना । यदि शरीर स्वस्थ्य न हो, तो श्रम तो दूर, व्यक्ति में सोचने-समझने की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। आदिवासियों में भी यह समस्या अधिक पायी गई है। इनके अस्वस्थ रहने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं -

1. **गरीबी एवं अशिक्षा** - गरीबी एवं अशिक्षा के कारण आदिवासियों को कई प्रकार के रोगों ने घेर लिया हैं । एक तो पैसों के अभाव में वे अपना इलाज सही समय पर नहीं करा पाते और दूसरा कारण है शिक्षा का अभाव । शिक्षा के अभाव में आदिवासी समाज साफ-सफाई और गंदगी से फैलने वाले रोगों की जानकारी से वंचित रह जाता है । अशिक्षा अंधविश्वास को जन्म देती है, यही कारण है कि आदिवासी समाजों में किसी भी रोग को भूत-प्रेत या तंत्र-मंत्र से जोड़कर देखा जाता है । जिससे उनको स्वास्थ्य लाभ की बजाय हानि उठानी पड़ती है ।

2. **चिकित्सा केन्द्र एवं साधनों की कमीः** - आदिवासी क्षेत्रों में अभी भी चिकित्सा केन्द्रों की कमी है। कई आदिवासी ऐसे क्षेत्र में भी रहते हैं, जहाँ यातायात के साधनों की कमी है। इनके इलाके में जो सरकारी या गैर-सरकारी चिकित्सालय उपलब्ध हैं, उनमें भी उचित संसाधनों की कमी है।

3. **अन्धविश्वासः** - आदिवासियों को अंधवश्विास की बेड़ियों ने बुरी तरह जकड़ा रखा है। प्रकृति व पूर्वजों की पूजा-अर्चना करना अलग बात है किंतु यदि कोई बीमार हो जाए तो भी वे प्रकृति, देवी-देवता, पूर्वजों या भूत-प्रेतों का ही किया-धराया मानते हैं। झाड़-फूँक में अपना समय गँवाते हैं जिससे रोगी को अपनी जान गवाँनी पड़ती है।

ख) आदिवासी साहित्य की अवधारणा

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य समाज को नयी दिशा देता है। बीसवीं सदी के अंत में भारत में दलितों, स्त्रियों एवं आदिवासियों में शोषण के विरुद्ध चेतना का विकास और परिणामत: उसके खिलाफ प्रतिरोध का मुखर स्वर दिखाई देता है। यह विरोध उन पर हो रहे सामाजिक व राजनैतिक अत्याचारों के खिलाफ था जिसके विरोध में सामूहिक अभियान चलाया गया। अन्य आंदोलनों के साथ साहित्यिक आन्दोलन ने भी तीव्रता पकड़ी । दलित, स्त्री एवं आदिवासी विमर्श सामने आए। जिनमें आदिवासी विमर्श सबसे नया है। आदिवासी विमर्श को महत्ता देते हुए आदिवासियों ने खुलकर लिखना शुरू किया और समाज के सामने अपनी

बात रखी । आज आदिवासी अपनी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा में भी लिख रहे हैं और हिन्दी साहित्य जगत को समृद्ध कर रहे हैं । आदिवासियों के साथ-साथ गैर आदिवासी भी आदिवासियों के लिए लिख रहे हैं।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर चर्चा करने से पूर्व साहित्य और उसकी अवधारणा पर एक संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है। जब बात साहित्य की होती है तो हमारे विचार में उसकी विविध विधाएं - कविता, कहानी, उपन्यास, निवंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रा-विवरण, रिपोतार्ज आदि आती हैं।

आज समूचे देश में आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर विमर्श हो रहे हैं। लोग उत्सुक हैं आदिवासी साहित्य की सही परिभाषा जानने को।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीन तरह के मत हैं:-

1. आदिवासी पर जो भी साहित्य गैर आदिवासी द्वारा लिखा गया हो, वह आदिवासी साहित्य है।

2. जो साहित्य आदिवासियों द्वारा लिखा गया है, वह आदिवासी साहित्य है।

3. जो साहित्य आदिवासी दर्शन के तत्वों पर लिखा गया है, वह आदिवासी साहित्य है।

पहली अवधारणा के अनुसार जो साहित्य गैर -आदिवासियों द्वारा आदिवासी जीवन पर लिखा गया है वह आदिवासी साहित्य कहलाएगा। इसके समर्थन में आदिवासी लेखक भी हैं।

गैर-आदिवासी लेखकों में रमणिका गुप्ता, महाश्वेता देवी, प्रतिमा राय, शिनु कुमार पंकज, भाल चंन्द्र जोशी, विरेन जैन, राकेश कुमार सिंह, बजरंग बिहारी तिवारी आदि हैं।

दूसरी अवधारणा के अनुसार जो साहित्य आदिवासियों द्वारा स्वयं लिखा गया है, वह भी आदिवासी साहित्य है। इसमें स्वानुभूति और प्रामाणिक अनुभव की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति इसे अत्यंत महत्वपूर्ण, अनुभवजनित, रचनात्मक और आकर्षक बनाती है । आदिवासी लेखकों में रामदयाल मुंडा, वाहरू सोनवड़े, भुजुंग मिश्राम, चेतन मांझी, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, महादेव टोप्पो, हरिराम मीणा, पीटर पॉल एका, फादर वाल्टर वेक आदि हैं ।

तीसरी अवधारणा है, जो साहित्य आदिवासी दर्शन के तत्वों पर लिखा गया है। इसे 'आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा-पत्र' के तौर पर जाना जाता रहा है। इस अवधारणा की अगुवाई वंदना टेटे वाले आदिवासी और मूलवासी लेखकों व संस्कृतिकर्मियों के राष्ट्रीय संगठन, झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा ने की थी।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को कुछ लेखकों व साहित्यकारों ने इस प्रकार परिभाषित किया है- आदिवासी लेखिका व कवयित्री रमणिका गुप्ता कहती हैं, *"मैं आदिवासी साहित्य उसी को मानती हूँ जो आदिवासियों ने लिखा और भोगा है। उसे आदिवासी समस्याओं, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थितियों तथा उनकी जीवन-शैली पर आधारित होना होगा।"*[16] अर्थात आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के लिए आदिवासियों पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य कहलाता है।

मराठी आदिवासी साहित्यकार डॉ. विनायक तुमराम कहते हैं *"आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य उन वन जंगलों में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है, जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है, जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाजव्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरी-कंदराओं में रहने वाले अन्यायग्रस्तों का क्रांति साहित्य हैं। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय-व्यवस्था ने जिनकी सैंकड़ों पीढियों को आजीवन बनवास दिया, उस आदमी समूह का मुक्ति-साहित्य हैं आदिवासी साहित्य। वनवासियों का क्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है यह साहित्य। आदिवासी- साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम-वेदना तथा अनुभव का शब्दरूप है।"*[17]

रोज केरकेट्टा कहती हैं- *"हिंदी में आदिवासी साहित्य की अवधारणा बन रही है। परंपरा और आधुनिकता का, विकास और विनाश का, मुख्यधारा की संस्कृति और आदिवासी मूल्यबोध का, अस्तित्व, पहचान और विकास का जो द्वंद है, इन सबके बीच 'आदिवासी राजनीति, संस्कृति' की एक नयी अवधारणा के निर्माण का यह दौर है।"*[18]

अपनी पुस्तक 'आदिवासी दर्शन और साहित्य', में वंदना टेटे लिखती हैं, *"आदिवासी साहित्य मूलतः वाचिकता (ऑरेचर) है। वाचिकता में ही आदिवासी दर्शन का प्रवाह है। आदिवासी दर्शन के प्रवाह को संरक्षित, प्रसारित और साझा करने वाला तथा अपनी मूल भाषाओं में व्यक्त होनेवाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। आदिवासी दर्शन और उसकी वाचिकता को जाने-समझे बगैर, आदिवासी भाषा-संस्कृति की अज्ञानता के साथ रचा जा रहा*

आदिवासी साहित्य नहीं है। दर्शन, वाचिकता और भाषा के अनुपस्थित होते ही आदिवासी दुनिया भी 'अदृश्य' हो जाती है।"[19]

केरल के आदिवासी लेखक नरायन लिखते हैं, *"गोत्र जनता की जीवन शैली, प्राचीन संस्कृति की झलक, कहानियों में, गीतों में मौजूद है। उन्हें ढूंढ निकालकर अपने यथार्थ रूप में संवारकर आधुनिक युग एवं भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखकर सुधार दृष्टि से पुनः सृष्टि ही आदिवासी साहित्य है।"*[20]

उपर्युक्त परिभाषाओं एवं मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदिवासियों में साहित्य का सृजन बहुत पहले ही हो चुका था किंतु यह साहित्य मूलतः मौखिक रहा है। सच्चे अर्थों में वही आदिवासी साहित्य होगा जिसमें आदिवासी दर्शन होगा, जिसमें भेदभाव रहित आदिम समूहों में वर्गरहित, प्रकृति से सानिध्य, सामूहिकता, सहभागिता, जल, जंगल, जमीन अपनी भाषा-संस्कृति, लोककथाएँ, मुहावरे, विकास आदि की मौजूदगी होगी।

आज भी न जाने कितने परिमाण में आदिवासी साहित्य का सृजन हो चुका है किंतु अधिकतर ये उनकी अपनी ठेठ भाषा में रचा हुआ है। उनकी ठेठ भाषा से हमारी अनभिज्ञता के चलते हम उस साहित्य को समझने से अब भी बहुत दूर हैं। आज आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व की चुनौती है, फिर भी वे अपने भोलेपन, अपने दुःख-दर्द के साथ अपनी संस्कृति और भाषा को जीवित रखते हुए लगातार संघर्ष कर रहे हैं। उनके साहित्य में इन्हीं सब की छवियां देखी जा सकती हैं।

गंगा सहाय मीणा लिखते हैं, *"पूर्वोत्तर भारत में लगभग डेढ. सौ साल पहले आदिवासी भाषाओं में 1949-50 से आदिवासी कलम ने अपने स्वरों को शब्दों में डालना शुरू कर दिया। "*[21]

"आदिवासी साहित्य की लंबी मौखिक और लगभग एक सदी पुरानी लिखित परंपरा के विकास के रूप में आए समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरूआत हमें 1991 के बाद से माननी चाहिए।"[22]

आदिवासी साहित्य अन्य साहित्यों से बिल्कुल उसी प्रकार भिन्न है जैसे इनका समाज अन्य समाजों से और यही भिन्नता उनके साहित्य को अन्य साहित्यों से विशिष्ट बनाती है।

डॉ. मनीश कुमार मिश्रा मानते हैं, *"आदिवासी साहित्य हमें समाज विशेष की सामाजिक परंपराओं, मान्यताओं और सन्दर्भों से गहराई के साथ जोड़ता है।"*[23]

आदिवासी साहित्य अभी अपनी पहचान बना रहा है। इनका साहित्य जो सदियों से मौखिक ही था । आज रचनाकार उन्हें शब्द देकर सामने ला रहे हैं और हमसे संवाद करवा रहे हैं। आदिवासी साहित्य में एक तरफ जहां इनका भोलापन झलकता है, छल-कपट रहित जीवन झलकता है, इनका सादा जीवन झलकता है, वही दूसरी तरफ उनकी अपनी अस्मिता और अस्तित्व की खोज दिखती है। इनके साहित्य में स्वयं की अपेक्षा 'समूह' पर बल दिखता है और यही इस साहित्य की विशेषता है । इनके दुःख, कष्ट, खुशी, संघर्ष इनके व्यक्तिगत न होकर सामूहिक बन जाते हैं। आज आदिवासी साहित्य विमर्श इनके अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। जल, जंगल और जमीन तो मुख्य तत्व हैं ही, साथ में इनको अपनी भाषा और

संस्कृति को भी बचाए रखना है। इन्हें अन्य भाषाओं जैसे कि अंग्रेजी व हिन्दी से लगाव नहीं है। अगर लगाव है तो केवल अपनी मातृभाषा से, जिसे बचाते हुए ये अन्य भाषाओं में व्यवहार रखते हैं। आदिवासी साहित्य जो अपने जीवन-दर्शन के साथ एक अलग विशिष्टता लिए हुए है, उसका मूल्यांकन सावधानी से करना होगा।

हरिराम मीणा लिखते हैं, *"आदिवासी साहित्य के रंगरूप को, स्वरूप को अभी उभरकर सामने आना है। इसलिए अभी आदिवासी-विमर्श की साहित्य के माध्यम से हम बात कर रहे हैं। उनमें जैसे उनका एक सौन्दर्यशास्त्र उनका एक आलोचना-कर्म उनको मापने का जो मापदण्ड होता है किस पर उसको तौला जाये वे सारी चीजें आना बाकी है। बहुत धीरे-धीरे आ रहा है। इसलिए अभी आदिवासी समाज में चिंतन की बात आती है तो इन मुद्दों पर बहस की बात करते हैं। मौखिक परंपरा के लिए अपनाया है, साहित्य के माध्यम से लिखित परंपरा में या शुरूआत से देखे तो अपनी शुरूआत का दौर में जितना रचा गया है। उसको कैसे नापा जाय? कैसे उसका आंकलन किया जाये? ये सवाल हैं, जिस पर काम अभी तक नहीं के बराबर हुआ है।"*[24]

अभिव्यक्ति की विधाएँ जैसे कला, चित्रकला, मूर्तिकला और साहित्य अपने-अपने तरीके से समाज को समझते और समझाते हैं। विवेकशील अभिव्यक्ति ही वह कारण है जो मनुष्य को पशु से अलग करती है और साहित्य उसे दिशा देता है। आदिवासी साहित्य उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का इतिहास। आदिवासी साहित्य का स्वरूप व्यापक है। इस साहित्य में जहाँ नृत्य है, संगीत है, प्रकृति चित्रण है, वही दूसरी ओर वेदना है, पीड़ा है, चिंतन है, संघर्ष

की चेतना है। आज आदिवासी लेखक, रचनाकार, नाटककार, कहानीकार उभर कर सामने आ रहे हैं। भले ही संख्या में कम हैं ये, किंतु ये एक मुहिम चला रहे हैं। ये लेखक, विचारक, कवि कई ऐसे सवाल लेकर सामने आए हैं जो सीधे मुख्यधारा से टकराते हैं । मुख्यधारा ने आदिवासियों के प्रति जो नजरिया बनाया है, आदिवासी साहित्य उन नजरियों को नकारता है। आदिवासियों को अपने समाज और अपनी पहचान पर गर्व है।

समय के साथ-साथ साहित्य भी बदलता रहता है। आदिवासी साहित्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है । पहले भाग में सांस्कृतिक उत्सव है, आदिवासी जीवन है, प्रकृति का सौंदर्य हैं, देवी-देवता हैं। दूसरे भाग में उनकी चिंताएँ हैं, उनकी जमीन छीने जाने की पीड़ा है, विस्थापन का दर्द है। तीसरे भाग में आक्रोश और संघर्ष की चेतना है। अब वे सीधे मुख्यधारा के समाज से सवाल पूछते दिख रहे हैं।

आदिवासी अब जान गए हैं कि अपना इतिहास जाने बिना वर्तमान को नहीं बदला जा सकता और यदि वर्तमान नहीं बदला तो भविष्य नहीं बदलेगा। आदिवासी अपने साहित्य में अपनी शौर्य गाथाओं के प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं । अपने आत्मसम्मान के भाव को वह आज कलम की धार से सबको बता रहे हैं । वह अपने समाज, रीति-रिवाज, संस्कार एवं भाषा को सुरक्षित रखना चाहता है। वह अपनी पहचान खुद बनाना चाहता है, किसी दूसरे की दी हुई पहचान को नकारता है। आज उसे यह हक़ भी नहीं कि वह अपने बारे में बोले । इसी दर्द को मराठी के प्रसिद्ध विचारक और कवि वाहरू सोनवणे अपनी कविता में दिखाते हैं -

और 'वे' स्टेज पर खड़े हो

हमारा दुःख

हमें ही बताते रहे

"हमारा दुःख अपना ही रहा

कभी उनका हुआ ही नहीं ..."

हमारी 'शंकाएं' -

हम बड़बड़ाए

कान देकर 'वे' सुनते रहे

और निःश्वास छोड़ा

और हमारे कान पकड़कर

हमें ही धमकाया

माफी माँगो नहीं तो..." [25]

आदिवासी अब पढ़ लिख रहे हैं। उसने कलम को अपना औजार बना लिया है और समाज को जागृत कर रहा है। आदिवासी कवियों ने अपनी कविताओं में आदिवासियों की पीड़ा और वेदना को व्यक्त किया है। गैर-आदिवासियों के हस्तक्षेप से आदिवासियों की संस्कृति, उनका जीवन दर्शन आज लुप्त होता जा रहा है। जिस प्रकार कोई अजगर या साँप किसी को निगलता जाता है उसी प्रकार कवयित्री वंदना टेटे गैर-आदिवासियों पर आक्रोश प्रकट करते हुए कहती हैं-

"तुम तो आए ही

साथ आयी तुम्हारी

भाषा संस्कृति और दर्शन भी

और लील गए आहिस्ता आहिस्ता

लीलता है जैसे बोड़ा

दागता है जैसे बनफोरा

न करैत

तुम हो तीनों का संकर।" [26]

आज आदिवासी साहित्य विद्रोह का नया रूप लेकर प्रतिदिन नया आकार ले रहा है। इनके साहित्य में अपने ढंग की अभिव्यक्ति है, वेदना है, विद्रोह है और जल, जंगल, जमीन के प्रति गहरा लगाव है। विकास के नाम पर इन्हें जब जंगलों से विस्थापित होना पड़ता है तो वे आवाज उठाते हैं कि तुम्हारे लिए भले ये धन कमाने का साधन हो जिसे तुम साफ कर एक नया रूप दे दोगे किंतु ये जंगल हमारे लिए जीवन है, सब कुछ है। कवि रविकुमार गोंड ने अपनी कविता 'आदिवासी अर्ज' में उँची आवाज में कहा है-

"जंगल हमारे हैं, हम जंगल के

सींचा है हमने अपने लहू से

पाला-पोसा, अपने बच्चों की तरह

ये जंगल हमारे पूर्वज हैं

हम इनके भाई-बंधु।"[27]

गैर-आदिवासी लेखकों की तरह आज आदिवासी लेखक भी कविता, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक, यात्रा वृतान्त आदि विधाओं में सृजनात्मक लेखन कर रहे हैं और अपने समाज एवं बाहरी समाज से जुड़े कई मुद्दे उठाते हुए उन पर तीखा प्रहार कर रहे हैं । जल, जंगल, जमीन से इनका आत्मिक संबंध है । इनसे अलग करने के किसी साजिश का इन्हें भान होते ही इनका विद्रोह भी शुरू हो जाता है।

औद्योगीकरण, शहरीकरण, बाजारीकरण के ये शिकार बन रहे हैं। आदिवासी मजबूर हो गए हैं अपनी जमीन छोड़कर गैर-आदिवासियों के बीच आकर बसने के लिए, जहाँ उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सबसे ज्यादा बेबस हैं आदिवासी स्त्रियां, जो आर्थिक कमजोरी के कारण शहरों में किसी के घर या कारखानों में काम करती हैं। ऐसी जगहों पर पुरूषों की भेड़िया निगाहों से बचती बचाती भागती फिरती हैं। केवल बाहरी समाज में ही नहीं, आज ये अपने समाज में भी अधिकारों से वंचित हैं और असुरक्षित हैं। अपने ही समाज में पनपी कई कुरीतियों का ये शिकार हो रही हैं। इनके साहित्य में अपने ढंग की अभिव्यक्ति है, वेदना है, विद्रोह है। आदिवासी जीवन ही इनके साहित्य से जुड़ा है। ये जीवनवादी साहित्य है। यह आदिवासी साहित्य ही है जो समाज के सबसे ज्यादा निकट है। इसमें कोई लाग-लपेट नहीं है। कोई व्यक्तिगत कुंठा नहीं जो है। जो कुछ भी समुदाय के हित में है, वही सामूहिक है। उनके यहाँ जंगल और जमीन से जुड़ी चिंताएं हैं तो विकास के नाम पर हो रहे प्रपंचो के विरुद्ध

विद्रोह भी है। प्रकृति के साथ-साथ चलने और जीने का संकल्प है उन्हें इसकी प्रेरणा देता है। के. सच्चिदानन्द लिखते हैं, *"आदिवासी साहित्य जीवनदायी साहित्य है। आदिमों के सर्वांगीण उत्थान का सवाल लेकर यह साहित्य स्थापित समाज व्यवस्था को ललकार रहा है, साथ ही यह आदिमों की सामाजिक रचना और एकात्म जीवन का विचार भी रखने लगा है। इस साहित्य का सपना है कि आदिम समूहों में वर्गरहित, जातिरहित समाज-व्यवस्था रची जाए। ऐसे जीवन मूल्य आदिवासियों के थे ही नहीं उन्हें वे कभी नहीं स्वीकारेंगे।"*[28]

आदिवासी साहित्य उनके अपने जीवन का ही हिस्सा है। यह साहित्य केवल उनकी कृतियों को सुन्दर बनाने, कल्पना के सपनों में रहने या कोई पुरस्कार पाने के लिए नहीं लिखा गया है। बल्कि सही अर्थों में आदिवासी साहित्य ही पूरे भारत की छवि है। भारत को बचाए रखने के संघर्ष का साहित्य है। आदिवासी साहित्य पर विनायक तुमराम लिखते हैं- *"वनवासियों का क्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की शुरूआत करने वाले है यह साहित्य। आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत वेदना तथा अनुभव का शब्दरूप है।"*[29]

अंत में हम यह कह सकते हैं कि आदिवासी आरंभ के निवासी हैं। भारत में लगभग 532 आदिवासी जनजातियाँ पाई जाती हैं जो सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 7 प्रतिशत ही है । आदिवासी सामूहिक जीवन जीते हैं। ये अधिकतर पर्वतीय प्रदेश या जंगलों में रहते हैं। आदिवासी जीवन शैली में मनुष्य और प्रकृति तथा उसके जीव-जन्तु साथ-साथ जीवन व्यतीत करते हैं, साथ-साथ कष्ट झेलते हैं, हँसते-रोते-गाते हैं। इनकी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति है

जो इन्हें अन्य जातियों अथवा संस्कृतियों से अलग करती है। इनके रहन-सहन, खान-पान, नाच-गान, इनकी सरलता, भोलापन अपने आप में विशिष्ट है। क्षेत्र की दृष्टि से आदिवासियों को चार भागों में बाटा गया हैं- उत्तर पूर्वी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र एवं दक्षिणी क्षेत्र। आदिवासी संस्कृति अपने आप में विशिष्टता प्रस्तुत करती है। आदिवासी संस्कृति में जाति समानता, सहयोगिता, लिंग समानता, एकता, प्रकृति से निकटस्थता आदि प्रवृतियाँ दिखती हैं। आदिवासियों पर आज खतरे के बादल मंडरा रहे हैं। ये कई समस्याओं से जूझ रहे हैं जिनमें सर्वप्रमुख है - इनको इनकी ही जमीन से बेदखल किया जाना । इन्हें जल, जंगल, जमीन जो इनके साथी हैं, उन्हीं से दूर कर पलायन पर मजबूर कर दिया जा रहा है। समाज में ये आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, राजनैतिक समस्याओं से संघर्ष कर रहे हैं। ये एक बड़ी समस्या है जिसके लिए ये ब्रिटिश शासन काल से अब तक लड़ रहे हैं।

आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य हैं। यह साहित्य प्रकृति प्रेम के कई रूपों के साथ रचा साहित्य हैं। यह प्रकृति में आस्था रखने वाला साहित्य हैं। मुख्यधारा से हटकर यह साहित्य स्वयं में अपनी अलग विशिष्ट पहचान बनाने वाला साहित्य है। यह साहित्य प्रकृति और जीवन के साथ न्याय करता हुआ समानता का सन्देश देता है। उनके जीवन की विविधरंगी दुनिया सामूहिकता, समानता, एकता, प्रकृति प्रेम, नृत्य-गीत, संस्कृति, धर्म, भाषा, जीवन के सुख-दुःख, जीवन-मरण, लड़ाई-झगड़े, सवाल, आक्रोश, पीड़ा, शोषण, समस्या व उनका हल, अपना जीवन दर्शन और लोक-साहित्य के अपार खजाने से भरी हुई है। इनके साहित्य में अपनी संस्कृति, समाज, समुदाय और जीवन मूल्यों के प्रति गहरा लगाव

व्यक्त होता है। समुदाय की रक्षा करते हुए जीवन के सभी पहलुओं को सुरक्षित रखना ही इस साहित्य का उदेश्य है। आदिवासी साहित्य की संवेदना उसी प्रकार भिन्न है जैसे आदिवासी समाज अन्य समाज से भिन्न है। आदिवासी के साथ-साथ गैर आदिवासी भी इसमें लिख रहे हैं। अवधारणा से जुड़ी एक महत्वपूर्ण बात यह है कि आदिवासी साहित्य लेखन को लेकर किसी तरह की बंदिश नहीं दिखती जो आदिवासी लेखन के हित में है। अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा और मुक्ति के लिए संघर्ष करते रहना ही ज़िंदगी है, इसी प्रयोजन के लिए आदिवासी साहित्य की रचना हुई है।

संदर्भ सूची:

1. हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, डॉ.पंडित बन्ने, अमन प्रकाशन, कानपुर, पहला संस्करण, 2014, पृ. 13
2. वही, पृ. 13
3. इस्पातिका (पत्रिका), सं.अविनाश कुमार सिंह, वर्ष-2, जन.-जून 2012, अंक-1, जमशेदपुर पृ. 161
4. भारतीय जन जातीय संस्कृति, कमल स्वरूप श्रीवास्तव, आदि बुक्स, दिल्ली, 2013, पृ.2
5. हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, डॉ. पंडित बन्ने, अमन प्रकाशन, कानपुर, पहला संस्करण, 2014, पृ. 14

6. भारतीय जन जातीय संस्कृति, गया पाण्डेय, कान्सैप्ट पब्लिसिंग कंपनी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007, पृ. 2
7. हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श, डॉ.पंडित बन्ने, अमन प्रकाशन, कानपुर, पहला संस्करण, 2014, पृ. 15
8. आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013, पृ. 14
9. वही पृ. 9-10
10. आदिवासी कौन, रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2016, पृ. 13
11. विश्व की आदिवासी जनजातियाँ, संजीव तंवर, अरुण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2014, पृ. 141
12. आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013, पृ. 137
13. आदिवासी विमर्श, कुमार कमलेश, तेज प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2014, पृ.24
14. आदिवासी स्वर-सामाजिक आर्थिक जीवन, कुमार चैहान,श्रीमती रेनू चैहान, स्वर्ण जयंती, दिल्ली, संस्करण, 2005, पृ.193

15. आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013, पृ. 123

16. आदिवासी केन्द्रित हिंदी साहित्य, सं. डॉ. उषाकीर्ति,डॉ. सतीश पाण्डेय,डॉ. शीतलाप्रसाद दुबे, अतुल प्रकाशन, कानपुर, दूसरा संस्करण,2017, पृ. 30

17. आदिवासी साहित्य यात्रा, सं.रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2018, पृ. 24

18. आदिवासी साहित्य विमर्श, सं.गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 30,31

19. आदिवासी दर्शन और साहित्य, वंदना टेटे, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण , 2016, पृ. 49

20. आदिवासी समाज और साहित्य, सं. रमणिका गुप्ता, कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 94

21. आदिवासी साहित्य विमर्श,सं.गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 8

22. वही पृ. 9

23. समकालिन विमर्श मुद्दे और बहस, सं.रवि कुमार गोंड,महेंद्र प्रताप सिंह, अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण ,2014, पृ. 330

24. साक्षात्कारों में आदिवासी, सं.दुर्गाराव बनावतु, भीम सिंह, अलख प्रकाशन, जयपुर, पहला संस्करण, 2015, पृ. 26

25. आदिवासी स्वर और शताब्दी, रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014 पृ. 101

26. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015, पृ. 77

27. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 36

28. आदिवासी समाज और साहित्य, सं. रमणिका गुप्ता, कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 17

29. वही, पृ. 16-17

द्वितीय - अध्याय

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति

(क) आदिवासी समाज एवं संस्कृति

(ख) आदिवासी समाज में स्त्री

द्वितीय अध्याय

इक्कीसवी सदी की आदिवासी हिन्दी कविताओं में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति

बीते कुछ वर्षो में आदिवासी विमर्श ने समकालीन हिन्दी साहित्य में तेजी से कदम बढ़ाया है। उनका साहित्य आज हिंदी, अंग्रेजी और दूसरी अन्य भाषाओं सहित लगभग 90 आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा है। आज आदिवासी कविता लिखने वाले कई कवि साहित्य में अपनी पहचान बना रहे हैं। आदिवासी कविता, आदिवासी एवं गैर आदिवासी दोनों ही लिख रहे हैं।

आदिवासी साहित्य पहले मौखिक रहा है । आज आदिवासी पढ़-लिख गए हैं और इनकी कलम अब स्वरों को शब्दों में ढालना अच्छी तरह जान गई है। आज इनके तीर कलम बन चुके हैं। आज हिन्दी साहित्य में इन्होंने अपनी ठोस जगह बना बनाकर हिन्दी साहित्य जगत को जैसे संपूर्णता प्रदान की है। कविता भावों को संक्षिप्त और सारगर्भित ढंग से अभिव्यक्त करने वाली साहित्यिक विधा है। आदिवासी कविताओं में आदिवासी जीवन, समाज और संस्कृति, उनकी समस्या और संघर्षों की अभिव्यक्ति किस रूप में देखने को मिलती है, इसका विश्लेषणात्मक अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

क) आदिवासी समाज एवं संस्कृति

आदिवासी कविताओं को पढ़कर उनके समाज एवं संस्कृति के कई पहलू हम गहराई से जान पाते हैं। अपने समाज व संस्कृति के प्रति उनका लगाव कितना गहरा है, समाज को आगे बढ़ाने, संस्कृति के संरक्षण एवं सामाजिक गुण-दोष, गीत-संगीत, पर्व त्योहारों का चित्रण, वेश-भूषा, भाषा, प्रकृति से तालमेल, प्राकृतिक सरंक्षण, जीने की कला, जीवन दर्शन, शादी-ब्याह, जन्म-मृत्यु, प्रेम-प्रसंग, आत्मसम्मान के लिए विरोध-संघर्ष इत्यादि की अभिव्यक्ति तो उनकी कविताओं में हुई ही है, साथ ही समय के साथ उनके जीवन की नयी बातें भी जुड़ती गई हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य वही दिखाता है जो समकालीन समाज में घटित होता है। किसी भी समाज की संस्कृति उस समाज के जीवन दर्शन का दर्पण होता है। आदिवासी साहित्य में भी जहाँ शुरूआती दौर में हँसना-गाना, प्रकृति चित्रण आदि मिलते हैं, वहीं बाद के साहित्य में समाज और संस्कृति का बदलता हुआ स्वरूप देखा जा सकता है।

आदिवासी समाज का विशेष संबंध व लगाव जंगल से रहा है। वनों से इनका सदैव घनिष्ठ संबंध रहा है। वन एवं वन्य जीवों के साथ इनका पारिवारिक रिश्ता रहा है। यह प्रकृति के सानिध्य में रहता है। जंगल को वह अपना पूर्वज मानता है और स्वयं को उसका भाई-बंधु। कवि रविकुमार गोंड अपनी कविता "आदिवासी अर्ज" में प्रकृति एवं जंगलों के साथ अपने समाज के संबंधों को इस तरह व्यक्त करते हैं-

जंगल हमारे है, हम जंगल के

सींचा है हमने अपने लहू से

पाला -पोसा, अपने बच्चों की तरह

ये जंगल हमारे पूर्वज हैं

हम इनके भाई-बंधु। [1]

आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति के कारण अन्य समुदायों से अलग है। यह समुदाय जंगल को ही अपना घर, कृषि जीवन को ही अपना संसार मानता है। इनकी संस्कृति में एक प्रकार का भोलापन, एक तरह की निश्छलता दिखती है। यहाँ कोई दिखावा नहीं है। यह समुदाय प्रकृति सुरक्षा को ही अपना धर्म मानता है। भगवान गव्हाडे अपनी कविता 'आदिवासी संस्कृति' में स्पष्ट शब्दों में आदिवासी संस्कृति के स्वरूप को इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

हमारा घर जंगल-जमीन

हमारा संसार खेत-खलिहान

हमारी सन्तान पशु-पक्षी धन

हमारा आँगन हरे-मरे धान

हमारा मान-सम्मान

बच्चों की मुसकान

x x x

हमारा धर्म प्रकृति सुरक्षा के लिए बलिदान

हमारे माता-पिता धरती और आसमान

हमारे देवता सूर्य चंद्र ग्रहमान

x x x

हमारी समता स्त्री-पुरूष एक समान

हमारी संस्कृति मातृसत्ता प्रधान" [2]

आज भी आदिवासियों ने पुराने जमाने से चली आ रही अपनी लोककला, अपने लोकनृत्य एवं अपनी परंपराओं को बचाकर रखा है। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी कला एवं संस्कृति को हस्तांतरित करते जाते हैं । इनकी धार्मिक आस्थाएँ, पहाड़ों में नृत्य करते हुए तीर कमान बनाने की परंपराएँ इनकी कविताओं में जहाँ-तहाँ देखने को मिलती हैं। 'ए सागों धिरोंम धिरोंम' कविता में कवियत्री वंदना टेटे आदिवासी संस्कृति को उजागर करते हुए बड़ी सुन्दरता से कहती हैं-

सारंडा में कौन लोग हाथ जोडा रहे हैं

ए दादा सलय सलय .....

नेतरहाट के पाट पर कौन लोग आग जला रहे हैं

ए दीदी लसय लसय ....

डोम्बारी पहाड़ पर कौन लोग तीर चमका रहे हैं

ए संगी रियो रियो .....

बीरू दिसुम (देश) में कौन लोग नाच रहे हैं

ए सांगों धिरोम धिरोम ....

धिरोम धिरोम .....अनि चोनानिंग धिरोम धिरोम... [3]

आदिवासियों का मुख्य ध्येय है अपने आदिम मूल्यों का संरक्षण करना। आदिवासी समाज व संस्कृति का गहरा जुड़ाव श्रम से है । फसलों की बुआई-कटाई, धार्मिक आस्थाएँ, उनकी परंपराएँ आदि बातें आदिवासी सस्कृति में बड़ी ही सहजता एवं ईमानदारी से दिखती हैं। आज विकास की प्रक्रिया में आदिवासियों को अपनी संस्कृति छूटती नजर आ रही है। अपनी कविता 'हमारे बच्चे नहीं जानते तोतो रे नोनो रे' में कवयित्री वंदना टेटे अपने आदिवासी समाज व संस्कृति से उनके बच्चों, जो कि उनके समुदाय की भावी पीढ़ी है, के अनभिज्ञ रह जाने से चिंतित होते हुए लिखती हैं-

सच में

मैं चिंतित और उदास हूँ

कि नहीं जान पाएंगे मेरे बच्चे

डोरी कुसुम से तेल निकालने की

मछली और चिडिया पकडने की

देशज तकनीक

महुआ लठ्ठा, इमली के बीज के साथ

औटाया गया खाने का स्वाद।

सरहुल पर्व से पहले

जंगल के फल

फूल को तोडने खाने की मनाही

करमा के बाद खेतों में खड़ी

भेलवा की टहनियों का राज

आहं ! नहीं जान पाएंगे मेरे बच्चे [4]

आदिवासियों का सामाजिक जीवन अनेक कलाओं से भरा है। इनकी चित्रकला, संगीत कला, नृत्य आदि कलाएँ प्रशंसनीय हैं। इनमें लोकगीत गाने की परंपरा है। इन लोकगीतों में सामाजिक संक्रमण, परंपरा, आचरण, रूढ़ि, अंधविश्वास, शहरीकरण, स्त्री-पुरूष भेद जैसी कई चीजें देखी जा सकती हैं । गाना और नाचना इनके जीवन का अभिन्न अंग है । अनुज लुगुन लिखते हैं-

हम उन्हें अपनी आँखों से आश्वासन देते हैं

उनके गीतों, जुगनुओं, तितलियों और सपनों के बारे में,

कितनी शांति होती है यहाँ इस टीले पर ....

पहाड़ की तराई पर, नदी के तट पर,

गीत साझा करते हुए हम सहजीवी होते हैं

कि एक पेड़ से टिकी लतर अपनी देह पर

गिलहरी को उठाकर उसे खिलाती है कोई पका फल

और नदी उकेरती है यह चित्र अपने सिने में

और पहाड़....,क्या झुकते नहीं नदी की आँखों में यह सब झाँकते ! [5]

आदिवासियों की संस्कृति बहुरंगी और पारंपरिक जीवन मूल्यों में आस्था रखने वाली संस्कृति है। अपनी इन परंपराओं को इन्होंने मौखिक और लोकगीतों के रूप में जीवित रखा है। ये प्रकृति के साथ ताल-मेल मिलाकर चलते हैं। ये प्रकृति के पुजारी हैं। अपनी खाने-पीने की आवश्यकताओं की पूर्ति भी ये इसी प्रकृति से करते हैं। शिकार करना, दवा-दारू, लकड़ी आदि प्रकृति से ही लेते हैं और उतना ही लेते हैं जितनी उन्हें आवश्यकता होती है। शिकार से जो भी मिले उसे अपने पूर्वजों को समर्पित करते हैं। अरूणाचल के आदिवासी कुछ इस प्रकार अपने पूर्वजों को शिकार में मिली वस्तुओं को अर्पित करते हैं-

तुम्हें समर्पित सब कुछ

स्वीकार करों अगम बाबु मिथुन -मांस और हड्डी

भेंट चढ़ाता हूँ

सूअर मांस और हड्डी

भेंट चढ़ाता हूँ

यथासाध्य जो अर्पित

स्वीकार दकरों अगम बाबु

चावल निर्मित मदिरा

भेंट चढाता हूँ [6]

आदिवासी समाज का सीधा संबंध जंगल से है। जंगल-वन से शिकार कर वे अपनी शौर्य गाथा स्वयं गाते हैं और गर्व से स्वयं को सच्चे मर्द की उपमा देते हुए कवि चामूकाल राठवा कहते हैं-

जंगल के बाघ, भेड़िया

हिरण और बारहसिंगा

भाला- बर्छी फेंका हमने

पत्थरों से ही मार गिराते

ऐसे मर्द हम भील

सच्चे मर्द हम भील

नदी नाले लांघ हम

दौड़कर पहाड़ चढ़ते

कान पकड़कर बाघा लाते

कान पकडकर बाघ लाते

ऐसे काबिल शिकारी

सच्चे मर्द हम भील

सच्चे मर्द हम भील [7]

आदिवासी समाज जंगलों से ही माँस, कंद-मूल, जड़ी-बूटी, लकड़ी घास आदि लाता है। वही खेती कर अन्न - धान उपजाता है। इससे सिद्ध होता है कि आदिवासी समाज मेहनत से खेती कर अपना पेट भरता है। अन्न-धान बोते समय वह बहुत परिश्रम करता है, साथ ही वह गीत अवश्य गाता है और वही गीत उन्हें इतनी सुरीले लगते हैं कि वे अपनी सारी थकान भूल जाते हैं। कितनी सुंदर इनकी संस्कृति है कि ये दुःख-थकान में भी गा उठते हैं। कवयित्री सरिता सिंह बडाईक अपनी कविता 'रोपनी' में अपने समाज व संस्कृति को याद करते हुए लिखती हैं-

अखरा में नाचती हुई

बूंढों जवानों और

नवयौवनाओं की टोली

याद दिला रही हैं

आज रोपनी

काले घने बादलों के बीच

भीगता हुआ सर

माथे से टपकती बूंद

हाथों में धान का बी़ड़ा

घुटने तक कादो में धँसे पांव

गा रहा है सारा गांव

दो होंठो के बीच

सुरीली 'सरीता' का बहाव

कितनी कर्णप्रिय [8]

आज आदिवासी समाज बाहरी साजिशों का शिकार हो रहा है। गैर-आदिवासी समाज की संस्कृति अपनाने- और कुछ अपनी रूढ़ परम्पराएँ, जिन्हें आदिवासी समाज अपनी ही संस्कृति-परंपरा मानते हैं- से इनका स्वयं का समाज दूषित हो रहा है। इक्कीसवीं सदी की आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल का नाम प्रख्यात है। झारखण्ड प्रांत से संबंधित होने के कारण इनकी कविताओं में झारखण्ड के समाज एवं संस्कृति का चित्रण देखने को मिलता है। वह अपने समाज में हो रही बाहरी साजिश का जिक्र करते हुए अपने समाज के लोगों को समझाती और फटकारती भी हैं। वह बताती हैं कि किस प्रकार बाहरी चीजों के आकर्षण में उनका समाज उजड़ रहा है।

संथाल परगना में 'हिजला मेला' बहुत प्रसिद्ध है जिसे अंग्रेजों ने अपने शासन काल में मनोरंजन हेतु शुरू किया था। आज आदिवासी इस खेल को अपनी संस्कृति-परंपरा कहकर एक ग्रिस लगे खंभे में चढ़ाते हैं, जिसके ऊपर एक घड़े में कुछ लड्डू एवं हजार-पांच सौ रूपये रखे

होते हैं । इस खंभे में फिसलन है जिसके कारण लोग गिरते हैं और फिर चढ़ते हैं। लोग उन्हें देख कर खूब हँसते हैं। निर्मला पुतुल इस खेल को आदिवासियों के लिए एक विडंबना के रूप में देखती हैं। यह खेल उन्हें एक तमाशा सा लगता है जो उनके अपने समाज की संस्कृति नहीं है। वह कहती हैं -

वे तुम्हारी बहादुरी पर नहीं
जंगलीपन पर हँस रहे हैं ढेपचा सोरेन !
हँस रहे हैं तुम्हारी नादानी और मूर्खता पर
जैसे बंदरों की जमात में रोटी का टुकड़ा फेंक
तमाशा देख हँसते हैं लोग [9]

आदिवासी समाज में 'हड़िया' में देशी शराब बनता है जिसे वे पर्व- त्योहार पर या अपने शरीर की थकान दूर करने के लिए पीते हैं। किंतु आज आदिवासी समाज के पुरूष विदेशी शराब के आकर्षण में आ गए हैं। यहाँ तक कि बस्ती का प्रधान तक भी विदेशी शराब के लालच में अपनी बस्ती तक गैरों के हाथ में गिरवी रख देता है। कई पुरूष तो एक बोतल शराब के बदले अपने बस्ती की लड़कियों को भी दूसरे के हाथों बेच देते हैं। बाहरी चीजें इनके समाज को उजाड़ने की कोशिश में तो लगी ही हैं किंतु स्वयं कुछ आदिवासी भी अपने समाज को उजाड़ रहे हैं। कवयित्री निर्मला पुतुल अपने समाज के पुरूषों को विदेशी शराब पीने से रोकती हैं। अपने समाज में फैली कुव्यवस्था से कवयित्री दुःखी हो कह उठती हैं-

कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान

जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता हैं

पूरे गाँव को गिरवी

और ले जाता है कोई लकड़ियों को गट्ठर की तरह

लादकर अपनी गाड़ियो में तुम्हारी बेटियों को

हजार पाँच-सौ हथेलियों पर रखकर [10]

आदिवासी समाज अपनी विशेष संस्कृति, एकता एवं निश्चलता के कारण अन्य समाजों से भिन्न है। अपने भीतर ही मौजूद कई कुरीतियों, अंधविश्वासों के साथ-साथ यह समाज बाहरी शोषण-उत्पीड़न से भी जूझ रहा है। विशेषकर महिलाओं को बाहरी और भीतरी दोनों ही स्तर पर जूझना पड़ रहा है। आज की बेजोड़ आदिवासी कवयित्री वंदना टेटे अपनी आदिवासी महिलाओं के लिए कहती हैं, *"वे लड़ रही हैं, अपने समाज के भीतर मौजूद अंधविश्वासों, कुरीतियों, बाहरी शोषण-उत्पीड़न से।"*[11]

आदिवासी समाज में डायन-चुड़ैलों से संबंधित कई अंधविश्वास प्रचलित हैं। इसके अलावा बाहरी शोषण-उत्पीड़न आदि भी हैं जिसके कारण आदिवासी महिलाओं को इनसे जूझना पड़ रहा है। परिणामस्वरूप यह समाज दूषित और कमजोर पड़ रहा है, साथ ही महिलाएँ अन्याय झेलने को मजबूर हैं। कवयित्री निर्मला पुतुल के शब्दों में एक आदिवासी महिला अपने दूर देश

गए पति से कह रही है कि उसके न होने से उसे क्या-क्या झेलना पड़ रहा है, वह कितनी असुरक्षित है-

“और एक दिन तो गजब ही हो गया

लखना के बेटे को साँप ने काटा

तो सबके सब आ धमके हम पर

कहने लगे डायन हैं हम ।

x x x

और ब्लॉक के बड़े -बाबू का क्या बताएं

ऐसी चीज माँगता है कि बताने में भी शर्म आती है” [12]

आदिवासी समाज में जहाँ नारी पुरूष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलती है किंतु जहाँ इससे एक चूक भी हो जाए तो समाज इसे दंड देने से नहीं चूकता। भले ही स्त्री ने अपने हक की बात की हो या अपने परिवार और समाज की भलाई के खातिर कोई कदम उठायी हो, पर वह दंडित अवश्य होती है। डायन प्रथा समाज में एक अभिशाप रही है, स्त्री विरोधी यह प्रथा स्त्रियों के अधिक्कार एवं स्वतंत्रता को निर्बाध ढंग से छीने जाने के हथियार की तरह प्रयोग में लाई जाती रही है। आदिवासी समाज भी इस अंधविश्वास और स्त्रीविरोधी प्रथा से मुक्त नहीं रह पाए। इस संबंध में निर्मला पुतुल कहती हैं-

बस ! बस !! रहने दो !

कुछ मत कहो सजोनी किस्कू

x x x

पता है बस्ती की नाक बचाने खातिर

तब बैल बनाकर हल में जोता था

जालिमों ने तुम्हें

खूँटे में बाँधक खिलाया था भूसा

x x x

हक की बात न करो मेरी बहन

मत माँगो पिता की संपत्ति पर अधिकार

x x x

भरी पंचायत में डायन करार कर

दण्डित की जाओगी" [13]

राजस्थान के कई आदिवासी अकाल के समय भूख से मारे गए। सूखे में आज भी आदिवासियों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। अन्न, पानी की खोज में इन्हें मीलों भटकना पड़ता है। कई मारे जाते हैं तो कइयों को अन्न-पानी की खोज में पलायन करना पड़ता है। हरिराम मीणा राजस्थान के आदिवासी समाज की इन्हीं समस्याओं को अपनी कविता में उकेरते हैं-

"इतने बड़े अपने साम्राज्य में

सूरज को यही मिली

अपना अलाव जलाने की जगह

x x x

अन्न का आखिरी दाना

चारे का तिनका तिनका

पानी का कतरा-कतरा।" [14]

आदिवासियों का इलाका प्राकृतिक संपदाओं से भरा है। फिर भी आदिवासी समाज सदा हाशिए पर रहे हैं। इन्हें तोड़ने-मरोड़ने की साजिशें चलती रही हैं। इस समाज के जीवन दर्शन में सामूहिकता, समानता, प्रेम आदि हैं जो इन्हें टूटने नहीं देता। इन्होंने कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, न ही किसी का कुछ छीना, फिर भी गैर-आदिवासी दिकू समाज के अपने प्रति रवैये को देख प्रश्न करता है कि आखिर हमारे समाज का अधिकार छीनने वाले तुम कौन हो? कवि रवि कुमार गोंड की कविता 'आदिवासी प्रश्न' में एक आदिवासी कहता है-

मैं आदिवासी हूँ

जंगल का वासी हूँ

अभी भी संजोए रखा है मैंने

प्रेम, एकता भाई-चारगी

अस्सी प्रतिशत प्राकृतिक संसाधन

हमारे क्षेत्र में मिलते हैं

फिर भी, हम आज हाशिये पर हैं

आखिर क्यों?"[15]

जहाँ भाषा का विनाश होता है, वहाँ समाज का भी नाश निश्चित है। आदिवासी समाज भी आज अपनी भाषा-बोलियों को नष्ट होते देख बेचैन है। इनके पुरखों ने सदियों पहले इस भाषा को एक-एक ध्वनि मिलाकर बनाया है और जिसे आज तक बचाकर रखते आए हैं । आज बाहरी समाज के आक्रमणों, धर्म-प्रचारकों सहित अन्य विविध प्रकार के संक्रमणों से इन पर लगातार हमले हो रहे हैं जिससे ये अपनी भाषा भूलते जा रहे हैं। आदिवासी समाज आज जल, जंगल, जमीन के साथ-साथ अपनी भाषा बचाने में लगा है। कितनी विडंबना है कि भारत के मूल निवासी जो बगैर किसी को परेशान किए अपने समाज, अपनी संस्कृति तथा अपनी भाषा के साथ खुश थे, आज उन्हीं का ह्रास दिख रहा है। कवि अश्विनी कुमार पंकज की कविता 'भाषा कर रही है दावा' में उन्होंने अपनी भाषा को मौत के मुँह में जाता देख, दुख प्रकट करते हुए लिखा है-

"पुरखों ने

किसी काल की

किसी सदी में ध्वनियों को चुन-चुनकर

रोप दिया था जहाँ-तहाँ खेतों में

सदियों तक फूटती रही जिनमें शब्दों की बालियाँ

बाद में बुना जिनसे पुरखों ने भाषा की चटाई

छाता

टोकरी जैसी दूसरी बहुत सारी वस्तुएँ

फिर सबको सहर्ष सहेजा और समेटा

और बहा दिया नदी में

तब से ही तैर रही हैं भाषाएँ

धरती की सारी नदियों में " [16]

आदिवासी समाज स्वयं को प्रकृति के साथ जोड़कर देखता है। उनकी अपनी एक विशिष्ट जीवन शैली है जो प्रकृति से जुड़ी है, पेड़-पौधों, जानवर और जीव-जंतुओं से जुड़ी है। इन्हीं के संग ये उठते-बैठते, हँसते- गाते हैं। ये प्रकृति का अनुसरण करते आए हैं। ये प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितने की इन्हें आवश्यकता है। प्रकृति के खुले स्वच्छंद रूप से ही ये स्वयं को जोड़ते हैं। गैर-आदिवासियों ने इनकी जो छवि बनाई है, उसके अनुसार ये सर्वप्रथम 'नंगे' हैं। यही फर्क है एक गैर-आदिवासी और आदिवासी दर्शन में। इनके पहनावे, तन पर कम कपड़ें या फिर बिना वस्त्र के देख तथाकथित सभ्य समाज इन पर हँसता है, जबकि आदिवासी समाज अपने को

प्रकृति के समान निर्मल व अनावृत मानता है। "मैं नंगा नहीं हूँ" कविता में कवि अश्विनी कुमार पंकज अपने आदिवासी समाज का दर्शन स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

हमारे जंगलों में

पहाड़ो में नदियों में

बस्तियों में

कोई भी नंगा नहीं होता

हालांकि वहाँ प्रकृति

की तरह ही हम

पेड़-पौधे, जनावर, जीव-जंतु

चिरई-चिरगुन

सब कोई अनावृत हैं

निर्मल है

जब से यह सृष्टि बनी है" [17]

आदिवासी की पहचान उसकी संस्कृति से ही है। उनकी संस्कृति का गहरा संबंध उनके जीवन से होता है। इनकी संस्कृति प्रकृति से जुड़ी है। इनके सांस्कृतिक संसार में प्रकृति-प्रेम, नृत्य-गीत, कला, धार्मिक आस्थाएं, मिथक, सामाजिक संस्कार, खान-पान, पोशाक, रहन-सहन

एवं मनोरंजन की अन्य क्रियाएँ शामिल हैं जो इनकी आत्मीय अभिव्यक्तियाँ हैं। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो इतने कष्टों से जूझ रहे आदिवासियों के पास अपना कहने को अगर कुछ है तो वह है इनकी संस्कृति। गीत और नृत्य इनके जीवन का हिस्सा है, हर सुख-दुख में इनका साथी है। ये संगीत के सहारे अपने दुःख को साझा करते हैं। मांदर की थाप, इनके राग इन्हें सुकुन देते हैं। अपनी संस्कृति, नृत्य-गीत, वेश-भूषा की झलक देते हुए कवयित्री ग्रेस कुजूर कहती हैं-

"संगी रे

कितने चमकते थे

पटवा में खोंसे हुए तुम्हारे

उजले पंख-बगुले के

और कितना लहराता था

अखरा में नाचते वक्त तुम्हारी तोलोंग का फुदना

कितना सुकून पैदा करती थी

रात के सन्नाटे में

मंदार की थाप

और हवा में घुलते

'अंगनई ' और 'डमकच' के गीत।" [18]

कहने को तो आदिवासियों की शिक्षा के लिए कई नीतियां बनाई गयी । प्रण लिया गया कि इक्कीसवीं सदी में कोई अनपढ़ नहीं रहेगा आदि आदि। कुछ काम तो हुए, किंतु कुछ केवल कागजी कार्य बनकर ही सीमित रह गए। आज भी कई आदिवासी इलाकों के बच्चे और महिलाएं अनपढ़ हैं और बाल श्रम एवं मजदूर बनने के लिए मजबूर हैं। आदिवासी समाज में अब भी शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी है। शिक्षा के अभाव के कारण ही आज आदिवासी समाज पिछड़ा हुआ है। समाज में गरीबी, बीमारी, अंधविश्वास आदि समस्याएं है जिनके कारण भी आदिवासी समाज पिछड़ा हुआ है और विकास के पथ से अभी भी दूर है। केदार प्रसाद मीणा लिखते हैं- ''अशिक्षा आदिवासियों की एंक गंभीर समस्या है। अशिक्षा के चलते आदिवासियों में आत्मविश्वास की भारी कमी होती है और आत्मविश्वास के अभाव में ये पुलिस में भी अपनी शिकायत दर्ज नहीं करवा पाते हैं। शिक्षा के अभाव में आदिवासी समाज में कई तरह के अंधविश्वास बने रहें हैं, जैसे -डायन प्रथा। महाजन इन्हें शिक्षित होने के अवसर ही प्राप्त नहीं होने देते हैं। ये उनका शोषण कर उन्हें असहाय बनाते रहते हैं, जिसके चलते आदिवासी कभी पेट की चिंता और बेगार से आगे बढ़कर सोच ही नहीं पाते हैं।"[19]

आधुनिक दौर में आदिवासी समाज शिक्षा की कमी के कारण एक पिछड़ा हुआ समाज है, इसकी अभिव्यक्ति आदिवासी कविताओं में भी मिलती है। 'वह आदमी' कविता में सहदेव सोरी अशिक्षा के कारण आई समस्याओं को इंगित करते हुए लिखते हैं -

"अशिक्षा

भूख

बेकारी की दलदल में

बने हुए किंवदती-सा

आधुनिकता के दौर में भी पिछड़ा गया

उन्नति के शिखर पर" [20]

बेरोजगारी, अशिक्षा एवं बाहरी हमलों के चलते आदिवासी समाज आर्थिक रूप से भी पिछड़ा हुआ है। आदिवासियों से इनके जल, जंगल, जमीन हथिया लिए जाते हैं और इन्हें हाशिए पर छोड़ दिया जाता है, जहाँ गरीबी के चलते ये उचित ढंग से शिक्षा का भी लाभ नहीं उठा पाते । आदिवासी समाज में आर्थिक तंगी का एक मार्मिक उदाहरण डॉ. वाहरू सोनवणे की कविता 'निक्कर' में देखा जा सकता है-

मास्टर जी ने भेजा है

बुलाने के लिए

चल जल्दी ।

किसू ने कहा

तब बोला दिलप्या

'आता हूँ रे ! रूक जरा

पाखाने गया था

सो देर हुई

बहुत जुएं थीं

निक्कर में मेरी

हगते-हगते

मार रहा था

अभी भी बची हैं

लीखें और ढीलें

पहले ही

गंदी थी निक्कर

और भी

गंदी हो गई

सोचा फेंक दू इसे

पहनने को /मगर

दूसरी निक्कर कहां थी ?"[21]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आदिवासी समाज और संस्कृति का रचनात्मक चित्रण कविता में किस तरह से व्यक्त हुआ है। आदिवासी जीवन की अभिव्यक्ति के एक माध्यम कविता में भी आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिति का संवेदनशील

चित्रण देखने को मिलता है। इस प्रयास में कई पुरानी और नई पीढ़ी के कवि आगे आ रहे हैं जो आदिवासी साहित्य की उन्नति का संकेत है।

ख . आदिवासी समाज में स्त्री :

हमारा देश पुरूष प्रधान सत्ता को स्वीकार करता आया है। स्त्री, समाज एवं घर-परिवार में पूर्णतया उपेक्षित है। यों तो कहा जाता है कि आदिवासी समाज में स्त्री-पुरूष में भेदभाव नहीं होता, किंतु सभी आदिवासियों में स्त्री की स्थिति एक-सी नहीं है। 'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री' की नायिका कहती है कि हम अपने को पुरूष दृष्टि से देखती हैं जिसके कारण आज हम अपने समाज और घर-परिवार में ही अपना अस्तित्व खो चुकी हैं। आज हम अपनी ही जमीन में अपनी ही तलाश कर रही हैं-

अपनी कल्पना में हर रोज
एक ही समय में स्वयं को
हर बेचैन स्त्री तलाशती है
घर प्रेम और जाति से अलग
अपनी एक ऐसी जमीन
जो सिर्फ उसकी अपनी हो" [22]

यहाँ नायिका अपने हिस्से का एक मुक्त आकाश चाहती है। वह अपनी स्वयं की पहचान चाहती है। समाज में स्त्री की एक व्यक्ति के रूप में भूमिका चाहती है। स्त्री को सिर्फ देह मानने

की भोगवादी सामंती मानसिकता पर प्रहार करते हुए 'क्या तुम जानते हो' कविता में निर्मला पुतुल नायिका के स्वर में पूरी पुरूष जाति से प्रश्न करती हैं-

क्या तुम जानते हो

एक स्त्री के समस्त रिश्ते क्या व्याकरण ?

बता सकते हो तुम

एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखते

उसके स्त्रीत्व की परिभाषा।" [23]

आदिवासी स्त्री भले ही वह गाँव की हो या शहरी, किंतु उस पर अनेक प्रकार के बंधन हैं। इसके बावजूद आर्थिक दृष्टि से एक आदिवासी स्त्री पर ही उसका पूरा परिवार निर्भर होता है क्योंकि अधिकतर पुरूष शराब के नशे में पड़े रहते हैं या फिर रोजगार की तलाश में दूसरे राज्यों में चले जाते हैं। आदिवासी स्त्री ही जंगलों से लकड़ी, फल-सब्जी आदि बेचकर या फिर दातुन, पंखे, झाड़ू, पत्तल आदि बनाकर अपने परिवार का पालन-पोषण करती है। 'बहामुनि' कविता में निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री की इसी आर्थिक दशा को चित्रित करती है। यहाँ कवयित्री आदिवासी स्त्री की मेहनत की ओर सबका ध्यान आकर्षित करते हुए यह भी कहना चाहती है कि वह अपनी तथा अपने परिवार की भूख मिटाने के लिए जितनी मेहनत करती है, उतना मेहनताना उसे नहीं मिलता। वह अपने बनाए गए सामान को बाजार में सस्ती कीमत पर बेचने पर मजबूर है। वह कहती हैं -

“तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हजारों

पर हजारों पत्तल भी नहीं भर पाते तुम्हारा पेट” [24]

आदिवासी युवतियों को आज उनकी रंग-बिरंगी पोशाक में चित्रित किया जाता है। उनके मदमाते यौवन का चित्रण कर लोगों को आकर्षित करने की चेष्टा की जाती है किंतु उनके दुःख दर्द की सच्चाई किसी को नजर नहीं आती। ‘सुबह के इंतजार में’ कविता में हरिराम मीणा आदिवासी युवतियों की पीड़ा, उनकी समस्याएँ एवं उनके दुःख-दर्द हमारे सामने रखते हुए कहते हैं-

“गोल -गोल गाल

उन्नत उरोज

गहरी नाभी

पुष्ट जंघाएँ

मदमाता यौवन...’’ [25]

आदिवासी स्त्रियों के साथ हो रहे शोषण-उत्पीड़न की प्रतिदिन भयावह खबरें हमारे सामने आती रहती हैं। वे कानूनी न्याय से भी खुद के लिए इंसाफ प्राप्त नहीं कर पातीं इसके कारण हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में हैं। एक आँकड़े के अनुसार 83 प्रतिशत आदिवासियों का उत्पीड़न करने वाले अपराधी रिहा हो जाते हैं और एक तथ्य यह भी है कि

जेलों में बंद कैदी सर्वाधिक दलित और आदिवासी हैं। ये दोनों तथ्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। अक्सर उच्च तबके के रसूखदार लोग उन्हें डरा धमकाकर चुप करा देते हैं या तो कानून की नजर में उन्हें झूठा साबित कर देते हैं, इस से सवाल पुलिस और प्रशासन की नैतिकता, पारदर्शिता और ईमानदारी पर उठता है। व्यवस्था से नाराज-परेशान इन आदिवासियों का उत्पीड़न यूं ही अनवरत जारी है।

आदिवासी महिलाएँ पुरूष के साथ कदम से कदम मिलाकर काम करती हैं, बल्कि यह कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पुरूष से अधिक मेहनत करती हैं। काम किसी भी क्षेत्र का हो महिलाओं की उसमें भागीदारी विस्मित करती है। दुकानदारी, मैकेनिक, रेस्टोरेंट आदि विविध प्रकार के कार्यों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी प्रोत्साहित करती है। यहाँ बूढ़ी महिलाएँ भी खाली बैठना पसंद नहीं करतीं। वह अपने पूरे परिवार के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ी रहती है एवं जब तक हो सके, कुछ न कुछ काम अवश्य करती है। 'आदिवासी स्त्रियाँ' कविता में मुन्ना साह कहते हैं-

"बेंत की कुर्सियां बनाती
भित्ति – चित्रों में पारंगत
श्यामली आदिवासी स्त्रियाँ
बनाती लकड़ियों की कंघी
जिन पर अंकित छोटे –छोटे चित्र

पत्थरों पर नक्कासी करती

पहाड़ी आदिवासी स्त्रियाँ।" [26]

आदिवासी समाज को मातृसत्तात्मक समाज माना जाता है। इन महिलाओं को वे सारे हक सदियों पहले से ही प्रदत्त हैं जिन हक़ों की बात आज हमारे संविधान में की गई है या जिनकी माँगें आज हो रही हैं। किंतु आज बाहरी घुसपैठ और शहरों की हवा आदिवासी समाज को दूषित कर रही है और आज स्त्री पर अत्याचार हो रहे हैं। 'नारी' कविता में मुन्ना साह एक आदिवासी स्त्री के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए कहते हैं-

"न्याय की तराजू

देकर हाथों में

छीन लिए अधिकार

कैसी स्वतन्त्रता है?

ये कैसा न्याय?

बहुत रही मौन

सुनो–सुनो समाजसेवियों

एक अबला की पुकार।" [27]

आदिवासी समाज की स्त्री आज अपने साथ हो रहे भेदभाव, अत्याचार तथा पुरूष की दृष्टि को समझने लगी है। आज वह अपनी पहचान माँग रही है। वह समझ गई है कि पुरूषों की

नजर में एक ही स्त्री अलग - अलग हो जाती है । अपने समाज में अंधविश्वास, रूढ़िवादिता के कारण वह पिछड़ने लगी है। जो स्त्री पहले किसी पुरूष को कली, फूल सी लगती थी, वह कुछ ही दिनों में डायन-सी लगती है। 'अपराध बोध' कविता के माध्यम से मीरा रामनिवास स्त्री की दयनीय दशा को कुक इस तरह चित्रित करती हैं -

पहले जब वह हँसती थी कलियाँ-सी

खिल उठती थी चाल में हिरणों-सी

आज अपराध बोध से देखती हैं

आँखें, क्योंकि वह आज विधवा है

जो पहले फूल थी, वहीं आज कांटा हैं। [28]

एक स्त्री घर के काम-काज के साथ बाहर का काम कर थककर चूर हो जाती है। ऐसे हालात में अपने ही घर में अपने पति की नजरों में मात्र भोग की वस्तु समझा जाना अब उसे पसंद नहीं। वह भी स्वतंत्रता चाहती है, एक खुला आकाश चाहती है। उसके भी कुछ सपने हैं। आज वह अपना अस्तित्व खोजती है । वह कहना चाहती है कि मेरी पहचान केवल चूल्हे से लेकर बिस्तर तक नहीं है-

"चूल्हे - बिस्तर की परिधि में

मुझे नहीं है रहना

गऊ चाल में चलकर नहीं थकना

मन में भरी है कविता

मंजूर नहीं है थमना हे प्रियवर।" [29]

आदिवासी स्त्री आज बाहरी घुसपैठ, अंधविश्वास, रूढ़ परंपराओं के कारण अपने को असुरक्षित महसूस कर रही हैं। ससुराल में लड़कियों के साथ अत्याचार, उनके दैहिक और भौतिक शोषण, खेत एवं घर का काम में उसकी संलग्नता, दहेज के लिए जलाना आदि की अभिव्यक्ति कविता में हो रही है। 'ब्याह' कविता में डॉ. मंजु ज्योत्सना कहती हैं-

"पिता मेरी शादी मत करना

मैंने देखी है-बुधनी की जिंदगी

बाल-बच्चे संभाल खेत में खटती हैं

उसका मर्द साँझ सवेरे-रात

मारता है कितना" [30]

दूसरा उदाहरण हम निर्मला पुतुल की कविता 'कुछ मत कहो सजोनी किस्कू' में देख सकते हैं कि किस प्रकार रूढ़ परंपराओं एवं अंधविश्वासों ने आदिवासी समाज को पिछड़ा बना रखा है। जब एक आदिवासी स्त्री अपने हक़ की बात करती है, घर-परिवार में अपनी बराबरी की बात करती है तो उसे भरी पंचायत में डायन करार कर दंडित दिया जाता है। यह एक षड्यन्त्र के तहत किया जाता है ताकि कोई और अपने हक की बात ना कर पाए, डर जाए। इस षड्यन्त्र में उनके परिवार के सदस्यों से लेकर गाँव के मुखिया, महाजन, सूदखोर, डॉक्टर आदि सभी

शामिल हैं। पति निकम्मा और नाकारा हो तो बाहर वालों को सुविधा हो जाती है स्त्री के अधिकार और उसके संघर्ष को कुचलने में। निर्मला पुतुल की यह कविता इस षड्यन्त्र का पर्दाफाश करती है एक स्त्री को डायन घोषित कर कौन लोग लाभान्वित होना चाहते हैं। वे लिखती हैं -

"हक की बात ना करो मेरी बहन

मत माँगो पिता की संपत्ति पर अधिकार

जिक्र मत करो पत्थरों और जंगलों की

अवैध कटाई का

सूदखोरों और ग्रामीण डाक्टरों के लूट की

चर्चा न करो बहन

मिहिजाम के गोआकोला की

'सुबोधनी मारण्डी' की तरह तुम भी

अपने मगजहीन पति द्वारा

भरी पंचायत में डायन करार कर दंडित की

जाओगी

माँझी 'हाड़ाम' 'पराणिक' गुड़ित'

ठेकेदार, महाजन और

जान-गुरूओं के षडयंत्र का शिकार बन" [31]

हमारे इस स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश में आज भी आदिवासी स्त्रियाँ अपनी पहचान और अस्मिता के प्रति संघर्ष कर रही हैं। वह जान गई हैं कि उसके हित में क्या है और अहित में क्या। आज वह अपने जीवन से संबंधित चुनाव और निर्णय के लिए अपने पिता या भाई पर निर्भर रहना नहीं चाहती। 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा' कविता में एक आदिवासी लड़की अपने पति और घर के चुनाव के विषय में उन्हें अपनी राय बताते हुए कहती है कि यदि उसके लिए कोई वर ढूंढें तो कोई योग्य वर ही ढूंढें। वह अपने पिता से साफ शब्दों में कहती है -

"मत चुनना ऐसा वर
जो पोचई और हड़िया में डूबा रहता हो
अक्सर काहिल निकम्मा हो
माहिर हो मेले से लड़कियाँ उड़ा ले जाने में
ऐसा वर मत चुनना मेरी खातिर" [32]

यहाँ स्पष्ट पता चलता है कि आदिवासी समाज में भी एक स्त्री को अपना जीवन-साथी चुनने का पूरा हक़ नहीं, जबकि उसके भी कुछ अपने सपने हैं कि उसे कैसा वर चाहिए। वह अब अनपढ़-गंवार पति भी नहीं चाहती, ऐसा पति भी नहीं चाहती जो 'पोचई' और 'हड़िया'

के नशे में डूबा रहे, स्त्री और उसके अधिकारों का जो सम्मान नहीं करना जानता हो। वह साफ-साफ कहती है-

जो हाथ लिखना नहीं जानता हो

'ह' से हाथ

उसके हाथ मत देना कभी मेरा हाथ [33]

कवयित्री निर्मला पुतुल एक आदिवासी स्त्री के दैहिक सौंदर्य की तुलना प्रकृति के निश्चल सौंदर्य के समक्ष रखकर करती हैं। यहाँ हमें सौन्दर्य के प्रतिमान भी बदलते हुए दिखाई देते हैं। वे बहुत सुन्दर शब्दों में आदिवासी स्त्री की अंदरूनी अच्छाइयों, उसकी निश्छलता एवं उसके पहाड़ जैसे कठोर श्रम को इंगित करते हुए 'आदिवासी लड़कियों के बारे में' कविता में कहती है-

ऊपर से काली

भीतर से अपने चमकते दाँतों

की तरह शान्त धवल होती हैं वे

वे जब हँसती हैं फेनिल दूध-सी

निश्छल हँसी

तब झर-झराकर झरते हैं

पहाड़ की कोख में मीठे पानी के सोते [34]

हरिराम मीणा ने अपनी कविता 'वह जारवा औरत' में 'जारवा' नामक अण्डमानी आदिवासी स्त्री की वेदना एवं उस पर अपने ही लोगों द्वारा किए गए अत्याचार को दर्शाया है कि किस प्रकार वह प्रसव पीड़ा से जूझती हुई पोर्टब्लेयर के अस्पताल पहुँच जाती है और एक नन्हीं बच्ची को जन्म देकर जब वह अपनी टोली में शामिल होने जाती है तो उसे वहीं चौकीदार के घर ठहरा दिया जाता है। वहाँ वह फिर गर्भवती हो जाती है जिसके कारण उसके अपने ही लोग उसे नहीं स्वीकारते और अपनी टोली से बेदखल कर देते हैं –

"वह बहुत रोई-गिड़गिड़ाई

'मेरा कोई दोष नहीं।'

किंतु वे नहीं माने

और उनकी टोली धँस गई जंगलों में

इस बार उसे जानबूझकर छोड़कर" [35]

आदिवासी समाज के बारे में कहा जाता है कि इसमें महिलाओं के प्रति पितृसत्ता इतनी कठोर नहीं है, इसलिए औरतें काफी हद तक आजाद होती हैं। किंतु प्रतीत होता है कि ये आजादी नाम मात्र की है। एक स्त्री सारे घर का काम-काज निपटाने के साथ पशु-पालन का जिम्मा भी उठाती है और जंगल जाकर लकड़ी, दवा- दारू और अन्य आवश्यक चीजों का भी ख्याल रखती है। एक आदिवासी महिला कितनी मेहनत करती है, इसका उदाहरण हम भगवान गव्हाड़े की कविता 'माँ' में देख सकते हैं-

माँ

धूपकाले में .....

चुन लाती है जंगल से महुए के फूल

चारोली, गोंद, बिब्बा फूल, कंद मूल, तेंदू फल

तोड़ लाती तेंदूपत्तों का ढेर

झोपड़ी में उसका लगाकर अम्बार जोड़ती

रहती देर सवेर

मिल जाता अगर थोडा-सा भी समय

चुनती रहती ज्वार-बाजरे, गेहूं-चावल से कंकड़

बनाकर रखती सेवई – पापड़ - अचार

कूटती रहती लाल मिर्च और मसाले [36]

अपनी दूसरी कविता 'औरत' में भी कवि भगवान गव्हाड़े ने एक आदिवासी औरत का कुछ ऐसा ही रूप प्रस्तुत किया है । एक आदिवासी औरत हर काम करती है जैसे घास काटना, लकड़ियाँ बीनना, बोझा ढोना, खेतों में काम करना चाहे बारिश हो या धूप-ठंड हो या कीचड़। मेहनत करना और अपने घर को चलाना जैसे उसके लिए रूढ़ ही हो गया हो । इतना कुछ सहते और करते - करते शायद वह अपने समाज के पुरूषों से भी आगे निकल जाती है, किंतु केवल वहां, जहाँ प्रश्न मेहनत का है । कवि भगवान गव्हाड़े लिखते हैं-

घास काटती

लकड़िया बीनती

बोझ ढोती

घर बुहारती

लीपती-पोतती

रंगोलियाँ बनाती

औरत.....

x x x

खेत-खलियान में खपती

धूप में तपती

बारिश में भीगती

ठंड में सिहरती

कीचड़ में सनती

काँटों पर चलती

औरत ..... [37]

कवयित्री निर्मला पुतुल ने जिस प्रकार 'आदिवासी लड़कियों के बारे में' शीर्षक कविता में एक आदिवासी स्त्री के दैहिक सौंदर्य, उसके काले रंग की प्रकृति के निश्छल सौंदर्य से तुलना की

है। ठीक उसी प्रकार कवि रणेन्द्र ने भी अपनी कविता 'जामुनी रंग' में एक मेहनत करती आदिवासी लड़की को बहुत ही सुन्दर उपमा के साथ प्रस्तुत किया है। यहाँ एक आदिवासी लड़की के रंग को सीधा काला न कहकर जामुनी रंग कहा है। वे लिखते हैं-

श्रम ने कसा था
जिनका अंग -अंग
धूप ने भरा था
जामुनी रंग,
रूप पर पसीने की लड़ियाँ
पारदर्शी मोतियों की
गहने की कड़ियाँ
पर सच है
सब पर भारी था
हाय! वह जामुनी रंग" [38]

यहाँ कवि रणेन्द्र एक आदिवासी लड़की की मेहनत पर बल देकर यह दिखा रहे हैं कि जब एक आदिवासी लड़की श्रम करती है तो कितनी खूबसूरत लगती है। पसीने की बूंदें जैसे मोतियों की लड़ियाँ, श्रम करने से बना उनका गठीला बदन और सबसे सुन्दर धूप में चमकता

हुआ उसका जामुनी रंग। इस रूप-सौन्दर्य के समक्ष सारी सुंदरता और पैमाने निम्न लगते प्रतीत होते हैं ।

एक आदिवासी स्त्री किसी दूसरे के घर काम कर अपने घर के लिए कुछ कमाती है, अपने बच्चों को खिलाती है। उसके ऊपर घर-परिवार के भरण -पोषण का पूरा भार होता है, वही उसका पति उसकी कमाई से मौज-मस्ती कर किसी दारू के अड्डे पर रमा रहता है। अपने घर एवं बाहर के सारे काम की जिम्मेदारी उस पर होने के कारण न तो वह पूरी नींद ले पाती है, और न भरपेट खाना ही खा पाती है। परिणामस्वरूप उम्र से पहले ही उस पर बुढ़ापा आने लगता है। कवि रणेन्द्र अपनी कविता 'पन्ना धाय' में ऐसी ही एक आदिवासी स्त्री की विडम्बना को चित्रित करते हुए कहते हैं -

नींद में भी बेचैन, स्त्री
पति और बच्चों को सोता छोड़
मुँह अंधेरे निकलती है
शाश्वत सवाल का हल ढूँढने

x x x

अपनी कोठरी की खूँटी में
लटका आई थी
अपना मन और हँसी

बच्चों का बाप उन्हें उतार

बढ़ चला दारू के अड्डे को,

छब्बीस की उम्र में बुढ़ाती

पन्ना धाय ! [39]

पैसे की तंगी, भूख, बीमारी और न जाने क्या-क्या सहती रहती है एक आदिवासी स्त्री। जीवन का भार उठाते उठाते अब तो उसे अपना जीवन ही भार लगने लगता है। कवि एकांत श्रीवास्तव ने अपनी लंबी कविता में छतीसगढ़ की आदिवासी स्त्री के दुःख दर्द को बड़े ही मार्मिक शब्दों में उतारा है-

दीदी, यहाँ कहाँ तुम ?

हाँ भैया, बच्चे भूखे हैं

कई दिनों से

जला नहीं चूल्हा

उनके पिता पड़े हैं बुखार में

उनको दवा देकर,

मैं ही चली आयी जंगल

यह लकड़ी बिके

तो थोड़ा खरीद लूँ राशन

मुझे दो दीदी, लकड़ी है भारी

नहीं भैया, काठ क्या

हमारा तो जीवन ही भारी" [40]

जिस प्रकार आदिवासी का सीधा रिश्ता जल, जंगल और जमीन से है तो आदवासी स्त्रियों का रिश्ता मेहनत और दुख-दर्द से है। निर्मला पुतुल की कविता 'बाहामुनि' में देख सकते है कि अपने ही द्वारा बनाए पत्तल को जब वह बाजार में बेचती है तो उसे उसकी इतनी कम कीमत मिलती है जिससे उसका एवं उसके परिवार का पेट तक नहीं भरता। इसी प्रकार एकांत श्रीवास्तव की कविता में भी एक आदिवासी स्त्री कितने जोखिम उठाकर पेड़ पर चढ़ती और वहाँ से पत्ते इकठ्ठा कर उनसे दोने-पत्तल बनाकर बाजार में बेचती है, किंतु स्वयं फिर भी भूखी रह जाती है। क्योकि इतनी मेहनत के बावजूद उसे उसकी मेहनत का सही दाम नहीं मिलता। ऐसा इसलिए कि वह एक स्त्री है, आदिवासी है, गरीब है और लाचार है। पूंजीवाद की एक सच्चाई का प्रतिबिंबन इस एक सवाल से हो जाता है कि 'क्या हम ही खाते हैं, उनके हिस्सों का भी'। एकांत श्रीवास्तव इसी बात पर बल देते हुए अपनी कविता में लिखते हैं-

उसी पेड़ पर चढ़कर

पत्तों को नीचे गिराती हुई स्त्री

पत्ते परसा के

टेसू, पलास या किंसुक कुसुम के

नाम कई पेड़ एक

नीचे उसके बच्चे दौड़- दौड़कर

उठाते पत्तों को

और रखते सहेजकर

पत्ते जिनसे बनेंगे दोने-पत्तल

सजेंगे किसी भोज में

और यह स्त्री खड़ी रहेगी बहुत दूर

पंगत से अलग और बाहर

अपने बच्चों सहित

अपने अँधेरे में

क्या हम ही खाते हैं

उनके हिस्सों का भी ?[41]

नारी का दूसरा रूप शक्ति है । एक आदिवासी स्त्री को देखें तो यह बात और ज्यादा सटीक लगती है। कितने ही अत्याचार और दुःख वह सहती है किंतु फिर भी वह हँसती रहती है। उससे भी बढ़कर जब उसे विस्थापन की पीड़ा झेलनी पड़ती है तो भी वह नदी के किसी घाट

पर रहकर खाना बनाती है, लकड़ियाँ बीनती है, अपने नन्हे बच्चे के लिए प्रकृति की गोद में ही कहीं अपनी फटी साड़ी का झूला बनाती है। अपने बच्चे को लोरी गा-गा कर सुलाती है और ऐसा गाती है कि नदी का पानी भी उसे सुन कर झूम उठता है। यही है एक आदिवासी नारी की शक्ति। एकांत श्रीवास्तव ने अपनी इसी बात को अपनी कविता ' डूब' में कहा हैं-

घाट पर वह मां अपने बच्चे को

पिलाती है दूध

और थपकी देकर उसे सुलाती है

कुसुम की डंगाल में

साड़ी का झुलना बाँधकर

और गाती है लोरी

गाती है तो जल को छूती है

उसकी आवाज

और पालने से पहले

हिलता है जल नदी का" [42]

अन्त में हम कह सकते हैं कि आदिवासी वह समाज है जो अंग्रेजों और बाहरी आक्रमणों के द्वारा दूर-दराज जंगल में खदेड़े गए और जंगल में ही इस समाज में अपना साम्राज्य बनाया। इनका जल, जंगल और जमीन से विशेष लगाव है। यह प्रकृति से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। यह

समाज श्रमशील, निष्ठावान, ईमानदार और निश्छल है। अपनी अज्ञानता, अक्षर ज्ञान से वंचित होने के कारण यह समाज सदियों से मुख्यधारा से कटा रहा है। अज्ञानता के कारण यह समाज कई रूढ़ियों, अंधविश्वासों, परंपराओं में जकड़ा हुआ है जिसकी अभिव्यक्ति कविता में हुई है। यह समाज आर्थिक रूप से पिछड़ा है जिसके कारण ये कई प्रकार के शोषणों का शिकार हो रहा है। विकास के नाम पर ये कई बार उजाड़ दिए जाते हैं जिससे इनका अस्तित्व और अस्मिता खतरे में पड़ जाती है। इनकी जमीन पर आज बड़े-बड़े कल-कारखाने, खदान और बांध बन गए हैं। अपनी लोक-कला, लोक-नृत्य, अपनी परंपरा को इस समाज ने आज भी बचाकर रखा है। यह जंगल को ही अपना घर, कृषि जीवन को ही अपना संसार मानता है। प्रकृति की सुरक्षा ही इस समाज का अपना धर्म है। इस समाज को अपनी संस्कृति से गहरा लगाव है। इनका मूख्य ध्येय ही है अपने आदिम मूल्यों का सरंक्षण करना। इनकी संस्कृति में फसलों की बुआई-कटाई, धार्मिक आस्थाएं, नृत्य-गीत, परम्पराएँ, खान-पान झलकते हैं। इनका समग्र जीवन कलाओं से भरा है। इनकी संस्कृति बहुरंगी और पारंपरिक जीवन मूल्यों में आस्था रखने वाली है। बाहरी घुसपैठ से आज इनके समाज में विकृतियाँ आ गई हैं। अपने ही भीतर स्थित शोषण-उत्पीड़न से यह समाज जूझता दिखाई दे रहा है।

आदिवासी समाज की स्त्रियाँ अपने समाज की रीढ़ हैं। ये श्रम के मामले में पुरूष से बढ़कर हैं। अपनी संस्कृति को गीत-संगीत में पिरोकर रखने में इन स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये पुरूषों से कदम से कदम मिलाकर चलती हैं। किंतु इस समाज में ऐसी अनेक

कुरीतियां-अंधविश्वास आदि हैं जिनके कारण उन्हें चुड़ैल, डायन होने का दंश झेलना पड़ता है। वह समाज में आज स्वतंत्र नहीं है। अधिकारों से वंचित है। घर-गृहस्थी, परिवार का सारा बोझ ये उठाती हैं किंतु समाज और परिवार में उसे सम्मान नहीं मिलता। शिक्षा व अधिकारों से वंचित होकर कई प्रकार से ये प्रताड़ित होती रही हैं। ये बाहरी और आंतरिक शोषणों से उत्पीड़ित हैं। ये बलात्कार, विस्थापन जैसी त्रासदी झेलती हैं। गरीबी के कारण ये ईंट-भट्टों, कल-कारखानों में मजदूर बन जाती हैं जहाँ ये असुरक्षित महसूस करती हैं। अपनी अस्मिता और अस्तित्व की खोज में बेचैन, उत्पीड़ित और इसीलिए क्रोधित आदिवासी स्त्रियाँ अपनी जमीन तलाशती रही हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 36
2. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 12
3. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015, पृ. 84
4. वही पृ. 12

5. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं.वंदना टेटे , प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020,पृ. 182

6. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण, 2014, पृ. 115

7. वही पृ. 67

8. वही पृ. 39

9. नगाडें की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 64

10. वही पृ. 20

11. आदिवासी साहित्य विमर्श, सं. गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 200

12. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 44

13. वही पृ. 23,24

14. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 77

15. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2017 पृ. 34

16. भाषा कर रही है दावा, अश्विनि कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2009, पृ .12

17. जो मिट्टी की नमी जानते हैं, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 79

18. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणीका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण, पृ .21

19. आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, केदार प्रसाद मीणा, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2014, पृ. 91

20. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण, पृ. 56

21. वही पृ. 102

22. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ .9

23. वही पृ. 8

24. वही पृ. 12

25. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 17

26. डेहरी, मुन्ना साह, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 37

27. वही पृ. 44

28. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणीका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण, पृ. 63

29. हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श, डॉ पंडित बन्ने, अमन प्रकाशन, कानपुर, पहला संस्करण, 2014, पृ. 71

30. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणीका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण, पृ. 98

31. अपने घर की तलाश में, निर्मला पुतुल, रमणिका फ़ाउंडेशन, दिल्ली, 2004, पृ .21

32. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 50

33. वही पृ .50

34. वही पृ. 17

35. सुबह के इंतजार में, हरीराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 27

36. आदिवासी मोर्चा, भगवान गवहाड़े, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 21

37. वही पृ. 54,55

38. थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, रणेन्द्र, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 19

39. वही पृ. 44,45

40. नागकेसर का देश यह, एकांत श्रीवास्तव, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2016, पृ. 30

41. वही पृ. 74,75

42. धरती अधखिला फूल है, एकांत श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013, पृ. 131

तृतीय - अध्याय

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी मुक्ति के प्रश्न

(क) आदिवासी संसाधनों पर कब्ज़े की राजनीति

(ख) संस्कृति संरक्षण का सवाल

(ग) आदिवासियों के पलायन की समस्या

तृतीय -अध्याय

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी मुक्ति के प्रश्न

आदिवासियों एवं जंगल के बीच पारस्परिक एवं गहरा सहजीवी संबंध है। आदिवासियों के लिए जंगल मात्र भूमि का एक टुकड़ा नहीं जहाँ पेड़-पौधे उगते हैं या पशु आदि स्वतंत्र विचरते हैं, बल्कि जंगल ही उनका जीवन है, साथी है, माता-पिता, भाई, भगवान सब कुछ है। जंगल ही उनकी आस्था, पहचान, कर्म तथा संस्कृति का केंद्र स्थल रहा है। आदिवासी समाज को जंगल से अलग करके देखने का अर्थ होगा आत्मा को शरीर से अलग करना। आदिवासी जितना जंगल या प्रकृति से लेता है उतना ही उसे देता भी है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जंगल है तो आदिवासी हैं और आदिवासी हैं तो उसकी संस्कृति है।

आज धीरे-धीरे पूरा विश्व आधुनिकता की ओर चल पड़ा है। बड़े-बड़े शहरों में अब कल- कारखाने आदि के लिए जगह कम पड़ती जा रही है। हम जानते हैं कि अतीत में हमारे भारत पर विदेशी आक्रमणकारियों ने कई आक्रमण किए । इन्होंने भारत को कई बार लूटा । मुगलों और अंग्रेजों के आधिपत्य के पश्चात भारतीयों की जो दुर्गति हुई, कुछ वैसी ही दुर्गति आज इन आदिवासियों की हो रही है। पहले गैरों ने लूटा, अब अपने आ रहे हैं लूटने ।

आज आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या विस्थापन की है । उन्हें उनके ही गांवों से बेदखल किया जा रहा है, उन्हें उन जंगलों से विस्थापित किया जा रहा है जो उनके लिए सब

कुछ हैं और जहां उनकी संस्कृति फली-फूली है । जो उनके जीवन प्राण हैं । ये उन जगहों पर रहते हैं जहां कोयला, लोहा तथा अन्य कई तरह की बहुमूल्य संपदा के खजाने हैं । ऐसी सम्पदा को बड़े बड़े उद्योगपतियों को देने में सरकार बिलकुल नहीं हिचक रही । वह इन आदिवासियों को वहाँ से खदेड़ देना चाहती है । आदिवासियों का संघर्ष आज इसी विस्थापन के विरोध को लेकर है ।

संजीव लिखते हैं, "सन् 1865 के वन कानून, 1927 के वन कानून संशोधन, 1932 की वन-नीति तो थी ही, 1957 में एक एक्ट बना, 'कोल बीयरिंग एक्ट' जिसके तहत कोयले के लिए किसी भी गांव को खान-मालिक खाली करवा सकते हैं। प्रायः सभी बांध और कल-कारखाने आदिवासी गांवों को विस्थापित करके बने हैं। नीतियों, नियमों और अनुशासनों को 1964 तक तोड़-मरोड़कर मालिकों के हित के अनुसार ढाला जाता रहा। एक आँकड़े के अनुसार ओड़िशा, छत्तीसगढ़ को छोड़ भी दें तो मात्र झारखंड में विकास के नाम पर पचास हजार एकड़ जमीन पर दस पंद्रह लाख आदिवासियों को बेघर, बेजमीन किया गया।"[1]

आदिवासियों का जीवन जल, जंगल और जमीन से जुड़ा है, प्राकृतिक संसाधनों से जुड़ा है। आदिवासियों पर अनेक जनजाति विरोधी कानून थोपे गए। आजादी के पहले, बल्कि उससे भी बहुत पहले महाभारत काल में उन्हें आर्यों ने जंगलों में ठेल दिया। फिर अंग्रेजों के शासन के दौरान उन्हें खूब सताया गया और आजादी के बाद तो पूरा मामला और बिगड़ता गया।

रमणिका गुप्ता के शब्दों में- "आजादी के पहले भारत के मैदानी इलाकों के सूदखोरों, जमींदारों या व्यापारियों की जमात ने उन्हें खूब निचोड़ा और उन्हें जमीनों से बेदखल किया, अर्थात् आदिवासी जमात जितना बाहरी उपनिवेशवाद के कारण प्रभावित हुई, उससे भी ज्यादा वह आंतरिक उपनिवेशवाद और वर्चस्ववाद के कारण अपनी ही भूमि पर अल्पसंख्यक हो गई या विस्थापितों की जमात बन गई।"[2]

बाहरी लोगों की नज़र सदैव उनकी जमीन और उसमें मौजूद प्राकृतिक संसाधनों व संपदा पर रही। जिसके कारण उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उन्हें बार-बार अपने अस्तित्व के संकट का सामना करना पड़ता है।

अपनी एक और पुस्तक में रमणिका गुप्ता लिखती हैं- "आदिवासी समुदाय को आज प्राकृतिक संसाधनों पर अपने पारंपरिक अधिकारों के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ रहा है। जल-जंगल और ज़मीन जो उनकी जीविका का एकमात्र सहारा था, के अधिकार के लिए उन्हें अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ रही है। औद्योगिक क्रांति, जहाँ अन्य समुदायों के लिए समृद्धि के नए द्वार खोल रही है, वहीं आदिवासियों के लिए विस्थापन और पलायन का दंश लेकर आई है। पहले जहाँ दिकू लोग बहला-फुसलाकर उनकी जमीन हड़प लिया करते थे, अब सरकार और कॉरपोरेट घराने, उन्हें उनकी ज़मीन से ही बेदखल करने के अभियान में लगे हैं। उनकी उदारता और भोलेपन का लाभ सरकारी और गैर-सरकारी लोग भरपूर उठा रहे है।"[3]

आज हर कहीं आदिवासियों के समक्ष अपनी अस्मिता, संस्कृति और भाषा का संकट है। आज अपनी ही जमीन पर लगातार शोषण, दुर्व्यवहार एवं अपमान के कारण इन सहनशील

आदिवासियों का धैर्य जवाब रहा है। वह इन सब यातनाओं को कब तक सहेगा। वह आज उठकर विद्रोह कर रहा है। भले ही इनके विद्रोह अलग-अलग जगहों में अलग-अलग समय पर हुए हो, किंतु मुद्दे एक ही हैं। अब आदिवासी समुदाय में भी उनके अपने साहित्यकार और बुद्धिजीवी संगठित हो रहे हैं। वे अपने दुःख-दर्द का चित्रण और उसकी अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में कर रहे हैं।

इस अध्याय में इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी मुक्ति के प्रश्न में कविताओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया जाएगा कि किस प्रकार आदिवासियों के संसाधनों पर कब्जा होता है या कैसे कब्जे की राजनीति चलती है। किस प्रकार उनके जंगल-जमीन उनसे छीने जाते हैं, किस प्रकार उनकी भाषाएँ लुप्त हो रही हैं, उन्हें किस प्रकार पलायन की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

(क) आदिवासी संसाधनों पर कब्जे की राजनीति

आदिवासियों के जंगल धड़ाधड़ कट रहे हैं। इनके संसाधन अधिकतर जंगल में ही हैं और इसी जंगल-जमीन को इनसे छीनने की साज़िश की जा रही है।

कवयित्री ग्रेज कुजूर अपनी कविता 'कलम को तीर होने दो' में लिखतीं हैं-

वे लूटने-लुटाने आए
हम गए परदेश
धरती उजड़ी जंगल उजड़े
रह गया क्या शेष[4]

आज सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक विकास के नाम पर आदिवासियों की भूमि को ही निशाना बनाया जा रहा है। आदिवासी केवल आज ही नहीं, पहले से ही लूटने और लुटाने के जाल में फँसे हैं। अपनी ही जमीन पर इन्हें परदेशी बना दिया गया है। इनके पास अपना कहने के लिए कुछ बचा ही नहीं। नर्मदा नदी पर बनाए जा रहे सरदार सरोवर बाँध पर हरिराम मीणा ने 'सरदार सरोवर में डूबा आदिवासी भविष्य' कविता में लिखा है-

मैंने खूब सुना है इन दिनों
सरदार सरोवर परियोजना के
बारे में
मैं शौकिया गया था
उस बाँध को देखने
X X X
भीतर विराट जलराशि पर
बिखरा था
खून का ताजा और तरल रंग ।[5]

इस कविता के माध्यम से हरिराम मीणा बता रहे हैं कि सरकार ने विकास के नाम पर आदिवासियों का जीवन छीन लिया। उनको अपने जंगल और जीवन से बेदखल कर दिया। सरदार सरोवर के संरक्षण के नाम पर विस्थापित किए गए आदिवासियों का संघर्ष और बलिदान कवि को स्पष्ट दिखाई देता है। कवि कहना चाहता है कि आदिवासियों की जीवन की कीमत पर जो विकास किया जा रहा है वह खोखला है, बेकार है। विकास के नाम पर सबसे बड़ा दर्द आदिवासियों ने झेला है । डॉ. रामदयाल मुंडा अपनी कविता 'कथन शालवन के अंतिम शाल का' में अपना क्रोध और आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं-

टिम्बर मर्चेंटस के गोदामों में
उनकी तिजोरियों में
नोटों के बण्डलों के रूप में!
जंगल के आदमी को क्या मिला?
फल-फूलहीन कंटीली झाड़ियां
पानी के बहाव से निरंतर
छटती जा रही
अनुर्वर जमीन? [6]

डॉ. राम दयाल मुंडा की कविता की इन पंक्तियों से साफ पता चलता है कि आदिवासियों का जीवन जंगलों पर ही आधारित है। इनका अस्तित्व इन जंगलों में ही सुरक्षित है। किंतु उद्योगपतियों ने इनके सारे जंगल काट लिए और अपनी जेबें भर लीं, और छोड़ दी गई इनके लिए कंटीली झाड़ियाँ। जंगलों के कट जाने से बहता पानी इनकी ज़मीन की उर्वरता को भी बहाता चला गया।

जंगल और ज़मीन न होने पर आदिवासियों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। वर्चस्ववादी ठेकेदार, शासक, प्रशासक कैस-कैसे लोभ देकर इन्हें अपने जाल में फंसाते हैं। रणेंद्र ने अपनी कविता 'सलवा जुडुम: छह कविताएँ' में आदिवासियों को आगाह करते हुए कहा हैं -

शिकारी आएगा
दाना डालेगा
लोभ से फँसना नहीं
यह गीत पंछी नहीं
बहेलिए गा रहे हैं
इरादे बिल्कुल साफ हैं

पंछी विहीन होना है
जंगल को...
...आकाश को[7]

कविता में आदिवासियों को खतरे से सावधान कराते हुए कहा गया है कि शिकारी रूपी बाहरी ठेकेदार एवं प्रशासक से बचो। उनके दिए गए लोभ में न पड़ो क्योंकि इनके इरादे साफ हैं कि ये हमसे हमारे जंगल छीन कर अपनी जेबें भरेंगे और हमें बेघर करेंगे ।

मराठी से हिंदी में अनूदित अपनी कविता 'कहीं से भी आ मेरे बिरसा' में झारखंड के स्वतंत्रता सेनानी बिरसा मुण्डा, जिसने अपने पुश्तैनी अधिकारों को लेकर आवाज़ उठाई थी तथा जो दिकूओं से अपनी जमीन के लिए संघर्ष करते-करते मारा गया था, को याद करते हुए भुजंग मेश्राम कहते हैं -

है केवल बीहड़ो में फैलता असंतोष
होंठों पर तेरा नन्हा-सा गीत
ऊलगुलान ! ऊलगुलान ! ऊलगुलान
जो बन गया है हमारी संस्कृति की लड़ाई
सच बताऊँ अब हमें जल्दी है
नहीं चाहते अब ओढ़ी हुई सभ्यता
धिक्कारते जैसे अंधकार को
जंगल बाँटती दुलाली प्रथा को
हम नकारते हैं
गूंजती है घाटियों में पीछा करती आवाज़
बिरसा तुम्हें कहीं से भी
आना होगा [8]

विकास के नाम पर आदिवासियों को तरह-तरह के लोभ देकर उनकी जमीन छिनी जा रही है। इनसे वायदे किए जाते हैं कि जमीन के बदले मुआवजे देंगे, गाँव का विकास होगा, पुल बनेंगे, बाँध बनेंगे, रास्ते बनेंगे। इनकी भूमि पर बुलडोजर चलाए जाते हैं और धीरे-धीरे कब्जे कर लिए जाते हैं। कहीं कोई विकास नहीं । वंदना टेटे इस कब्जे की राजनीति को अच्छी तरह समझती हैं और डरती है कि बाहरी कब्जों से आदिवासियों का हाल कैसा होगा। वह कहती हैं-

डरता भी हूँ / पुल बनाने से
कि घूमता हूँ जिस जंगल में निर्भय
पुल के बनते ही / तुम बेदखल कर
दोगे मुझे भी / जैसे कर दिया मेरे /
दूर गाँव के रिश्तेदारों को / और
डरता हूँ/ अपनी जमीन के लिए /
जो पुरखों ने बनाई थी मेरे / और /
अगली आने वाली कई पीढ़ियों के लिए /
भेंटे चढ़ जाएंगी / तुम्हारे भीमकाय
बुलडोजर के ।[9]

विकास के नाम पर आदिवासियों को अपने जल, जंगल और जमीन की कुर्बानी देनी पड़ रही है। अपने जल, जंगल, जमीन से दूर हो जाने पर इनसे इनकी अपनी भाषा-संस्कृति, रीति-रिवाज सब कुछ छूट जाता है। सवाल अब अपनी अस्मिता को खोने का है। अपनी

पहचान खोने तक की नौबत आ गई है तो आज आदिवासी चुप नहीं रहना चाहता, वह अपने ऊपर हो रहे शोषण के विरुध आवाज उठा रहा है। जंगल से ये किस गहराई से जुड़े हैं और जंगल के विनाश का दुख आदिवासियों ने अपने एक मुंडारी गीत में इस प्रकार बताया है-

बसंत का मौसम आया
लेकिन हमारा जंगल तो उजड़ गया
ओ भाईयों और बहनों
साल का फूल तो खत्म हो गया
कई युगों से
जंगल की आत्मा की रक्षा की
ओह अब हमारा जंगल ही मिट गया
अब जंगल की आत्मा ही गुस्से में है
जंगल ही हमारे जीवन का आधार है
हम लोग बर्बाद हो रहे जंगल को चुपचाप
नहीं देख सकते
जंगल को हम लोग बचाएंगे
अपनी जमीन पर फिर से जंगल लगाएंगे[10]

कवि रविकुमार गोंड अपनी कविता 'आदिवासी प्रश्न' में ऐसे लोगों से सवाल पूछते हैं जिन्होंने विकास के नाम पर आदिवासियों से उनके जंगल छीन लिए हैं और उन्हें बेदखल कर दिया है। वे पूछते हैं-

आज मैं प्रश्न करूँगा / जवाब तुम्हें देना होगा /
क्योंकि / यह मेरी अस्मिता का सवाल है /
हमने जंगलों को बचाकर / तुम्हें सुख-वैभव
प्रदान किया / दिया तुम्हें विकासवादी होने का मौका, /

परन्तु / इस परोपकार के बदले तुमने / हमें जंगल से
ही बहिष्कृत कर दिया /[11]

कुछ इसी प्रकार की आक्रोश से भरी आवाज वे अपनी दूसरी कविता 'आदिवासी अर्ज' में उठा रहे हैं। यह आवाज सरकार तथा कार्पोरेट की उन छद्म नीतियों के विरुद्ध है जो उनके संसाधनों को उनसे छीन कर उन्हें जमीन से बेदखल कर रही है। रवि कुमार गोंड आदिवासियों के स्वर बन कर खड़े हैं । वे लिखते हैं-

अब प्रेम की जगह / हथियारों ने ले ली है /

इनकी पीड़ा, इन पर हुए जुल्म / हमारी बेदखली का

सबूत है / सरकार की छद्म नीति / कार्पोरेट जगत

की राजनीति / दोनों ने मिलकर / हमें विस्थापित

कर दिया / खुद हमें हमारे ही / जल, जंगल, जमीन से /

हमारे प्रति विकास के नाम पर / बहु धंधे चलाये

जा रहे हैं / लूटे जा रहे हैं, देश के खजाने /[12]

आदिवासी कवि रवि कुमार गोंड ने जंगलों में सांसे ली है। जंगल उसके प्राण हैं। अपनी जमीन और प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ और उसका दोहन होता देख यह विचलित हो उठते हैं। अपनी ही जमीन से संसोधनों को लुटता देख ये चुप नहीं रह पाएँ और उनका आक्रोश इस प्रकार अभिव्यक्त हो उठा -

मेरे आँचल में रेखांकित किनारेदार सतरंगी /

नक्कारेदार हरे-भरे यह वृक्ष / जिसे मूर्ख मानव

बेमुरौवत तरीके से / काट रहा है, दिन-ब-दिन /

छीन रहा जमीनी हक आदिवासियों से / उसे यह

नहीं मालूम कि / आदिवासी ही प्रकृति के सच्चे

साधक पुत्र हैं।[13]

उन्हीं की एक अन्य कविता 'उलझन' में भी कुछ ऐसी ही अभिव्यक्ति देखने को मिलती है -

छीन लिए सबने हमारे / जल, जंगल और जमीन /

बड़ी पेशमपेश की जिंदगी / जी रहे हैं हम लोग /

आखिर कहाँ जाएँ और किससे कहें / अपने दर्द भरी

दास्ताँ / किसे सुनाएँ जाकर हम / अपनी पीड़ा भरी

फरियाद / जब सब तरफ से मचा है / लूट-घसोट

का कोहराम /[14]

पहाड़ों में लगातार उत्खनन हो रहा है और वहाँ आदिवासियों की अपनी खनिज संपदा निकाली जा रही है। विकास के नाम पर आदिवासियों की संपत्तियों का व्यापार चल रहा है और आदिवासी अपनी धरती को बंजर, खोखला होता देख चीख उठता है-

आज धरती कराह रही है / पहाड़ों के उत्खन्न से /

जंगल भी अब खत्म हो रहे हैं / व्यापारियों के

आवागमन से / धरती को बंजर कर रहे हैं /

कुछ लोग होकर स्वार्थ के वशीभूत / क्या दिन

और क्या रात / हो रही है भयंकर लूट / धरती

को लोग नंगा करके / देख रहे हैं खूब तमाशा / [15]

कवयित्री निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में झारखंड के आदिवासियों की असली तस्वीर प्रस्तुत करती है। सरकार द्वारा आदिवासियों की जमीन पर कब्जा करने की बात निर्मला पुतुल ने अपनी कविता 'एक सार्थक चीख़ के पहले ही गहराती चुप्पी' में कही है -

हमारी सरकार हमसे

हमारी जमीन छीनकर

विदेशी कंपनियों को उपलब्ध करा रही है[16]

आदिवासी स्वभाव से भोले और छलकपट से दूर हैं, वे समझ नहीं पाते कि सरकार उनका भला चाह रही है या उन्हें बेघर करने की साजिश रच रही है। सरकार उसी भोलेपन का फायदा उठाकर आदिवासियों की जमीन को विकसित करने की बात कहकर उनसे उनकी जमीन छीन लेती है और उसे बड़ी बड़ी देशी-विदेशी कंपनियों को बेच दिया जाता है।

रमणिका गुप्ता कहती हैं, "सरकार आदिवासियों की सुरक्षा हेतु पाँचवें और छठे शेड्यूल के तहत सूदखोरों से आदिवासियों की जमीनें तो वापिस नहीं करवा पाई, उल्टे पट्टे होने के बावजूद उन्हें अपनी जमीनों का कब्जा भी नहीं दिलवा सकी। इसके विपरीत कोयला की बड़ी परियोजनाओं के लिए बिना पुनर्वास किए हजारों हजारों एकड़ जमीन को 'कोल बियरिंग

एरिया एक्ट 1957' के तहत बिना अधिग्रहण की पूरी प्रक्रिया अपनाए, जबरन अधिग्रहण का हथियार बना लिया।"[17]

निर्मला पुतुल अपनी दूसरी कविता 'बिटिया मुर्मू के लिए' में ठेकेदार द्वारा जंगल को रोज काटने से चिंतित होकर अपने आदिवासी लोगों से कह रही हैं-

देखो ! अपनी बस्ती के सीमांत पर
जहाँ धराशायी हो रहे हैं पेड़
कुल्हाडियों के सामने असहाय
रोज नंगी होती बस्तियाँ
एक रोज माँगेगी तुमसे
तुम्हारी खामोशी का जवाब[18]

आदिवासियों के जंगल धड़ा धड़ कट रहे हैं। परिणामस्वरूप मिट्टी का क्षरण होता है । जंगल कम होंगे, पेड़-पौधे कम होंगे तो अकाल पड़ने की स्थितियाँ बनेंगी । पर्यावरण खतरे में होगा । लोग जंगलों के कटने से बस्तियाँ छोड़ कहीं ओर जाकर बस रहे हैं। आदिवासियों की आजीविका का साधन जमीन और जंगल ही है। किंतु कब्जे की घिनौनी राजनीति ने इन्हें अपनी ही जमीन और जंगल से दूर कर दिया है। इन्हें किसान से मजदूर बनाकर भूखे तड़पने के लिए मजबूर कर दिया है।

आदिवासी प्रकृति, जंगल के संसाधनों, इनकी बेशकीमती जड़ी-बूटियों से दवा-दारु बनाकर अपना भरण-पोषण करते हैं। तथाकथित सभ्य समाज के लुटेरों ने इनकी कमाई के ये साधन भी छीन लिए । महुआ और गूलर के पेड़ इनके लिए बहुत उपयोगी हैं। महुआ से ये शराब बनाते हैं और गूलर से कई बीमारियों की औषधी बनती है। आज आदिवासियों के जंगलों से ये

उपयोगी साधन लूटे जा रहे हैं। बिहार के कवि मुन्ना साह अपनी कविता 'महुआ और गूलर' में लिखते हैं-

दोनों के रखवाले आदिवासी
आज बने हैं प्रवासी
वनों को काट-काट कर
किया गया है बेदखल
ये भी आहत हैं
महुआ और गूलर
गूलर के फूल पर
मुहावरा बना है
महुआ रूप बदल कर
बंगलों में
आज भी खड़ा है[19]

आदिवासी किसानों की जमीन छीने जाने से ये मजदूर बनकर रह जाते हैं। अपनी जमीन न होने से ये गैरों की जमीन पर काम कर अपना खून पसीना बहाते हैं किंतु मजदूरी इतनी कम मिलती है कि उससे अपना पेट तक न भर सके। मुन्ना साह अपनी कविता 'खेत का मजदूर' में एक आदिवासी मजदूर किसान का दर्द चित्रित करते हुए लिखते हैं-

जमीन है तो किसान
नहीं तो मजदूर
ना खेत अपना ना अन्न
केवल शरीर और श्रम
उपजाएं फसल हम
हम ही भूखे [20]

विकास के नाम पर आदिवासियों की जमीनों पर रास्ता बनाने के बहाने वहाँ की खनिज-सम्पदा लूट ली जाती है । आदिवासियों के इलाकों में सँवारने वाले कम और लुटेरों की संख्या अधिक है। कवि ज्ञानेंद्रपति अपनी कविता 'एक आदिवासी गाँव से गुजरती सड़क' में लिखते हैं -

चौड़े पंजर की ट्रकें, ट्रेलर लगे ट्रैक्टर
बसें कारें हाकिम हुक्काम
आए तमाम
इस मिट्टी की छाती से
खनिज खंखोरने वाले तातारी लुटेरे[21]

इस प्रकार हम देख सकते हैं की देश में विकास और प्रगति के नाम पर किस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करके उनका का अविरल दोहन किया जा रहा है और प्रकृति के संरक्षक, उसके पूजक आदिवासियों को उनके निवास स्थान से बेदखल करने की नीति अपनाई जा रही है। इस से न केवल आदिवासियों के सामने अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया है, अपितु पर्यावरण संरक्षण का संकट भी आ खड़ा हुआ है। आदिवासी हिन्दी कविता में आदिवासियों की इन चिंताओं और उनके दुख-दर्द को अभिव्यक्ति मिली है जिस से आदिवासियों के भीतर चेतना और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का भाव पनप पाया है। आदिवासी विमर्श इसी चेतना का परिणाम रहा है।

(ख) संस्कृति संरक्षण का सवाल

आदिवासियों का खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, परंपराएँ, वेश-भूषा आदि इनकी विशिष्टताओं को दर्शाती हैं। आदिवासी आदिकाल से जंगलों में ही निवास करते आ रहे हैं। इनका पूरा का पूरा जीवन जंगल से ही जुड़ा है। अतः इनमें वन संरक्षण की प्रबल प्रवृत्ति रही है। वन के साथ-साथ वन्य जीवों एवं अन्य पालतू पशुओं का संरक्षण ये शुरू से करते आ रहे हैं और अपनी अगली पीढ़ी को यही वन-स्थल ये धरोहर स्वरूप सौंपते हैं। आदिवासियों को जंगलों से हटाने की साजिश अंग्रेजों के शासन काल से ही चली आ रही है। अंग्रेजों, उद्योगपतियों, साहूकारों और सरकारी नीतियों ने मिलकर इनकी वन संपदाओं के साथ छेड़-छाड़ शुरू की। आदिवासियों की परम्परागत व्यवस्था को तहस-नहस करने की साजिशें चलती रहीं, जिसके चलते आदिवासियों के आदिम सांस्कृतिक मूल्यों का जमकर ह्रास हुआ। धीरे-धीरे आदिवासी अपने जंगल-जमीन से दूर होते जा रहे हैं जिसके चलते उनकी संस्कृति, भाषा सब कुछ उनसे छूट रहा है। उनकी आदिम संस्कृति आज खतरे में है। उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि जंगलों में रहकर जिस संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखते आ रहे थे, आज वही संस्कृति खोने की कगार पर है। संस्कृति खोने, भाषा खोने का मतलब है अपनी पहचान खोना, अस्मिता खोना। आज संस्कृति एवं अस्मिता को बचाने का सवाल आदिवासियों के सामने खड़ा है। अपनी संस्कृति के संरक्षण के लिए आज आदिवासी जागरुक हो रहे हैं । वे उन लोगों के विरुद्ध आज आवाज उठा रहे हैं जो इनकी संस्कृति को उजाड़ना चाहते हैं।

कामडारा प्रखंड स्थित खड़िया सांस्कृतिक पहचान से जुड़ा एक पहाड़ है जो 'कोनजोगा' नाम से प्रसिद्ध है। यह कोनजोगा पहाड़ इनकी आदिम संस्कृति के साथ जुड़ा है। सरकारी नुमाइंदे और ठेकेदार मिलकर आज इस पहाड़ को तोड़ने में लगे हैं। आदिवासियों से विकास का वायदा कर ये सब काम किया जा रहा है। उन्हें बड़े-बड़े झूठे सपने दिखाए जाते हैं। इस साजिश को वंदना टेटे अच्छी प्रकार समझ रही हैं। अपने कोनजोगा को टूटता देख वह लोगों को बता रही है कि 'कोनजोगा' हमारी संस्कृति की पहचान है जो आज टूट रहा है और हम क्यों नहीं लड़ रहे हैं? हम क्यों चुप हैं? हमारी धरोहर मिट रही है। वह कहती हैं -

पुरखा कथाओं में दर्ज / कोनजोगा टूट रहा है /

पुरखा कथाओं में दर्ज / जतरा के ढोल की आवाज /

दफन हो रही है / छेनी और हथौड़े की आवाज में /

पाना, मारतुल और घन / ठोक रहे हैं /

सीने पर कोनजोगा के / सरकारी नुमाइंदे /

ठेकेदार और मुंशी /

X X X

हम चुप हैं / हम नहीं लड़ रहे /

अपने लिए।[22]

आदिवासियों की संस्कृति पर बाहरी हमले लगातार होते रहे हैं। कई गैर आदिवासी समुदायों ने उन पर जबरदस्ती अपनी संस्कृति थोपनी चाही। उन्हें उनकी भाषा, संस्कृति और धर्म से अलग कर अपनी संस्कृति अपनाने पर मजबूर कर रहे हैं। कवयित्री वंदना टेटे अपनी संस्कृति, भाषा, अपने दर्शन को मिटता देख चुप नहीं रहती । वह उन गैर-आदिवासी ढोंगियों से कहती हैं जो उन्हें मिटाने पर तुले हैं -

तुम तो आए ही / साथ आयी तुम्हारी

भाषा, संस्कृति और दर्शन भी / और लीलते

गए आहिस्ता-आहिस्ता / लीलता है जैसे बोड़ा /

दागता है जैसे बनफोरा / पर तुम तो न बोड़ा हो /

न ही बनफोरा / न करैंत / तुम तो हो तीनों का संकर ।[23]

आदिवासी प्रकृति के पूजक हैं। जंगल, पेड़, पर्वत, नदियां तथा अपने पूर्वजों को ही ये पूजते हैं। अपने पूर्वजों को हर सुख-दुख में ये याद करते हैं। तथाकथित मुख्यधारा में शामिल करने हेतु कोई इन्हें हिंदू बनाने की होड़ में है तो कोई ईसाई बनाने की । आदिवासियों को शिक्षा दी जाएगी, उन्हें ज्ञान बांटा जाएगा। जैसी बातों से उन्हें बहला-फुसलाकर धर्म परिवर्तन करवाया जा रहा है। धर्म के नाम पर इनके अपने धर्म व संस्कृति का ह्रास हो रहा है। दूर जंगलों में इनके लिए शिक्षा की सुविधा कर तथा दवा आदि उपलब्ध करवा कर कुछ हद तक इनके साथ भला जरूर हुआ, पर इन सबके बदले उनसे उनकी ही पहचान छीन लेना अब आदिवासियों को मंजूर नहीं है।

वाहरु सोनवणे लिखते हैं - "आदिवासी हिंदू नहीं हैं। 'हिंदु कोड बिल' आदिवासियों पर लागू नहीं है, यह ध्यान में रखें। पहले मुलाकात या भेंट होने पर आदिम से आदिवासी 'हाजा के, वालीस के', कहकर आपस में अभिवादन करते थे और कुछ आदिवासी अभी भी इसी प्रकार अभिवादन करते हैं। बिहार के कुछ जमातों में अभी भी 'जौहार' किया जाता है लेकिन अनेक क्षेत्रों की अनेक जमातों में से उनका खुद का अभिवादन मिटाया जा रहा है और उनके स्थान पर 'राम-राम', यह अभिवादन थोपा जा रहा है, जो जड़ें जमा रहा है।" [24]

वाहरु सोनवणे आगे लिखते हैं कि "संस्कृति नष्ट करने के मार्ग अलग-अलग हैं। संरक्षण, विकास या किसी एक प्रलोभन के नाम पर अथवा सीधी दादागिरी के बल पर हिंदू संस्कृति आदिवासियों के बीच रमाने का प्रयत्न होता दिख रहा है। अलग-अलग भागों में आदिवासियों ने खास विरोध नहीं किया, लेकिन जहाँ-जहाँ विरोध हुए वहाँ-वहाँ आदिवासी संस्कृति कायम है। वर्तमान में खड़े होकर यदि नज़र घुमाएँ और आदिवासी देवताओं को खोजें तो आदिवासी देवता नदारद हैं। प्रश्न उठता है कि आदिवासी देवता धूल क्यों खा रहे हैं? इसका कारण यह है कि धर्मांध लोग तय करके, जानबूझ कर हिंदू, ईसाई, मुस्लिम आदि धर्मों के देवी-देवताओं का आकर्षण आदिवासियों के बीच बढ़ाते गए। इसलिए आज आदिवासी घरों में आदिवासी देवता के एवज में हिंदू के राम, कृष्ण, मुसलमानों के पीर, ईसाईयों के ईसा आदि तो मिलेंगे, मगर बाघ देव, डोगज्या देव, राजा

पानठा, राणी काजल और भारत के विभिन्न हिस्सों की जमातों में उनके देवी-देवताओं के फोटो नहीं मिलेंगे।"[25]

विकास के नाम पर आदिवासियों को तरह-तरह से छला जा रहा है। उनके धर्म परिवर्तन करवाए जा रहे हैं और मिटाई जा रही है उनसे उन्हीं की पहचान। विकास के नाम पर उनके धर्म, उनकी संस्कृति पर कैसा प्रहार हो रहा है, इसी के विरोध में वंदना टेटे अपनी आवाज उठाती हैं और कहती हैं-

तब तुम खुश क्यों हो?

इंद्र के घोड़ों पर सवार

रुद्राक्ष की माला ढोये (लादे)

धर्म की आंधी उड़ाता / विकास की किरकिरी

तुम्हारी आंखों में डालने / आ रहा है वो /

और तुम खुश हो? / पूंजी के उड़न खटोले पर /

सवार होकर वह / ले जाएगा तुम्हारी / जमीन, श्रम और

पहचान ।[26]

आदिवासी आज इस बात को अच्छी तरह से जान गए हैं कि उन पर गैर-आदिवासियों द्वारा न केवल अपना धर्म थोपा जा रहा है, बल्कि उनके स्वयं के धर्म और संस्कृति को मिटाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं । अतः आज वह इसके खिलाफ आवाज उठा रहा है ।

शिलांग के कवि न्गनगोम विदेशी शासकों द्वारा थोपे गए धर्म एवं उनके साथ की जा रही साजिश के विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं-

लाया था वह हमारे लिए चिठ्ठियां,

साहित्य और बाइबिल

वह था 'वैल्श'का निवासी।

पर टॉमी लाए द्वेष

और हमारी हरित भूमि पर छिड़क दिया

हमारे पुरखों का रक्त

और हमसे गोलाबारी के अंदाज़ में की बातें...[27]

सदियों से सताए जाने के बावजूद आदिवासियों ने अपनी संस्कृति, रीति-रिवाजों, भाषा एवं सामूहिक जीवन शैली को मरने नहीं दिया है। इन्हें जंगलों से खदेड़े जाने के साथ अब इनकी भाषा को ही खत्म कर देने की कोशिश की जा रही है क्योंकि यदि भाषा ही लुप्त ही लुप्त हो जाएगी तो इनकी संस्कृति भी जीवित नहीं रहेगी। आदिवासी समुदाय इन साजिशों को समझने लगा है और आवाज़ उठाते हुए उन पर जबरदस्ती थोपी जा रही बाहरी सभ्यता को नकार रहा है। वह बिरसा मुंडा को याद करता है कि अब हर आदिवासी फिर से बिरसा मुंडा बन जाए और बचाए अपनी लुप्त होती संस्कृति को ।

आदिवासी समाज का सुख-दुःख में एक मात्र साथी संगीत है । संगीत इनके जीवन के हर पल से जुड़ा है। जहाँ कोई खुशी या उत्सव हो तो संगीत, कहीं खेत में धान बोना या

काटना हो तो संगीत, कहीं कोई दुःख का माहौल तो भी वे संगीत के ही माध्यम से अपने आप को अभिव्यक्त करते हैं।

संगीत इनके जीवन का अभिन्न अंग है। ग्रेस कुजूर की कविता 'एक और जनी-शिकार' में वह संगीत को खोजती हुई दिखती हैं -

कहाँ है वह फुटकल का गाछ

X X X X

कोमल पत्तियों वाला

कोयनार का गाछ

जिसके नीचे तुम

बजाया करते थे / मांदर और बांसुरी?

X X X

हवा में नहीं तैरते अब

'अंगनई' और 'डमकच' के गीत

X X X

किसने की है चोरी

भिनसरिया में ढेंकी के संगीत की

और उखाड़ी है किसने

'आजी' के 'जाता' की कील?[28]

ढोल और और बांसुरी से आदिवासियों को अत्यधिक लगाव है। आज विशेष अवसरों पर गाए जाने वाले गीत-संगीत लुप्त होते जा रहे हैं। ढेंकी, चक्की एक ऐसा उपकरण है जिसमें धान कूटने या अनाज पीसने पर एक संगीत की सी धुन सुनाई देती है, उसके लुप्त होने से ग्रेस कुजूर दुःखी हैं और अपने लोगों को अपनी संस्कृति का महत्व बताते हुए उन्हें इन्हें संरक्षित करने की बात कह रही हैं ।

बाहरी संस्कृति आज आदिवासियों पर हावी होती जा रही है। कवि शंकर लाल मीणा भी अपनी कविता 'परदेसी सौदागर' में इसी विषय में कहते हैं -

'हमारी सांस्कृतिक जड़ता को

तोड़ने के लिए

कई चीजें हैं सौदागर के पास

माइकल जैक्सन – मैडोना

एम. टी. वी. – बोल्ड एंड ब्यूटीफुल...[29]

पाश्चात्य संस्कृति का असर आदिवासियों पर भी पड़ा है। आदिवासी लोग अब अपने गीत-संगीत भूलते जा रहे हैं । अब वे गीत-संगीत और नृत्य इन्हें भाने लगे हैं जिन्हें ये सौदागर अपने फायदे के लिए यहाँ ला रहे हैं, जो असल में बाहरी संस्कृति के रूप हैं ।

कवि महादेव टोप्पो भी 'समझदार तितलियाँ' कविता में अपनी भाषा-संस्कृति को महत्व कुछ इस प्रकार दे रहे हैं -

'उन दोपाया जोंकों से लड़ते हुए

जो चूसते नहीं

सिर्फ हमारे शरीर का रक्त

चूस लेते हैं हमारे खेत-खलिहान

हमारी भाषा-संस्कृति और –

इतिहास का भी रक्त।[30]

कविता में बाहरी हस्तक्षेप करने वालो को जोंक की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि इन लोगों ने हमारे खेत-खलिहान के साथ-साथ हमारी ऐतिहासिक पहचान और स्वयं हमारा इतिहास भी हमसे छीन लिया है । हमारे शरीर का सारा रक्त भी चूस लिया है । हमसे हमारा घर-बार, जंगल-जमीन सब हमसे छीन लिया गया ।

अपनी भाषा, संस्कृति और इतिहास के खोने के डरसे कवि महादेव टोप्पो अपनी दूसरी कविता 'सबसे बड़ा खतरा' में कहते हैं-

'सिर्फ अपने खेत खलिहान मकान
ही नहीं खोये हैं हमने
खोया है सैकड़ों वर्षों से अर्जित-
पुरखों के गाढ़े पसीने की कमाई
अपनी भाषा, संस्कृति और इतिहास [31]

आदिवासियों ने बहुत कुछ खोया है, लेकिन वे अपनी भाषा- संस्कृति को खोने से अत्यधिक डरते हैं। आज इनकी भाषा- संस्कृति लुप्त होने के कगार पर है।

रमणिका गुप्ता लिखती हैं, "आज दक्षिण के सभी राज्यों में आदिवासियों की भाषा गायब हो चुकी है। उनकी संस्कृति और अस्मिता लुप्त होने के कगार पर है। उनके देवताओं और देवियों

को दूसरे लोग हथिया रहे हैं या वे उन्हें अपने देवता थमा रहे हैं। आदिवासी किसी मंदिर या देवालय का मोहताज़ नहीं होता। उनकी आस्था का केंद्र पूरी प्रकृति होती है।" [32]

कवि रणेंद्र ने अपनी कविता 'थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ' में भी यह दुःख प्रकट किया है कि किस प्रकार विकास के नाम पर आदिवासी अपनी संस्कृति को भूलाते जा रहे हैं। वे लिखते हैं-

"विकलांग हो रही
हमारी पीढ़ी
महान संस्कृति के महान ग्रंथ से
निकल कर कुलाँचे भर रहा है
विकास का मायावी स्वर्ण मृग
XX X X
प्रकृति पूजकों की वन- संस्कृति की
इस अवसान बेला पर
छाती भर दम भर कर
हाँक देना चाहता हूँ
सहिया हो [33]

आदिवासी समाज में मुख्यधारा की प्रवृत्तियों का असर दिखने लगा है। बहुतों ने दूसरी संस्कृति या धर्म को अपनाया है जिसके कारण आने वाली पीढ़ी अपनी पुरखों की संस्कृति-भाषा को भूलती जा रही है। विकास का अर्थ यह नहीं कि अपनी भाषा- संस्कृति ही भुला दी जाए।

कवि रणेंद्र आदिवासियों से कह रहे हैं कि विकास के नाम हम अपना सब कुछ समाप्त करते जा रहे हैं। हम प्रकृति पूजक हैं। हमारी संस्कृति वन के साथ जुड़ी है और मैं इसे समाप्त होने नहीं देना चाहता।

उनके संथाल परगना में उनकी की ही भाषा और वेशभूषा में लोग कम दिखने लगे हैं। अपनी संस्कृति खोने के डर से निर्मला पुतुल अपनी कविता 'संथाल परगना' में कहती हैं-

संथाल परगना

अब नहीं रह गया संथाल परगना !

बहुत कम बचे रह गये हैं
अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग
X X X
कायापलट हो रही है इसकी
तीर-धनुष– माँदल - नगाड़ा- बाँसुरी
सब बटोर लिये जा रहे हैं लोक संग्रहालय
समय की मुर्दागाड़ी में लादकर[34]

आदिवासी अपनी जिस भिन्न संस्कृति और भाषा पर गर्व करता है, उन सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण की चिंता आदिवासी कविताओं में साफ दिखाई देती है। पुरखों की विरासत हो, रहन-सहन, खान-पान और वेशभूषा का बदलता स्वरूप हो, बाह्य समाज और संस्कृति के संपर्क से निरंतर प्रभावित हो रहा है। सकारात्मक चीजों को अपनाने से परहेज नहीं है लेकिन जो संस्कृति आपकी अस्मिता का रूप बन जात है, उसका क्षरण आदिवासी हित में नहीं है। विभिन्न कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से इसे एक चुनौती के रूप में पेश किया है।

(ग) आदिवासियों के पलायन की समस्या

आदिवासी दोहरे संघर्ष से जूझ रहे हैं। एक तो अपनी पहचान, अपनी भाषा-संस्कृति को बचाने का संघर्ष और दूसरा अपने जंगल-जमीन छीन लिए जाने पर उत्पन्न पलायन की समस्या और

परिणामतः जंगल-जमीन को प्राप्त करने का संघर्ष। आदिवासियों के सामने आज कई प्रकार की समस्याएँ हैं जो उनके समक्ष सवाल बनकर खड़ी हुई हैं। पलायन और विस्थापन इनमें से मुख्य समस्याएं हैं। आदिवासी पहले से ही खदेड़े जाते रहे हैं और आज भी खदेड़े जा रहे हैं। अपने जल-जंगल और जमीन से अलग होते ही इनकी सारी समस्याएँ शुरू हो जाती हैं।

आजादी के पहले से ही आदिवासी अंग्रेजों द्वारा खूब सताए गए । ऐसा नहीं कि इन आदिवासियों ने कोई विद्रोह नहीं किया। इन विद्रोहों के परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने कई कानून बनाए किंतु अंग्रेजों के छल को भोले-भोले आदिवासी नहीं समझ पाए। धीरे-धीरे आदिवासियों को जंगलों से होने वाली उनकी उपज के अधिकारों से वंचित होना पड़ा ।

देश आज़ाद हुआ। आदिवासी सोचने लगे अब हालात सुधरेंगे और सपने देखने लगे अपने जंगल-जमीन पर खुशहाल जीवन-यापन का । किंतु यह उनका भ्रम ही साबित हुआ । आज़ादी के बाद आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा के बजाय भारत सरकार ने ऐसे-ऐसे कानून बनाए जिससे आदिवासियों के सारे सपने चूर-चूर हो गए, हाथ लगी तो केवल निराशा। सिंहभूम और बिहार के आदिवासियों पर सरकारी अत्याचार के बारे में रमणिका गुप्ता लिखती हैं -

“आज़ादी के बाद आदिवासियों की रक्षा करने की बजाए, भारत सरकार ने अंग्रेजों द्वारा बनाए कानूनों को और भी सख्ती से लागू करना शुरू कर दिया। सरकार के इस कानून के कारण सिंहभूम में 1978 में जंगल आंदोलन छिड़ गया। 1978 और 1985 के बीच बिहार में 18 पुलिस गोलीकांड हुए तथा 450 आदिवासियों के घर उजाड़ दिए गए। हजारों आदिवासियों को झूठे मुकदमों में फंसाया गया। 14 अप्रैल, 1984 को उच्चतम न्यायालय में चीफ

ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेट, सिंहभूम द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के अनुसार 14 हज़ार आदिवासियों पर 5160 मुकदमे सिंहभूम जिले की अदालत में लंबित थे, जिनमें से कुछ 1960 से ही लंबित थे। दरअसल आदिवासियों की त्रासदी का मुख्य कारण है – उनका पूर्वजों के गाँवों से विस्थापन और जमीन तथा जंगलों के परम्परागत स्वामित्य से वंचित किया जाना ।"[35]

विकास के नाम पर सबसे बड़ा दर्द आदिवासियों को झेलना पड़ा है। विकास के नाम पर आदिवासियों का पलायन और विस्थापन सदियों से ही चला आ रहा है और आज भी यह प्रक्रिया जारी है। आदिवासियों के जंगलों, जमीनों और संसाधनों पर कब्जा कर उन्हें मजबूर कर दिया गया है दर-दर भटकने के लिए। आदिवासी केवल अपने जंगलों, जमीनों या गाँवों से बेदखल नहीं हुए बल्कि अपने नैतिक मूल्यों, जीवन-शैली, भाषा, संस्कृति से भी बेदखल हुए। इन सबके पीछे सरकारी कानून, प्रशासन और न्याय व्यवस्था की भूमिका भी रही है। आदिवासी परंपरानुसार अपनी भूमि पर रहते आए हैं। बाहरी घुसपैठ ने विकास का झांसा देकर इन आदिवासियों की बड़ी मात्रा में मालिकाना जमीनें हड़प ली। अशिक्षित, सीधे-सरल और भावुक स्वभाव के होने के कारण बाहर के लोगों द्वारा इनका समय-समय पर फायदा उठाया गया है। आज अपने ही घर में ये बेगाने और मेहमान बन गए हैं और आज मजबूर हैं अपनी ही जमीन में मजदूरी करने को।

विकास के नाम पर सरकार कई योजनाएँ बनाती आई है। औधोगिक विकास के लिए बड़े-बड़े कल-कारखाने लगाने के नाम पर आदिवासियों से उनकी ज़मीनें छीनी गईं । बिजली और पानी के लिए बड़े-बड़े बाँध बनाए गए, प्राकृतिक संपदाओं का दोहन हुआ। चौड़ी सड़कें बनाई गईं

परिणामस्वरूप आदिवासियों के गाँव के गाँव उजाड़े गए । तमाम योजनाओं से देश प्रगति की ओर तो बढ़ा, पर आदिवासी दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हुए। इन्हें अपने शोषण, विस्थापन, पलायन एवं बेरोजगारी के सिवाय कुछ नहीं मिला। राजकुमार मीणा अपने लेख 'विस्थापन और आदिवासी' में कहते हैं-

"वर्तमान समय में भारत सरकार विभिन्न योजना–परियोजनाओं के द्वारा आदिवासियों, दलितों, पिछड़ों के विकास का दम्भ कर रही है। लेकिन क्या वास्तव में इस समाज का विकास हो रहा है? क्या इन योजनाओं की रणनीति और क्रियान्वयन में पिछड़े समाजों का प्रतिनिधित्व है? उत्तर है नहीं, आज के दौर में 'नक्सलवादी' या माओवादी आंदोलन ने आदिवासी समाज और जल, जंगल, जमीन की समस्याओं की तरफ भारत सरकार का 'विशेष' ध्यान आकर्षित किया है और समस्याओं के समाधान के लिए विकास की आवश्यकता को महसूस कराया है। विकास के नाम पर आदिवासी बहुल क्षेत्रों में औद्योगीकरण, परियोजनाओं, खनन कार्य, पुलिस-फोर्स की बाढ़ आ गयी। सरकार और मीडिया के माध्यम से लोग समझ रहे हैं कि आदिवासियों का विकास किया जा रहा है लेकिन सच यह है कि वहाँ विकास के नाम पर विस्थापन अधिक हो रहा है। आदिवासी समाज में विकास का नाम सुनते ही भय पैदा हो जाता है। लोग जंगलों, गुफाओं में गाँव छोड़कर भाग जाते हैं। आज विकास के बदले विस्थापन अनिवार्य माना जा रहा है। सरकार हो या योजनाकार, शासक हो या शोषक, सबों ने मान रखा है कि विस्थापन के बिना विकास संभव नहीं हैं। इसलिए विकास के नाम पर लोगों को उजाड़ने की सुनियोजित साजिश शासकों और शोषकों की चल रही है।"[36]

झारखंड, उत्तराखंड, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक, उड़ीसा, असम व अन्य आदिवासी क्षेत्रों के आदिवासी पहले अपने क्षेत्र में भूमिपति थे, किसान थे। इनका जीवन जंगल एवं खेती से जुड़ा है। इनके अपने खेत थे जिसमें वे आपसी सहयोग से सामूहिक खेती करते थे और अपना जीवन यापन करते थे। विकास की होड़ में इन आदिवासियों की ज़मीनों पर सरकार की नज़र पड़ी। उनसे तरह-तरह के वायदे किए गए कि जमीन के बदले नौकरी मिलेगी, किसी दूसरे क्षेत्र मे पुनर्वास मिलेगा आदि। आज़ादी के बाद पहले पाँच वर्षों में लगभग ढाई-लाख आदिवासियों में से पच्चीस प्रतिशत आदिवासियों को विस्थापित किया गया। पुनर्वास तो हुआ किंतु बहुत ही कम मात्रा में।

झारखंड राज्य प्राकृतिक संपदाओं के मामले में काफी समृद्ध है। हालांकि विस्थापन, पलायन सबसे अधिक यहीं हुआ। यहाँ अकेले कोयला-क्षेत्रों में ही ढाई-लाख से ज्यादा मजदूर काम करते हैं। यहाँ मौजूद खनिज संपदा कभी आदिवासी मजदूरों की अपनी थी। आदिवासी नहीं जानते थे कि जिस जमीन पर या जिस क्षेत्र में वे रहते हैं उसके भू-गर्भ में अकूत खनिज सम्पदा है और यही संपदा एक दिन विस्थापन के लिए मजबूर कर देगी । सरकार द्वारा कई नीतियाँ व बिल बनाएँ गए जिससे इनकी अपनी जमीन धीरे-धीरे राष्ट्रीय संपत्ति बनती जाए या ठेकेदारों व बड़ी-बड़ी कंपनियों के हवाले होती जाए। जंगल कटते गए, जमीन पर खनन कार्य चलता गया और अपनी जमीन से विस्थापित आदिवासी मजदूरी करने के लिए मजबूर होते गए । मजदूरी का उचित दाम न मिलने पर वही आदिवासी मजबूरन चोर तक बन जाता है। अपनी

ही जमीन से या तो वह कोयला चुराकर अपने परिवार को पालता है और पकड़े जाने पर जेल पहुँच जाता है या अपनी जमीन से पलायन करता है ताकि कहीं कोई काम मिल जाए ।

आदिवासियों की जमीन की सुरक्षा हेतु कई कानून भी बने। उदाहरण के लिए छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम, भूमि अधिग्रहण अधिनियम आदि। किंतु सरकार द्वारा समय-समय पर इन नियमों में संशोधन भी किया गया ताकि छल से इनके जमीनें छीनी जाए और ये कुछ बोल भी न सके। राष्ट्रीय हित का तर्क देकर लाखों लोगों की ज़मीनें अधिग्रहित कर उन्हें विस्थापित कर पलायन के लिए मजबूर कर दिया गया ।

किसान आदिवासियों के पुनर्वास और नौकरी की उपेक्षा की गई। कुछ एक का पुनर्वास हुआ भी तो उन्हें ऐसे समाज में धकेल दिया गया जो किसी भी दृष्टि से इनके अनुरूप नहीं था या जो इनसे एकदम भिन्न सांस्कृतिक रीति-नीतियों वाला था। अपनी संस्कृति छोड़ एक नए समाज में खुद को ढालने के लिए वह कतई तैयार नहीं हो पाता । एक आदिवासी अपने समाज में ही अपने जीवन को पूर्ण और सार्थक पाता है।

आज जो आदिवासी अपनी भूमि में अपने पारंपरिक ढंग से जीवन-यापन कर रहे हैं, वे भी पलायन को मजबूर हैं। आदिवासी समाज का जीवन पूर्णतः जंगल से जुड़ा है। ये जंगल से लकड़ी, फल-फूल, औषधि, कुछ बीजों के तेल, गोंद, मधु आदि इकट्ठे कर बाज़ार में बेचकर तथा अपने पारंपरिक तरीके से खेती कर अपना जीवीकोपार्जन की व्यवस्था करते हैं। अब धीरे-धीरे इन्हें जंगल में प्रवेश से रोका जा रहा है। सरकार ने अब वन संरक्षण के कई कानून लागू कर दिए हैं या किसी विकास कार्य के लिए पूरे जंगल से पेड़ कटवाए जा रहे हैं। कहीं तो

पूरे जंगल के पेड़-पौधों को हटवाकर सागवान और सफेदे (यूकेलिप्टिस) के पेड़ लगवाने का कार्य जोरों से हो रहा है। बिहार और झारखंड में आदिवासियों ने सरकार के इस कदम का विरोध भी किया क्योंकि आदिवासियों के लिए मिश्रित जंगल रोजगार का एक स्रोत है। मिश्रित जंगल से वर्षा और पानी की कमी नहीं होती। जबकि सागवान और सफेदे के पेड़ मिट्टी की नमी शोख लेते हैं और पानी की कमी हो जाती है जिससे आदिवासियों को पानी से संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आदिवासियों को जंगल प्रवेश से रोका जा रहा है। जंगल-प्रवेश पर सरकारी अधिकारियों द्वारा ये दंडित हो रहे हैं। अपने पारंपरिक ढंग की खेती-बाड़ी से इनका भरण-पोषण नहीं हो पाता है। कृषि के नए तौर-तरीकों व नवीन उपकरणों से ये परिचित नहीं हैं। आदिवासियों की स्थिति अब दयनीय होती जा रही है। ऐसे हालत में या तो ये पलायन को मजबूर हैं या सरकार के विरुद्ध बंदूक उठाकर उग्रवादी, नक्सलवादी या माओवादी बन जाते हैं।

कई आदिवासी इलाकों में तो अब तक बिजली की सुविधा नहीं है। न ढंग का स्कूल है और न ही अस्पताल। कच्चे रास्तों से गुजरता आदिवासी इलाका बरसात के मौसम में पूरी तरह शहर जाने वाले रास्ते से कट जाता है। जहाँ सरकार ने इनके लिए स्कूल व अस्पताल बनाए हैं, वहाँ या तो अध्यापकों की कमी है या गरीबी के कारण छात्रों की । क्योंकि गरीबी में बच्चे स्कूल जाने के बजाय बाल मजदूर बनना पसंद करते हैं। अस्पताल जहाँ बने हैं, वहाँ भी सारी सुविधाओं की कमी है। अब ऐसे में आदिवासी या तो मरते हैं या अपने गाँव छोड़कर दूर शहर की ओर पलायन करते हैं। पलायन के अतिरिक्त उनके समक्ष दूसरा उपाय नहीं रह जाता।

मजबूर होकर आदिवासी अन्य राज्यों के शहरों की ओर निकल पड़ते हैं । अपनी जमीन, संस्कृति से दूर एक अपरिचित, अनजाने समाज में ये केवल एक दिहाड़ी मजदूर बनकर रह जाते हैं। एक तो गरीबी और दूसरे गाँव में शिक्षा की उचित व्यवस्था न होने के कारण गाँव के युवा-युवती भी अपने समाज से दूर शहरों की ओर निकल पड़ते हैं जहाँ वे दो जून रोटी के लिए संघर्ष करते हैं और इसी प्रक्रिया में वे शिक्षा से भी वंचित ही रह जाते हैं। स्त्रियों की हालत तो और भी दयनीय है जो परिवार चलाने के लिए मिल, कारखानों में मजदूरी करती हैं। लोगों के घरों में काम करती हैं। चाय बागानों में काम करती हैं और अपने श्रम का उचित मूल्य तक उन्हें नहीं मिलता। मिलता है तो बस लोगों की भेड़िया नज़र और असुरक्षा बोध ।

विकास के नाम पर चौड़ी सड़कें बनाकर, औद्योगिक कंपनियों को स्थापित करने के परिणामस्वरूप आदिवासियों का पूरा का पूरा गाँव विस्थापित कर दिया जाता है। राष्ट्र की प्रगति व विकास कौन नहीं चाहता? विकास इस रूप में हो कि किसी भी वर्ग का आर्थिक-सामाजिक संतुलन न बिगड़े। विकास का अधिकार हर तबके, हर वर्ग को है किंतु असंख्य भोले-भाले आदिवासी मजदूरों, गरीब लोगों के अस्तित्व की कीमत पर ठेकेदारों या बड़ी-बड़ी कंपनियों के मालिकों का विकास नहीं होना चाहिए । आदिवासी और गरीब लोगों की जिंदगियाँ लीलकर मानवता के विरुद्ध जाकर किया गया विकास सही मायने में विकास नहीं है।

मैथ्यू अरीपरमपिल के अनुसार, *"यह सब हुआ 'राष्ट्रीय हित' के नाम पर, जिसका लाभ मात्र प्रभावी वर्ग के गिने-चुने लोगों को ही मिला। इस प्रभावी वर्ग की आय के लिए जंगल, एक*

बना-बनाया स्रोत बन गया। उन्हें जंगल के चीर-हरण के लिए सस्ते मजदूरों की एक विशाल सेना की भी जरूरत थी। आदिवासियों को, जो अब तक अभावग्रस्तता की हद से भी गिर चुके थे, सस्ता मजदूर का रोल ग्रहण करना पड़ा। जिस जंगल के वे स्वामी थे, उसी जंगल में अपनी ही जमीन पर रेज़ा और कुली बनकर खटने पर मजबूर होना पड़ा। आदिवासियों पर, पूँजीपति वर्ग का वन-दमन, 'कालचक्र' बनकर उतर पड़ा। एक तरफ जहाँ इन्हें अपनी भूमि तथा जंगल से निकाल बाहर किया, वहीं दूसरी तरफ जंगल प्रदत्त खाद्य सामग्री से भी वंचित कर दिया। फलतः इन असहाय भूमिहीन बने आदिवासी मजदूरों की संख्या आसमान छूने लगी। इनकी लाचारी का फायदा उठाते हुए, इनके कंधों पर दासता का बोझ डाल दिया गया। वे जर्जर श्रमजीवी बन कर रह गए। 'राष्ट्रीय हित' के नाम पर वनपालन हेतु आदिवासियों को रेज़ा और कुली बना दिया गया। इस प्रकार उन्हीं की लाचारी की आड़ में उन्हें इस विकास और दमनात्मक प्रक्रिया की मशीन बना दिया गया। हर कोशिश की गई कि वे इसी दशा में पड़े रहे अन्यथा विकास की कुदाल कौन चलाएगा। "[37]

विमर्शों के दौर में आदिवासी विमर्श प्रमुख विमर्श बनकर उभरा है। बदलते सामाजिक परिवेश एवं भूमंडलीकरण या बाजारीकरण के संदर्भ में आदिवासी समस्या चर्चा का विषय बनी है। आदिवासी समस्याओं में एक प्रमुख समस्या पलायन की समस्या है। पलायन के कारण आज आदिवासी अस्मिता खतरे में है। जब तक आदिवासियों पर गैर-आदिवासियों, राजनेताओं एवं कुप्रबंधन वाली आर्थिक नीतियों की नज़र नहीं पड़ी थी, ये जैसे भी थे खुश थे। विस्थापन और पलायन की समस्या आदिवासी सदियों से झेलते आ रहे हैं। आज भी यह समस्या बरकरार है।

विस्थापन और पलायन की समस्या आज आदिवासियों के सामने एक सवाल बनकर खड़ी है। विस्थापन से यह समुदाय अपने समाज, गाँव, जंगल-जमीन से ही दूर नहीं हुआ, बल्कि अपनी संस्कृति, पहचान, जीवन शैली, नैतिक मूल्यों और भाषाओं से भी दूर होता गया। विकास के नाम पर आदिवासियों का विस्थापन सदियों से चला आ रहा है। आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल करने के लिए कई ऐसी सरकारी नीतियाँ बनीं जिनके विषय में एक भोलाभाले आदिवासी को पता भी नहीं रहता । एक आदिवासी व्यक्ति अपने घर-आंगन के छूटने पर दर्द से भर उठता है। कमल कुमार ताँती की कविता 'जिस दिन हमने अपना देश खोया ' में उसका दर्द कुछ ऐसे फूटता है-

मुझे याद आता है

हमारी जमीन और घर को रौंदता हुआ बुलडोजर

और रोते हुए एक-दूसरे को सांत्वना देते माँ-बाप

xxx

हाँ उसी दिन, जिस दिन खोया था हमने

अपनी धरती, अपनी पहचान और अपना देश

तब मैं उसी चट्टान पर खड़ा था

और वहीं से उन पर पत्थर फेंक रहा था

xxx

उस दिन पीला पड़ गया था माँ-बाप का असहाय चेहरा

जिनके खेतों को छीनकर बना दिया गया था अपाहिज

जीवन भर के लिए [38]

आज भी विकास के नाम पर हो रहे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण आदिवासियों को विस्थापन और पलायन जैसी बड़ी समस्याएँ झेलनी पड़ रही है। नर्मदा नदी पर बना सरदार सरोवर बाँध भी आदिवासियों से उनकी जमीन छीनकर ही बनाया गया था । जिस जमीन पर आदिवासियों का परंपरा से अधिकार रहा है, वहीं से उन्हें हटाकर उनसे उनके घर, खेती-बाड़ी सब छीन लिए गए। इन आदिवासियों का कहीं सही ढंग से पुनर्वास भी नहीं हुआ। सरकार आज उद्योगपतियों और अन्य कंपनियों से साठ-गांठ कर इन आदिवासियों के हितों को ताक पर रखकर केवल अपने हित को प्राथमिकता देती हुई खुद के विकास-पथ पर सवार है। हरिराम मीणा ने अपनी कविता 'सरदार सरोवर में डूबा आदिवासी भविष्य' में बताया है कि सरदार सरोवर बांध परियोजना की असलियत क्या है -

मैंने खूब सुना है इन दिनों

सरदार सरोवर परियोजना के बारे में

××××

मैंने महसूस किया जैसे

अभी-अभी हुआ हो सामूहिक कत्ल

किन्हीं मासूम, बेगुनाह और

अल्हड़ मानव समूहों का

××××

भीतर विराट जलराशि पर

बिखरा था

खून का ताज़ा और तरल रंग ।[39]

आदिवासी प्रकृति के साथ उठते-बैठते हैं, वे प्रकृति को जीते हैं। वही उनकी प्राणवायु है । प्रकृति ही इनकी साथी है तो प्रकृति ही इनके माता-पिता और भगवान भी । प्रकृति के सानिध्य में ही ये स्वयं को सुरक्षित पाते हैं । यहाँ के पेड़, जंगल, पहाड़, जानवर सब इनके अपने हैं। अपने विस्थापन या पलायन के लिए इन्हें हम इंसानों से डर लगता है। कहीं हम लोग विकास के नाम पर या अपने स्वार्थ के कारण अथवा आधुनिकता के नाम पर इनकी नस्ल ही न समाप्त कर दें । हरिराम मीणा एक खत्म होती हुई नस्ल की आवाज़ बनकर अपनी कविता 'खत्म होती एक नस्ल' के माध्यम से उनके दुख-दर्द और आक्रोश को हम तक पहुँचा रहे हैं –

मगर

जिन्होंने हमें टापुओं में इधर-उधर खदेड़ा

वे इंसान हैं

और जो हमारी नस्ल को उजाड़ेंगे

वे इंसान होंगे ।[40]

आदिवासियों के अपनी जमीन से खदेड़े जाने, उससे दूर होने की पीड़ा को समकालीन आदिवासी कवि हरिराम मीणा ने अपनी एक और कविता 'संक्रान्तिकालीन अण्डमानी आदिवासी मनोदशा' में प्रस्तुत किया है। अपनी उक्त कविता में वे बताते हैं कि अपने जमीन से भगाए जाने पर एक आदिवासी की क्या मनोदशा होती है, उसकी हालत कैसी होती है। उसे कैसी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। हरिराम मीणा लिखते हैं -

भाग रहे हैं खोह और गुफाओं की ओर
खोज रहे हैं किसी चट्टान का आसरा
धँस रहे हैं
घने पेड़ों और झुरमुटों में
लहूलुहान और भौचक्के
बेदखल होते हुए
हमारी पुश्तैनी ज़मीनों से[41]

तरह-तरह के प्रपंच रचकर आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल कर विस्थापन और पलायन की पीड़ा भोगने के लिए मजबूर किया जा रहा है। उनकी अपनी पुश्तैनी जमीन किस प्रकार सरकारी कानूनों द्वारा हड़पी जा रही है और उन क़ानूनों के हिसाब से अब उन ज़मीनों के कोई और ही मालिक होंगे। और यह सब हो रहा है सभ्यता के नाम पर। इसे हरिराम मीणा अपनी एक और कविता 'अण्डमानी आदिवासियों को बेदखल होते देखकर' में इस तरह प्रस्तुत करते हैं-

सभ्यता के नाम पर

आखिर कर ही दिए जाओगे बेदखल

हजारों सालों की तुम्हारी पुश्तैनी भौम से

कोई और होंगे अब कानूनी हकदार

नारियल के इन दरख्तों के ।[42]

विस्थापित होते ही आदिवासियों के अस्तित्व, उनकी संस्कृति, भाषा, परंपरागत जीवन-शैली पर संकट के बादल मंडराने लगते हैं। उन्हें विस्थापित करने हेतु नई-नई नीतियाँ रची जा रही हैं। आदिवासियों को ऐसे छल-प्रपंचों से सचेत करने के प्रयास लगातार जारी हैं। अंडमान टापू पर आदिम युग से रहते चले आ रहे आदिवासियों को बेदखल किए जाने पर हरिराम मीणा गहरी चिंता प्रकट करते हुए लिखते हैं-

देखो! उन्होंने आखिर तुम्हें खदेड़ ही दिया

तुम्हारी जमीन से

तुम्हें नेस्तनाबूद करने के लिए

और तुम चुप हो !!![43]

सरकार की छद्म नीतियों को अब आदिवासी जान चुका है। अब वह चुप नहीं रहना चाहता । अब प्रेम के बदले हथियार उठाने के हालात बन गए हैं। आखिर कब तक सहन किया जाए । कहाँ तक विस्थापित हों । कब तक अपनी भाषा और संस्कृति को भूलते जाएँ । अंततः आक्रोश और हथियार ही सहारा बनते हैं । रविकुमार गोंड अपने आक्रोश की भाषा में लिखते हैं-

अब प्रेम की जगह

हथियारों ने ले ली है।

इनकी पीड़ा, इन पर हुए जुल्म

हमारी बेदखली का सबूत है।

सरकार की छद्म नीति,

कार्पोरेट जगत की राजनीति

दोनों ने मिलकर

हमें विस्थापित कर दिया खुद हमें हमारे ही

जल, जंगल, जमीन से ।

××××

और तो और

बहकाए-भटकाए जा रहे हैं

न जाने कितने देश के नौजवान

हो रहे हैं सब बेरोजगार

मिटा रहे हैं आदिवासियों की

भाषा-लिपि, संस्कृति समुदाय।[44]

आदिवासियों को अपनी जमीन से बेदखल कर बहुत आसानी से कह दिया जाता है कि उनका पुनर्वास होगा। किन्तु बात केवल पुनर्वास ही की तो नहीं है। पुनर्वास के साथ-साथ उनका

अपनी जमीन, पेड़-पौधे, जंगल, पशु- पक्षियों से जो सदियों का गहरा और आत्मिक नाता-रिश्ता जुड़ा होता है, उनका तो पुनर्वास नहीं किया जा सकता है। आदिवासी कोई खिलौने या बच्चे तो नहीं कि जब चाहा उठाकर दूसरी जगह भेज दिया या रख दिया। विस्थापन पर अपनी जमीन से दूर होने का दर्द एक आदिवासी ही बयान कर सकता है। जब वह विस्थापित होता है तो प्रकृति और जिंदगी के हर एक पहलू से विस्थापित होता है जिसे एकांत श्रीवास्तव ने अपनी कविता 'डूब' में इस तरह व्यक्त किया है -

तुम किस-किस चीज़ को पुनर्वास दोगे

छीन सको तो छीन लो

पके धान की खुशबू मेरी साँसों से

और दो उन्हें पुनर्वास

दो दीवाल में थापे गए

कंडे के सूखे हुए निशान को पुनर्वास

असंभव है पुनर्वास

पुरखों के पाँवों से बने हुए रास्ते का

सूख जाने पर भी वृक्ष को छोड़ते नहीं पक्षी

कैसे दोगे तुम उन्हें दूसरे वृक्षों पर पुनर्वास

झड़ गए फूल की सुगंध में

मंडराती हुई तितली को कैसे दोगे पुनर्वास [45]

सरकार आदिवासियों की जमीन लेने के बदले उनसे तरह-तरह के वायदे करती है कि मुआवजा मिलेगा, पुनर्वास होगा। किंतु जैसे ही आदिवासी विस्थापित होते हैं, सारे के सारे वायदे झूठे साबित होते हैं। किए गए वादे केवल सरकारी कागजों में धरे के धरे रह जाते हैं। इस तरह आदिवासियों को ठगा जाता है। राष्ट्र के विकास के नाम पर आदिवासी अंधेरे कुएं में धकेले जा रहे हैं। आदिवासी ऐसी आधुनिकतावादी और विकासवादी नीतियों को नकारता है जो उन्हें ध्वस्त करने पर तुली हुई हो । वह इन साजिशों के प्रति आवाज़ उठाता हुआ कहता है-

कैसी यह नीति विकास की
पाताल की ओर ले जाती हुई
खारिज करो विश्व बैंक को
ऋण को, विकास-नीति को
जनहित में परिवर्तन जिसे स्वीकार नहीं
तुम दे नहीं सकते मुआवजा
दे नहीं सकते पुनर्वास
तो बंद करो विस्थापन
विकास है यह आधुनिक
या विनाश आदिवासियों का [46]

सदियों से आदिवासी परिवार जिस जमीन से जुड़े रहे हैं, आज वहाँ से विस्थापित होकर मजबूरन पलायन कर रहे हैं। यह समुदाय लगातार इस दर्द को झेलता रहता है। सरकार की

जल परियोजनाओं, उद्योगों तथा सड़क निर्माण में आदिवासियों की ही जमीनें छीनी जा रही हैं। मजबूरन लोग शहरों की ओर उदास मन के साथ पलायन कर रहे हैं। वे ऐसी जगह जा रहे हैं जहाँ का हवा-पानी, रीति-रिवाज, भाषा-संस्कृति सब कुछ अलग है। अनुज लुगुन ने अपनी कविता 'शहर के दोस्त के नाम पत्र' में पलायन करते आदिवासियों को लेकर निम्नलिखित शब्दों में चिंता व्यक्त की है -

कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा
उससे पहले नदी गई
अब खबर फैल रही है कि
मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है,
शहर में मेरे लोग तुमसे मिले
तो उनका ख्याल जरुर रखना
यहाँ से जाते हुए
उनकी आँखों में मैंने नमी देखी थी
और हाँ,
उन्हें शहर का रीति-रिवाज भी तो नहीं आता [47]

अपनी जमीन से आदिवासियों के विस्थापन से पलायन की समस्या का जन्म हुआ। पलायन के अन्य कई कारण भी हैं जिनके चलते आदिवासी अपने जीवन की आधारभूमि से दूर होते हैं। जिन इलाकों में यह समुदाय गुजर बसर करता है वहाँ रोजगार की कमी एक बड़ी समस्या है।

जंगलों में उनका प्रवेश निषेध कर दिया गया है। बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि समस्याओं से तो वे पहले ही जूझ रहे थे। जब बात पेट भरने की आती है तो शहरों की ओर काम की तलाश में उन्हें जाना पड़ता है। कैसी कठिनाइयों का सामना उन्हें करना पड़ता है। भोगला सोरेन इसी दर्द को अपनी कविता में बेहद मार्मिक शब्दों में चित्रित करते हैं -

खोज लेना मुझे हजारों की भीड़ में

स्टेशन के पास फुटपाथ पर

पत्ता दातुन बेचते हुए

मिल जाएंगे हम।

देख लेना मुझे चौक चौराहे पर

दिहाड़ी मजदूरों के साथ

पेट के लिए काम ढूँढते हुए

मिल जाएंगे हम।

खोज लेना मुझे किसी के खेत में

मिट्टी काटते हुए –

किसी पहाड़ में पत्थर तोड़ने हुए

मिल जाएंगे हम ।

खोज लेना महानगरों में

किसी के घर में बर्तन ढोते हुए

खोज लेना मुझे

स्टेशन के पास

जहाँ भिखमंगे रात गुजारते हों

लावारिस लाशों के बीच [48]

आदिवासी व्यक्ति अपनी जमीन पर खेती कर अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करता है। लेकिन उस स्थिति में जबकि उसकी जमीन, उसका खेत सरकार अपने कब्जे में कर लेती है या ठेकेदारों के हवाले कर देती है, तब बेसहारा हो चुके आदिवासियों के लिए रोजी-रोटी कमाने की तलाश में गाँव छोडने के सिवा और कोई रास्ता नहीं बचता। अक्सर राष्ट्र के विकास की बात की जाती है किंतु इस विकास के लिए बलिदान केवल आदिवासियों को ही देना पड़ा है। मित्रेश्वर अग्निमित्र इस दर्द को अपनी कविता में उजागर करते हैं-

छिन गए है खेत मेरे गाँव से

रोटी ढूँढने निकले हैं सभी, सूना कर सारे आंगन

क्षत-विक्षत नाच-गान, हाट-बाज़ार-मेले

भारी चोट खाए बैठे हैं मादल-बांसुरी

आओ सूरज आओ चाँद

आती हुई आवाजों से डर बढ़ रहा है

सुना है, हमारी तरक्की के लिए

बहुत जरूरी है हमारा, हमारे गाँव से निकलना [49]

आदिवासियों के भोलेपन और शिक्षा की उनकी कमी का गैर-आदिवासियों ने सदा ही लाभ उठाया। शहरों के विकास और उनकी चमक-धमक के प्रलोभन में आकर आदिवासी शहरों की ओर जाने लगे । उन्हें लगा की शायद शहरों में भविष्य उज्जवल होगा? लेकिन बाद में उन्हें पता चलता है कि वे तो ठगे गए हैं। उनके गाँव छोड़ने के पश्चात सारे वन नष्ट किए जा चुके होते हैं, यहाँ तक कि अपने पशुओं तक को चराने की जगह नहीं बची होती है। असम के कार्बी आदिवासी कवि वेलसिंग हांसे इन गैर- आदिवासियों की साजिशों का पर्दाफाश करते हुए कहते हैं -

"उन्होंने कहा - "जंगल छोड़ो, शहर में आओ"
आज्ञा मान निर्विवाद और हम चल पड़े
दिलों में अरमान और महत्वाकांक्षा की धुन में
यशस्वी कल की मदहोशी को भर आँखों में
हम चल पड़े पीछे-पीछे जब तक
वन बचे नहीं अपने ही पशु-चारे के लिए।" [50]

झारखंड राज्य खनिज संपदाओं से भरा पड़ा है। ठेकेदारों और कंपनियों की नजरें कोयले, लोहे और अभ्रक जैसी खनिज संपदाओं पर लगी है। इन संपदाओं को हड़पने के लिए आदिवासियों को वहाँ से हटाने के लिए तरह-तरह के प्रयास किए जा रहे हैं जिनमें वे सफल भी हो रहे हैं। परिणामस्वरूप वहाँ के आदिवासी बेघर हो चुके हैं। उनके पास पलायन के सिवा और कोई

रास्ता भी नहीं बचा । बस अपने दर्द को मन में रखे अपने घर को ही याद करते हैं। आशुतोष कुमार झा अपनी कविता में इस दर्द को बयां करते हैं-

"कोयले, लोहे और अभ्रक

की विस्थापित संताने

पूछने लगी हैं

अपने घर का पता।" [51]

आदिवासियों का विस्थापन, पलायन एक जटिल समस्या है। आदिवासियों के विस्थापन और अस्तित्व की समस्याओं पर कई कविताएं लिखी गई हैं। औपनिवेशिक काल से अब तक यह समस्या बनी हुई है। उनकी अपनी जमीन नहीं बची, घर नहीं है। बस देश भर में यहाँ से वहाँ भटकते रह गए हैं। निर्मला पुतुल भी इसी संदर्भ में लिखती हैं -

"धरती के इस छोर से उस छोर तक

मुट्ठी भर सवाल लिए मैं

दौड़ती-हांफती-भागती

तलाश रही हूँ सदियों से निरंतर

अपनी जमीन, अपना घर

अपने होने का अर्थ!" [52]

आदिवासी अब विकास के नाम से डरने लगे हैं। समझ गए हैं विकास का मतलब उनके गाँव का उजड़ना है। विस्थापन के पश्चात उनका पुनर्वास अपने गाँव से बहुत दूर ऐसे इलाके में किया जा रहा है जिससे वे पूरी तरह अनजान हैं। तथाकथित मुख्यधारा के सपने दिखाकर छले जा रहे आदिवासी अब अपने साथ रची जा रही साज़िशों के खिलाफ आवाज़ उठा रहे हैं । इन साजिशों के खिलाफ निर्मला पुतुल अपनी कविता में तथाकथित मुख्यधारा में रहने वालों के सामने बेधड़क लिखती हैं –

"अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़कर कल-कारखाने बनाना है
तालाबों को भोथकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियाँ बसानी हैं
और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए
सोचना पड़ेगा, अपने झोपड़ी के बदले
तुम्हारा आवास लेने से पहले" [53]

खुद के लूटे जाने और छले जाने सहित पलायन का दर्द आदिवासी झेलते आए हैं। जब अपनी धरती ही उजड़ जाए तो बचता कुछ नहीं। रह जाती हैं केवल वे यादें जो उनके जंगल-जमीन से

जुड़ी होती हैं । और यादें दर्द देती हैं। इसी दर्द को ग्रेस कुजूर अपनी कविता में दिखाती हैं और तथाकथित मुख्यधारा को संबोधित करते हुए कहती हैं कि देखो, हमने अपने तीर को कलम का रूप दे दिया है और लिख रहे हैं तुम्हारे खिलाफ, तुम्हारे करतूतों के खिलाफ । वह कहती हैं -

"वे लूटने- लुटाने आए

हम गए परदेश

धरती उजड़ी जंगल उजड़े

रह गया क्या शेष?

झाड़ियाँ हो गई कमान सब बिरवे तीर

देखना बाकी है कलम को तीर होने दो" [54]

आदिवासियों का जहां वास है, उनका अधिकार है कि वहाँ उन्हें अन्य सभी सरकारी सुविधाएं मिले, लेकिन वे उस जगह सरकारी सुविधाओं से वंचित है। ऐसी स्थिति में उन्हें रोजी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर रुख करना पड़ता है। बाहरी और भिन्न संस्कृति वाले लोगों के बीच स्वयं को ले जाने और उनके हाथों प्रताड़ित होने के लिए ये मजबूर हैं। भुवन लाल सोरी 'उजाले की तलाश में' शीर्षक अपनी कविता में आदिवासियों के पलायन के दर्द को दिखाते हुए लिखते हैं -

"गुंबदनुमा पहाड़ियों के बीच से

निकलते लोग

उजाले की तलाश में

चलते कतारबद्ध धीरे-धीरे

आ रहे थे शहर की ओर" [55]

आदिवासियों की पहचान उनकी सामूहिकता से भी की जाती है। ये अपने जंगल-जमीन में अपनी संस्कृति एवं भाषा तथा अपनी पारंपरिक जीवन शैली को जीवित रखते हुए समूह में जीते हैं। लाखों की तादाद में आदिवासी अपनी जमीन से विस्थापित होते आए हैं। आज भी इनको विस्थापित करने के लिए प्रशासन, ठेकेदार या अन्य गैर- आदिवासियों द्वारा तरह-तरह के हथकंडे अपनाए जा रहे हैं। आदिवासियों के विस्थापन में अपना हित देखने वाले ये लोग अच्छी तरह जानते हैं कि यदि कोई आदिवासी सहज रूप से अपनी जमीन नहीं छोड़ते हैं, तो उनके साथ क्या करना चाहिए। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ये लोग आदिवासियों से ज्यादती से पेश आते हैं । इन्हें इनके स्थानों से हटाने के लिए बंदूक का डर दिखाया जाता है । महादेव टोप्पों आदिवासियों पर हो रहे इसी अत्याचार को अपनी कविता में सबके सामने लाते हैं। वे कहते हैं -

"सम्मान के साथ चाहता हूँ जीना यदि

अपने गाँव में, तब भी

डैम, नहर, सड़क, कारखाने, खदान के नाम

हटाया जाता हूँ जबरन राइफल की नोक पर" [56]

आदिवासियों को अपने पक्ष में करने के लिए तमाम तरह के प्रलोभन दिए जाते हैं और इनका विश्वास जीतने का प्रयास किया जाता है । वे आदिवासियों के प्रति सहानुभूति जताते हैं। अंत

में एक कोरे कागज़ पर इनके अंगूठे का निशान लेकर इनके खिलाफ साजिश रचते हैं । इन आदिवासियों की जमीनें छीन ली जाती हैं, और इन्हें अपने हालात पर छोड़ दिया जाता है दर-दर की ठोकरें खाने के लिए। महादेव टोप्पो कथित मुख्यधारा के चालबाज़ों की सच्चाई सामने लाते हुए कहते हैं-

“आखिर जबरन

अपने खेतों से

होने पर बेदखल

हुआ हमें ज्ञात

गलती है कहाँ?

न्यायालय के कठघरे में

हमें बताया गया, समझाया गया” [57]

आदिवासियों को ये विश्वास दिलाया जाता है कि जमीन, खेत के बदले उन्हें बहुत कुछ मिलेगा। देश विकास करेगा। देश के विकास के साथ आदिवासियों के विकास के भी वायदे किए जाते हैं। किंतु आदिवासी सब कुछ खोने के बाद ही समझ पाता है कि आबाद होने के बजाय वे तो बर्बाद हो गए। महादेव टोप्पो अपनी दूसरी कविता में कहते हैं -

वे कहते हैं

सहानुभूति दिखाते

राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया में

जंगल के लोग

पहाड़ के लोग

उजड़ रहे हैं

यह नहीं बताते कि

इस प्रक्रिया में

वे आबाद हो रहे हैं।[58]

अपने पहाड़, नदी, जंगल से दूर होने का दर्द चन्द्र मुंडा की 'असम के भाइयों के लिए' कविता में बड़ी मार्मिकता के साथ उभर कर आया है। कविता में आदिवासियों के साथ-साथ जंगल एवं नदी के जीव-जंतु भी पलायन का दंश झेल रहे हैं। जिस प्रकार आदिवासियों से उनकी जमीन, घर छिन गए उसी प्रकार पशु-पक्षियों से भी पहाड़, तालाब आदि छिन गए हैं। कवि कहता है -

पहाड़ तो जला दिया गया है पंडुक!

हम दोनों कहाँ अब चारा पानी ढूँढेंगे?

बावली तो तोड़ दिया है बुद्धू मछली!

हम दोनों कहाँ तैरकर अब गुजर-बसर करेंगे?[59]

अंत में उपर्युक्त कविताओं से ये निष्कर्ष निकलता है कि वैश्वीकरण के इस दौर में आदिवासियों के संसाधनों का, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है। आदिवासियों के खुशहाल जीवन में स्वार्थी दिकुओं, शोषकों, पूँजीपतियों, ठेकेदारों तथा प्रशासनिक वर्ग ने जहर घोल दिया है । कई राजनीतिक पार्टियाँ और सरकारें इनके संसाधनों को लूट रही हैं। संसाधनों पर कब्जे के

लिए कई दमनकारी नीतियाँ सरकार द्वारा बनायी जा रही हैं। कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, ठेकेदार, सरकारी अधिकारी आते हैं और उन्हें कई प्रकार के लुभावने सपने दिखाकर उन्हें छलते हैं। इस गंभीर समस्या के खिलाफ आदिवासी अपनी कविताओं में आवाज़ बुलंद कर रहे हैं। इस समस्या से निजात पाने के लिए छटपटा रहे हैं। प्रकृति प्रेमी कवियों में चिंता दिखाई पड़ रही है। पर्यावरण दूषित होता देख ये दुखी होते हुए आक्रोश प्रकट करते हैं । पर्यावरण शुद्धि और संसाधन संरक्षण के लिए नई-नई योजनाएँ तो बनती हैं किंतु आदिवासियों के हित में इन्हें कभी नहीं लागू किया जाता ।

जल, जंगल, जमीन से कटकर इनकी संस्कृति खतरे में पड़ जाती है। ये कविताएं हमें आदिवासी सांस्कृतिक जीवन के कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करने के लिए बाध्य करती हैं। बाहरी घुसपैठ से उनकी संस्कृति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा है जिससे उनकी भाषा, वेशभूषा, नृत्य-गीत, रीति-रीवाज, धर्म-प्रथाएँ बदल रही हैं। कविताओं में संस्कृति लुप्त होने की चिंता और भय दोनों दिखाई पड़ते हैं। आदिवासी कविताओं में संस्कृति संरक्षण के सवाल उठ रहे हैं जो पाठकों को सोचने पर विवश करते हैं। आदिवासियों की लोककला खत्म होने के कगार पर है। इनकी मूल पहचान उनकी संस्कृति से ही जुड़ी है। संस्कृति विलुप्त होने से उनकी अस्मिता खतरे में पड़ रही है।

बाहरी घुसपैठ से संसाधनों का दोहन हो रहा हैं, संस्कृति प्रभावित हो रही है। संसाधन विहीन आदिवासी समाज एक सस्ता मजदूर बन जाता है। आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण आदिवासी अपने जल-जंगल और जमीन से हाथ धो बैठते हैं और अपनी संस्कृति एवं भाषा से

दूर होते जाते हैं। आदिवासी समुदाय पलायन, विस्थापन जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। भेट करने के लिए उनके पास दूसरा उपाय नहीं बचता। यदि वह विद्रोह करता है तो नक्सलवादी करार दिया जाता है और जेल पहुँचा दिया जाता है। मुक्त बाज़ार और व्यापार के नाम पर आदिवासियों के जीवन को लगातार दाँव पर लगाया जा रहा है ।

आदिवासी कविताओं में प्रतिरोध की भावना है जो इन शोषकों के खिलाफ, समस्याओं के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष करने की प्रेरणा देती है, साथ ही मुक्ति की कामना करती दिखती हैं। ये कविताएं क्रांतिदर्शी है जिसका मुख्य स्वर मुक्ति का है।

संदर्भ सूची

1. आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, सं. विशाल शर्मा, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2003 पृ. 187
2. आदिवासी अस्मिता का संकट, रमणिका गुप्ता,सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2014, पृ. 54
3. आदिवासी: शौर्य एवं विद्रोह, रमणिका गुप्ता, सुरभि प्रकाशन,दिल्ली, पहला संस्करण,2015,पृ. 13
4. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण,2014, पृ. 26

5. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण,2008, पृ. 14,16

6. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण,2014, पृ. 46

7. थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, रणेन्द्र, शिल्पायन,प्रकाशन,दिल्ली, 2010, पृ. 87

8. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण,2014, पृ. 110

9. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 , पृ. 72

10. ताबेन जोम, जमीन का हिस्सा, वासवी, आधार प्रकाशन, पंचकूला,पहला संस्करण, 2003, पृ. 51

11. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 34

12. वही, पृ. 36

13. वही, पृ. 43

14. वही, पृ. 43

15. वही, पृ. 90

16. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ. 53

17. आदिवासी अस्मिता का संकट, रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2014, पृ. 19

18. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 14

19. डेहरी, मुन्ना साह, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2014, पृ. 18

20. वही, पृ. 35

21. संशयात्मा, ज्ञानेन्द्रपति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2004, पहली आवृत्ती, 2010 , पृ. 21

22. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 ,पृ. 93-94

23. वही, पृ. 77

24. आदिवासी कौन, सं. रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण,2016,पृ. 17

25. वही, पृ. 17

26. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 , पृ. 79

27. आदिवासी लेखन, एक उभरती चेतना, रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण,2013, पृ. 25

28. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण,2014, पृ. 21-22

29. वही, पृ. 34

30. वही, पृ. 49

31. वही, पृ. 50

32. आदिवासी अस्मिता का संकट, रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2014, पृ. 23

33. थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, रणेन्द्र, शिल्पायन,प्रकाशन,दिल्ली, 2010, पृ. 23

34. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 26

35. आदिवासी विकास से विस्थापन, रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2018, पृ. 11

36. इस्पातिका, सं.अविनाश कुमार सिंह, वर्ष-2, जन-जून 2012, अंक-1, जमशेदपुर, पृ. 133

37.आदिवासी विकास से विस्थापन, रमणिका गुप्ता, , राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2018 पृ. 104

38. लोकप्रिय आदिवासी कविताएं,सं.वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली,2020, पृ. 147-148

39. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण 2008, पृ. 14-15-16

40. वही, पृ. 33

41. वही, पृ. 34

42. वही, पृ. 35

43. वही, पृ.44

44. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 36-37

45. धरती अधखिला फूल, एकांत श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013 ,पृ. 125

46. वही, पृ. 126

47. इस्पातिका, सं.अविनाश कुमार सिंह, वर्ष-2, जन-जून2012, अंक-1,जमशेदपुर, पृ. 32

48. वही, पृ.26

49. वही, पृ. 30

50. पक्षधर, सं. विनोद तिवारी, वर्ष-12, जुलाई-दिसम्बर, 2018, जन-जून, 2019, सन्युक्तांक-25,26, दिल्ली, पृ. 280

51. वही, पृ. 242

52. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 30

53. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 पृ. 42

54. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं.रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृति संस्करण,2014, पृ. 26

55. वही, पृ. 58

56. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 16-17

57. वही, पृ. 85

58. वही, पृ. 62

59. लोकप्रिय आदिवासी कविताएं, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 19

चतुर्थ - अध्याय

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न

(क) विवाह, परिवार और अर्थ स्वातंत्र्य का सवाल

(ख) स्त्री – मुक्ति की राहें

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न

साहित्य में स्त्री विमर्श स्थापित हो चुका है। स्त्री जीवन की समस्याओं, उनके संघर्षों को साहित्य की विविध विधाओं में अभिव्यक्त किया जा रहा है। इस दृष्टि से यह देखना रोचक होगा कि आदिवासी हिन्दी कविताओं में स्त्री से जुड़े सवालों की किस तरह से अभिव्यक्ति हुई है और समस्याओं से मुक्ति किस अवधारणा पर आदिवासी चिंतन कार्य कर रहा है। साहित्य में आदिवासियों पर लेखन आजादी के बाद ही होने लगा है। आदिवासी विमर्श की जहां तक बात है, वह तो और भी बाद में होना शुरू हुआ है, बल्कि कहना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी के आरंभ में। तत्पश्चात ही स्त्री मुक्ति के प्रश्न उभरने लगे थे। भारत के कई प्रदेशों में बसे इस समुदाय में सदियों से लोक कला और साहित्य की मौखिक परंपरा रही है। भाषा और लिपि का सही विकास न होने के कारण आदिवासी साहित्य बहुत ही कम मिलता है। आज आदिवासी रचनाकारों के साथ-साथ गैर-आदिवासी रचनाकार भी आगे बढ़कर आदिवासी जीवन और इनसे जुड़े विषयों पर लिख रहे हैं।

आदिवासी साहित्य आज कई विधाओं में उपलब्ध है। अन्य विधाओं की तुलना में कविता आदिवासी साहित्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधा रही है। इन कविताओं में आदिवासी जीवन दर्शन, जीवन-शैली, लोक कला, संस्कृति, उनकी समस्याएँ, डर, आक्रोश और अपने तथा सभ्य समाज से ताल्लुक रखने वाले कई महत्त्वपूर्ण सवाल उभर कर आए हैं।

स्त्री समस्या को संवेदनशील नजरिये से देखने वाले कई महत्त्वपूर्ण और क्रांतिकारी रचनाकार उभर कर सामने आए हैं जो भारतीय समाज-व्यवस्था में हो रहे स्त्री शोषण की तीव्र और कटु आलोचना कर अपने साहित्य के माध्यम से लोगों में चेतना पैदा करने का कार्य कर रहे हैं। अपनी ऊर्जा और सामर्थ्य के बल पर आदिवासी स्त्री आज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। आदिवासी स्त्री के यथार्थ को समाज के सामने लाकर लोगों को जागरूक करने का कार्य वे लेखन के जरिए स्वयं कर रही हैं।

स्त्री किसी भी समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है, बल्कि कहना चाहिए कि वह समाज की रीढ़ है। आज भी हमारा समाज स्त्रियों की स्वतंत्र सोच, उनके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारता नहीं है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व के जुड़े सवालों के जवाब आज प्रत्येक स्त्री ढूंढ रही है। भारत के संविधान में स्त्री एवं पुरुष को समान अधिकार तो मिले हैं, किंतु महिलाएँ आज भी अधिकारों की प्राप्ति के मामले में पुरुषों से बहुत पीछे हैं। वह समाज ही नहीं, अपने परिवार में भी किसी न किसी प्रकार अधिकारविहीन और उत्पीड़ित है। डॉ. अखिलेन्द्र प्रताप सिंह लिखते हैं कि "स्त्री फिर चाहे वह सवर्ण हो, दलित हो या आदिवासी सभी को अपनी अस्मिता दूसरों से मांगनी पड़ रही है। साहित्य के क्षेत्र में भूत हो या वर्तमान अथवा भविष्य उत्पीड़न की गाथा हमेशा बनी रहती है। भारत देश में दलित, स्त्री, आदिवासी उत्पीड़न की इस त्रासदी से हर दौर में गुजरता है। अतीत जहाँ भुक्त भोगी पीड़ाओं से गुजरता है तो वर्तमान आशादायी भविष्य की ओर इशारा करता है। हर युग में पीड़ा या उत्पीड़न का स्वरूप बदल जाता है लेकिन पीड़ा तो पीड़ा ही रह जाती है। इन सब परिस्थितियों में साहित्य हमारे सामाजिक मूल्यों को उद्घाटित

करता है। इसका कारण भी है क्योंकि स्त्री के साथ समस्या हर युग में पैदा की जाती रही है और पुरुष मानसिकता ने इसे भरपूर रूप से नीचे धकेलने की कोशिश की है।"[1]

आदिवासी स्त्री की बात करें तो इसे दोहरे शोषण की प्रक्रिया से गुजरना पड़ रहा है। एक तो वह अपने समुदाय के भीतर ही उत्पीड़ित है साथ ही बाहरी समाज के शोषण का भी उसे सामना करना पड़ता है। दूसरा, विस्थापन भी उसकी जिंदगी को कई तरह से पीड़ित और प्रभावित करता है। वह अपने अस्तित्व व अस्मिता की लड़ाई लड़ रही है। आदिवासी कविताओं में नारी का जीवन-संघर्ष, उसके अस्तित्व की समस्या, शिक्षा, बलात्कार, गैर-आदिवासी समाज का उनके प्रति बर्ताव, उनके स्वयं के समाज की कुप्रथाएँ तथा विस्थापन जैसे विषय बखूबी चित्रित हुए हैं। जंगलों में, गाँवों में बसी निरक्षर आदिवासी स्त्री कभी अपने समाज की कुप्रथाओं की त्रासदी झेलती है तो कभी ठेकेदारों, पूँजीपतियों द्वारा प्रताड़ित होती है या फिर विस्थापन की त्रासदी सहती है। वह अपने समाज के भीतर कई समस्याओं से संघर्ष तो करती ही है पर जो सभ्य समाज नारी को 'माँ' का दर्जा देता है, वह समाज भी स्त्री को दूसरी नजरों से ही देखता आ रहा है। तथाकथित सभ्य समाज स्त्रियों को दबाता ही आया है। उसके विचारों को कभी प्राथमिकता नहीं दी जाती, घर हो या बाहर, स्त्री पर अत्याचार होना जारी ही है। बलात्कार जैसी घटनाएँ सदियों से आज तक होती आ रही हैं। देश के कोने-कोने में बलात्कार के खिलाफ लोग आवाज़ तो उठाते आ रहे हैं, इसके बावजूद नारियों के साथ ऐसी घटनाएँ घटती ही जा रही हैं। ऐसी महिलाओं में अधिकतर या तो दलित या फिर आदिवासी महिलाएँ ही हैं।

हालांकि सामाजिक व्यवस्था में अधिकार मिलने के मामलें में पूर्वोत्तर के कई राज्यों की आदिवासी महिलाओं की स्थिति कुछ हद तक ठीक है। जैसे- मिज़ोरम, नागालैंड, मेघालय जैसे राज्यों की आदिवासी स्त्री कई मामलों में स्वतंत्र है। यहाँ की स्त्रियों को अपना वर चुनने का पूर्ण अधिकार है। लिंग भेद की समस्याओं का सामना उन्हें नहीं करना पड़ता। मेघालय तो पूर्ण रूप से मातृसत्तात्मक राज्य है जहाँ पुरुष स्त्री के घर विवाह कर लाया जाता है। परिवार का संचालन तथा निर्णय लेने जैसे अधिकार स्त्री को ही मिले हुए हैं। अन्य पूर्वोत्तर राज्यों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही प्रचलित है। यहाँ के आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति भारत के अन्य राज्यों की तुलना में संतोषजनक है। हालांकि स्त्री होने का दर्द इन्हें भी झेलना पड़ता है। बलात्कार जैसी घटनाओं से यह समाज भी सुरक्षित नहीं है। यहाँ की महिलाएं भी विवाह पश्चात पति से प्रताड़ित हो रही हैं। स्त्री को पैरों तले दबाकर रखने की पुरुषों की मानसिकता यहाँ भी देखी जा सकती है।

आदिवासी स्त्रियों की स्थिति बहुत सी जगह मजबूत नहीं है। विकास के मामले में देखा जाए तो आदिवासी समुदाय शिक्षा, स्वास्थ्य, सालाना आय जैसे कई मापदंडों में अब भी बहुत पिछड़े हैं। परिणामस्वरूप सहज ही उन्हें शोषण का शिकार बना लिया जाता है। डायन जैसी कुप्रथाओं के चलते संथाल आदिवासी स्त्रियां अत्याचार का शिकार होती हैं। जहाँ वह हक या अधिकार की बात करती है तो डायन करार देकर मार दी जाती है। वासवी लिखती हैं - "संथाल आदिवासी जो कि भारत की दूसरी बड़ी आदिवासी जाति है, में डायन हत्या की वारदात सबसे अधिक होती है। इसका कारण यह है कि संथाल समाज में औरतों को भूमि और

कृषि कार्य संबंधी अधिकार ज्यादा हैं। हो और उरांव में भी डायन हत्या बड़ी संख्या में होती हैं। मुंडाओं में औरत को डायन बताकर प्रताड़ित करने और मार डालने की घटनाएँ नगण्य हैं। ऐसा इसलिए है कि जंगल पर और परंपरागत ग्राम सभाओं में औरतों की कोई निर्णायक भागीदारी ही नहीं है और इस कारण पुरुषों को इससे कोई परेशानी नहीं है। यह इस तथ्य को इंगित करता है कि औरतें इस समाज में पुरुषों के अधीन दबी हुई हैं। वे उनके मातहत हैं। लेकिन जिन समाजों में औरतें पुरुषों के समान अधिकार हासिल करने की कोशिश करती हैं वहाँ उन्हें यातना झेलनी पड़ती हैं।"[2]

वासवी के उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि डायन जैसे समस्याएँ पुरुषों द्वारा ही पैदा की गई हैं। पुरुष कभी नहीं चाहता कि एक स्त्री उससे ऊपर उठे और अपने अधिकार की बात करे।

बेरोजगारी, गरीबी, लाचारी, मजबूरी या फिर पुरुषों को विदेशी शराब की लत लगने आदि कारणों से भी आदिवासी महिलाओं को बहुत सी यातनाएं झेलनी पड़ रही हैं। उड़ीसा में तो यह स्थिति है कि भूख और लाचारी से मजबूर होकर अथवा आर्थिक तंगी के चलते कई आदिवासी अपनी औरतों को बेच देते हैं या गिरवी तक रख देते हैं। ऐसा कई बार विदेशी शराब के प्रलोभन में किया जाता है।

आज भी आदिवासियों में बाल विवाह, घरेलू हिंसा तथा स्त्रियों को पैतृक संपत्ति के अधिकार से वंचित रखे जाने के मामले सामने आ रहे हैं। जंगल के ठेकेदार इन औरतों का शोषण करते हैं। आदिवासी महिलाओं की सबसे बड़ी खूबी ये है कि वे बहुत मेहनती होती हैं बल्कि कहना

चाहिए कि वे पुरुषों की तुलना में अधिक श्रम करती हैं और घर चलाने में पुरुषों से किसी भी दृष्टि से पीछे नहीं हैं। सरकार आदिवासियों के रोजगार की व्यवस्थाएँ तो कर रही है किंतु ये पूरी तरह सफल भी नहीं हो पा रही है। सरकार ने ग्रामीणों के लिए मनरेगा जैसी नीति लागू तो की है ताकि ग्रामीणों को उनके आस-पास, विशेषकर महिलाओं को अपने इलाके में ही काम मिले। मनरेगा में काम की व्यवस्था किए जाने के साथ ही सरकार ने सुअर पालन, मुर्गी पालन, मछली पालन के क्षेत्र में ग्रामीणों के लिए रोजगार पैदा किए हैं। कृषि संबंधी कार्यों से भी ग्रामीणों को जोड़ा गया है। किन्तु सरकार की ऐसी योजनाएँ भी इतनी गति नहीं पकड़ पाई कि ग्रामीणों या आदिवासी महिलाओं को कुछ राहत मिल पाए। कई सरकारी अधिकारियों में तो मनरेगा लागू करने के प्रति रुचि ही नहीं दिखाई देती। जहां कहीं शुरू भी हुई तो बहुत ही सुस्ती और कछुआ चाल के साथ। आदिवासी सीधे और सरल स्वभाव के होते हैं, ठीक-ठाक आर्थिक स्थिति के अभाव में वे सहज ही दलालों के झाँसे में फंस जाते हैं। आदिवासी महिलाएँ, विशेषकर युवतियाँ एवं बच्चियाँ इन दलालों द्वारा ठगी जाती हैं। सुनहरे भविष्य के सपने दिखाकर तथा ज्यादा पैसे कमाने का प्रलोभन देकर आदिवासी बच्चियों को काम दिलाने के लिए शहर ले जाया जाता है। वहाँ उन्हें या तो किसी के घर में कामकाज के लिए कम मजदूरी पर रखा जा रहा है या फिर इनका देह-व्यापार किया जाता है। ये मानव व्यापार की शिकार हो जाती हैं। इन्हें छलकर, लोभ देकर या फिर तरह-तरह के प्रपंच रचकर ऐसी त्रासदी झेलने के लिए मजबूर किया जा रहा है। निर्मला पुतुल एक आदिवासी स्त्री की सच्चाई सामने लाती हुई कहती हैं - "ऐसी स्थिति में आदिवासी महिला सहित अन्य मेहनतकश महिलाओं के सामने

अपनी संतानों के लिए दो वक्त का भोजन खिलाने की समस्या उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप वे आज भी दर-दर की ठोकरें खा रही हैं और बेघर हैं। पेट की आग बुझाने के लिए बड़ी संख्या में महिलाओं एवं नवयुवतियों का पलायन हो रहा है। जीने के लिए अन्य राज्यों में जाकर सेठ-साहूकारों एवं बड़े-बड़े अफसरों के घरों में नारकीय यातनाएं झेल रही हैं। झारखंड के विभिन्न जिलों से आदिवासी युवतियों तथा कम उम्र की लड़कियों की खरीद-फरोख्त धड़ल्ले से हो रही है। लाखों आदिवासी लड़कियाँ दिल्ली, मुंबई, कोलकत्ता, पुणे, गोवा, बंगलुरु, अहमदाबाद में घरेलू कामगार के तौर पर काम कर रही हैं या विदेशों में (अरब, सिंगापुर) में विदेशियों की हवस का शिकार बन रही हैं।"[3]

आदिवासी महिलाओं की आर्थिक स्थिति खराब होने और संसाधनों की कमी के कारण पलायन कर रही महिलाओं की स्थिति पर वासवी कहती हैं- "समाजशास्त्री मानते हैं कि आदिवासी लड़कियों के पलायन का मामला पूरे झारखंड की आर्थिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में आए बिखराव से जुड़ा है। कृषि और जंगल आधारित अर्थव्यवस्था और आजीविका की बुनियाद के हिल जाने से तरह-तरह की समस्याएँ उभरने लगी हैं। पानी और पूंजी के अभाव में खेतों के उत्पादन में गिरावट आई है और जंगल से औरतों की दूरी बढ़ने से उनके जीवन की आत्मनिर्भरता प्रभावित हुई है। वे आजीविका और आत्मसम्मान खोती जा रहीं हैं। रोजगार की तलाश में महानगरों, ईंट-भट्ठों और खेतिहर मजदूरों के रूप में वे पलायन कर रही हैं। महानगरों में घरेलू कार्य के दौरान उनके आर्थिक और यौन शोषण के अनगिनत अव्यक्त किस्से हैं।"[4]

स्त्री को केवल देह के साथ जोड़कर देखा जाता है। पुरुषों की सोच में कोई बदलाव नहीं आया है। नारी गाँव की हो या शहर की, पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़, नौकरी करने वाली हो या घर पर रहने वाली, एक पुरुष हमेशा उस नारी को एक अलग ही नजर से देखता है मानो वह केवल देह हो और उसका इसके अलावा कोई अस्तित्व न हो। आदिवासी स्त्री अब पढ़-लिख रही है। वे अपने साथ किए जा रहे अन्याय, शोषण, छल आदि को खूब अच्छी तरह समझ रही हैं। वे जागरूक हो रही हैं और अपने समाज में उन पर हो रहे अत्याचार एवं बाहरी शोषण-उत्पीड़न पर डंके की चोट पर सवाल उठा रही हैं । आदिवासी स्त्रियों की स्थिति सुधारने और उनके अधिकारों के लिए आंदोलन हो रहे हैं किंतु दुख की बात है कि स्त्रियों की स्थिति अब भी वही की वही है। कोई बदलाव नहीं।

वैसे तो कहा जाता है आदिवासी स्त्री अपनी इच्छा से अपने लिए वर ढूंढ सकती है पर आदिवासी कविताओं को पढ़ने पर यह स्वतन्त्रता बिल्कुल भी नहीं दिखती। उसका विवाह वहीं होता है जहाँ उसके परिवारजन करवाते हैं। आर्थिक तंगी से गुजरते हुए परिवार को वह संभालती है। परिवार में उसकी मर्जी या उसके विचार मायने नहीं रखते। कमाने के लिए वह मेहनत करती है किंतु अपनी मेहनत की उचित धन-राशि से वह वंचित ही रहती हैं। यह सही है कि आदिवासी दर्शन में स्त्री-पुरुष एक समान है। वह अपने समाज में उतनी ही स्वतंत्र है जितना की पुरुष। उनके लिए सब काम, सब अधिकार एक समान हैं। जब तक बाहरी घुसपैठ से आदिवासी सुरक्षित थे तब तक ये खुश थे। किंतु बाहरी तथाकथित सभ्य समाज के संपर्क में

आते ही आज उनका जीवन-दर्शन, जीवन-शैली सब बदल रहे हैं। आज आदिवासी स्त्री इन तमाम समस्याओं से कितनी मुक्त हैं, यह सोचने का विषय है।

प्रस्तुत अध्याय में इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को दो उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम उप-अध्याय में विवाह, परिवार और अर्थ स्वातंत्र्य के सवालों पर चर्चा की गई है तो दूसरे उप-अध्याय में स्त्री-मुक्ति की राहों पर विचार।

(क) विवाह, परिवार और अर्थ स्वातंत्र्य का सवाल

आदिवासी कविताओं के माध्यम से उन शोषित महिलाओं की आत्मा की चीख-पुकार सुनाई देती है जो विवाह, परिवार और अर्थ स्वातंत्र्य संबंधित समस्याओं और उनसे उपजी यातनाओं से पीड़ित हैं। आदिवासी नारी अब इन समस्याओं से, अत्याचारों से मुक्ति चाहती है। वह अपने पर हो रहे अत्याचार, अपनी पीड़ा और दर्द को पूरे समाज के सामने प्रस्तुत कर रही है, साथ ही आक्रोश भी व्यक्त कर रही है। वह यह भी बता रही है कि आज तक कितना और क्या-क्या झेलती आई है। वह अपने ही समाज के भीतर जिस उत्पीड़न का सामना कर रही है, जिन कुरीतियों से वह प्रताड़ित है, उनके विरोध के साथ-साथ बाहरी समाज तथा अपने ही लोगो की बुरी नजरों एवं विचारों का भी विरोध कर रही है। वह इन समस्याओं को झेलते-झेलते थक चुकी है। समाज और परिवार में उसका जो स्थान है, उसकी जो स्थिति है उसे वह आज कविता के माध्यम से व्यक्त कर रही है।

निर्मला पुतुल झारखंड की प्रसिद्ध आदिवासी कवयित्री है। उनकी कविताएं अपने समाज की सच्चाई को बेहद करीब से महसूस कराती हैं। उनकी कविताओं में उनका अपना जिया-भोगा यथार्थ प्रमुख रूप से सामने आता है। वह अपनी कविता के माध्यम से एक आदिवासी स्त्री के विवाह, परिवार और अर्थ-स्वातंत्र्य से जुड़े संघर्षों को लेकर कई तरह के सवाल उठा रही है। उनकी कविताओं में आदिवासी स्त्री के प्रतिरोध का भी स्वर मिलता है। उन्होंने अपनी कविताओं में स्त्री से जुड़े व्यापक मुद्दों को उठाया है। उनकी कविताओं की आदिवासी स्त्रियाँ परिवार और समाज के सारे बंधन को तोड़ कर आज़ादी का जीवन चाहती हैं। एक पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति, उसके दर्जे से जुड़े सवाल उनकी कविता के केंद्र में हैं। निर्मला पुतुल की लड़ाई केवल मुख्यधारा के तथाकथित सभ्य समाज से नहीं है, बल्कि अपने समाज से भी है । पुरुष ने स्त्री को विवाह और समाज के नियम-बंधनों में बाँधकर उसके अधिकारों को छीना है। इन नियम-बंधनों ने स्त्री को केवल भोग की वस्तु बनाकर रख दिया है। वह अब भी शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना झेल रही है। निर्मला पुतुल अपने ही समाज के पुरुषों के खिलाफ आवाज़ उठाते हुए कहती हैं -

तन के भूगोल के परे
एक स्त्री के
मन की गाँठे खोल कर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास

××××

अगर नहीं!

तो फिर जानते क्या हो तुम

रसोई और बिस्तर के गणित से परे

एक स्त्री के बारे मे.....?[5]

आदिवासी समाज में जहाँ स्त्री कभी पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर चलती थी, जिस समाज में लिंग को लेकर कोई भेदभाव नहीं होता था आज उसी समाज में जब एक स्त्री विवाह कर अपने पति के घर जाती है तो वह पुरुषों के लिए केवल एक भोग की वस्तु बन कर रह जाती है। पुरुष ने कभी उसके मन के भीतर झाँककर देखने की कोशिश नहीं की। निर्मला पुतुल सवाल करती हैं -

क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए

एक तकिया

कि कहीं से थका-मंदा आया

और सिर टिका दिया।[6]

पुरुष तो अपने परिवार को छोड़कर दूर शहर कमाने चले जाते हैं और पीछे अपने परिवार को बेसहारा और असहाय छोड़ जाते हैं। विवाह के बंधन में बंधी पत्नी अपने बच्चों के साथ इंतज़ार करती रहती है कि उसका पति कमाकर आएगा ताकि हालात कुछ सुधर जाएं। गाँव वाले या

बाहरी दिकु उसे सताते रहते हैं। निर्मला पुतुल के शब्दों में एक आदिवासी स्त्री अपनी दयनीय हालात बताती हुई कहती है -

ढेपचा के बाबू

तुम तो सब कुछ छोड़-छाड़

चले गए कमाने कश्मीर

××××

कितना सुनाऊँ तुम्हें

क्या-क्या बताऊँ

तुम तो पल्ला छुड़ाकर भाग गये

सारा बोझ देकर मेरे माथे

मैं किस पर छोड़ जाऊँ सब कुछ

कहाँ भाग जाऊँ ?[7]

आदिवासी स्त्रियों के बारे में माना जाता है कि अपने लिए वर ढूँढने का उन्हें पूरा हक होता है । वह उसी से विवाह करती है जो उसे पसंद होता है। अधिकतर समाजों में लड़की के परिवार वाले ही उसके लिए वर का चयन करते हैं। आदिवासी नारी अब अपना हक खोती जा रही है। अब वह जान चुकी है पुरुषों की मंशा को । काहिल, निकम्मे, अनपढ़, शराबी पुरुषों की आदत वह जान चुकी है। अब वह खुलकर अपने पिता से कहती है कि मुझे कैसा वर चाहिए। निर्मला पुतुल की अगली कविता में एक लड़की अपने पिता से कहती है –

मत चुनना ऐसा वर

जो पोचई और हड़िया में डूबा रहता हो अकसर

काहिल-निकम्मा हो, माहिर हो मेले से लड़कियाँ उड़ा ले जाने में

ऐसा वर मत चुनना मेरी खातिर[8]

घर-गृहस्थी और परिवार के दबावों से अब आदिवासी स्त्रियाँ मुक्ति पाना चाहती हैं। एक स्त्री अपने पुरुष से प्रेम और विश्वास ही तो चाहती है। परंतु दुःख की बात है कि उसे प्रेम तो नहीं मिलता, बल्कि दुःख और वियोग ही मिलता है। निर्मला पुतुल की कविता में एक स्त्री के सपनों के टूटकर बिखर जाने का मार्मिक दर्द मिलता है। उसे अकेले छोड़ दिए जाने की पीड़ा मिलती है। उसे अब अपने पुरुष पर विश्वास नहीं रहा। न जाने कब, कहाँ वह अपनी स्त्री को छोड़ कर चला जाए। निर्मला पुतुल अपने समाज के पुरुषों की सच्चाई सामने लाती हैं और कहती हैं कि अब ऐसे पुरुषों के लिए इंतजार, प्रेम, विश्वास, आशाएँ हमें नहीं चाहिए -

बताओ दिल पर हाथ रखकर सच-सच

तुमने क्या-क्या बचाया अपने भीतर

संकट के इस दौर में..... ।

बचा सके मेरा विश्वास[9]

अपनी दूसरी कविता में निर्मला पुतुल फिर लिखती हैं –

तुम्हारे ये हाथ

जो उठते थे कभी मेरी हिफाजत के लिए

××××

पर अफसोस !

तुम्हारा यह हाथ

अब हाथ नहीं रह गया[10]

अपनी एक और कविता 'जमाने में और भी गम हैं मुहब्बत के सिवा' में निर्मला जी लिखती हैं –

माँगने लगो मुझसे

वो गमछी लूंगी और कहने लगो कुछ इस कदर

थोड़ा नहा धोकर तरोताजा हो जाऊँ ताकि

कुछ कर सकूँ नया, यह कहते हुए कि

जमाने में और भी गम हैं मुहब्बत के सिवा..... ।[11]

घर-गृहस्थी के दबाव में पड़ी एक आदिवासी स्त्री के जीवन में केवल दौड़-धूप ही लिखी है। वह बिना रुके, दिन रात अपने परिवार के लिए काम में इस कदर डूब रहती है कि उसे समय का और अपना ख्याल ही नहीं रहता। एक स्त्री को उसके मातृत्व के अंतर्गत रख दिया जाता है। अपने बच्चों को पालने-पोषने में वह अपना सम्पूर्ण जीवन लुटा देती है ,वही बच्चे जब बड़े हो

जाते होते हैं, तो माँ के महत्व को नकारने लगते हैं। उसके अपने ही बच्चे उसे पूछते तक नहीं। उसे ऊंची आवाज़ में बात तक करने का हक नहीं, अपने ही बच्चों द्वारा उपेक्षित माँ के स्वर में मिज़ोरम की कवयित्री दोंगी चोङ्गथु चिल्ला उठती हैं-

शायद हो गया है खत्म मेरा समय
उनकी जरूरतों को पूरा करने की
मेरी हैसियत भी हो गई है नि:शेष
संभवतः इसी प्रक्रिया में
मैंने शुरू कर दी उठानी अपनी आवाज
क्या चिल्लाने को शुरुआत
संतुलन
तो शुरू होती है
चिल्लाने की शुरुआत [12]

पूरे समय बांसुरी बजाने में मस्त रहने वाले एक आदिवासी पति के विरुद्ध उसकी पत्नी नाराज होकर आवाज़ उठा रही है। कोई बाहरी पुरुष आकर उसके गाँव के साथ-साथ उसे भी लूटने आ रहा है। ऐसे में उसका पति अब भी चुपचाप बैठा तमाशा देखता रहता है। ऐसी स्थिति में उस स्त्री का क्रोध फूट पड़ता है। वह अपने ही पुरुष के खिलाफ विद्रोह कर बैठती है कि तुम्हारे होने का ही क्या मतलब, जब तुम अपनी ही स्त्री को नहीं बचा सकते। वह ऐसे पति से मुक्ति चाहती

है जो समय आने पर अपना कर्तव्य न निभा सके। निर्मला पुतुल अपनी कविता 'और तुम बांसुरी बजाते रहे' में लिखती हैं –

इस बार मैं चुप नहीं रहूँगी

छीनकर तोड़ दूंगी तुम्हारी बांसुरी

कि देखो कि इस बार

वो मुझे उठाने आ रहे हैं।[13]

घर-परिवार सँभालने के सारे कामकाज, सारी समस्याएँ एक स्त्री के माथे मढ़ दी जाती है। घर परिवार के भीतर वह क्या-क्या नहीं सहती। वह सबकी सुनती और मौन रहती है। अपने विचार किसी से साझा नहीं कर पाती है। वह मर्दों के लिए केवल खिलौना बन कर रह जाती है। आदिवासी स्त्री अब इन सारी समस्याओं के खिलाफ आवाज उठा रही है। निर्मला पुतुल अपनी कविता के माध्यम से कहती है -

घर भर की पीड़ा हरती है

सबकी सुनती है

होंठों को सीती है

बिन तेल की बाती है

अधलिखी पाती है

मर्दों की थाती है।[14]

आदिवासी स्त्रियाँ स्वयं को पुरुष की दृष्टि से देखने के लिए मजबूर हैं। वह अपने घर में बड़ी होती है, उसमें यौवन आता है। वह भी घर, संतान, प्रेम आदि के सपने देखती है। समाज में स्त्री को लेकर कई अंधविश्वास हैं जैसे कि उन्हें डायन, चुड़ैल आदि के रूप में देखना। इन अंधविश्वासों और रूढ़ियों की शिकार होने पर एक आदिवासी स्त्री का जीवन बहुत ही पीड़ादायक होता है। परिवार और समाज की इन रूढ़ियों में आदिवासी स्त्रियों का दम घुट रहा है। वह अपने ही लोगों के बीच अपनी अस्मिता की तलाश में लगी है। एक बेटी पर उसके घर वाले मरने के बाद भी अत्याचार कर रहे हैं और वह भी सिर्फ इस विश्वास पर कि ऐसा करने पर वह दुबारा अपने गाँव न लौट सके। एक आदिवासी समाज में एक स्त्री, जो अभी अभी प्रसव-पीड़ा में चल बसी है, की सच्चाई को कवयित्री सरिता सिंह बड़ाईक अपनी कविता 'बेटी और नागफनी' में बयान करती है । सरिता सिंह ऐसी रूढ़ियों, अंधविश्वासों का पुरजोर विरोध करती है जो एक स्त्री को उसके मरने के बाद उसे कलंकित करती हैं। वह कहती है -

श्मशान जाने से पहले

नागफनी कांटे से
भेदे गये हथेली और पाँव
अरवा सूतरी से बांधी गई बेटी

सरसों छींटी गयी

घर से श्मशान तक

ताकि कांटे चुभे पांव से

सरसों न चुन सकें हाथ

और वापस न आ सके

बेटी अपने गाँव ![15]

परिवार और घर में रिश्तों को निभाते-निभाते आदिवासी स्त्रियाँ स्वयं को ही भूल गयी हैं। इन रिश्तों के बीच पिसती स्त्रियाँ थोथे उसूलों की चारदीवारी में घुट रही हैं। उनकी खुशी या उनकी पीड़ा की किसी को परवाह नहीं। अपने पति, बच्चे, सास, ससुर की सारी जरूरतों को पूरा करते-करते वह जैसे जीवन जीना ही भूल गई है। सरिता सिंह अपनी दूसरी कविता 'रिश्तों का बोझ' में एक आदिवासी स्त्री की हकीकत सामने लाती है और बताती है सबको कि आदिवासी स्त्रियाँ अब इन बंधनों को तोड़ना चाहती हैं। सरिता सिंह कहती हैं -

सास को मतलब है

थके चेहरे में एक इंच

जादुई मुस्कान

चाहता है ससुर

घूंघट की ओट में

मान-सम्मान

पति को सजी-संवरी

पत्नी पर रुझान[16]

यदि वह पढ़ना भी चाहती है तो पति के ताने उसे सुनने पड़ते हैं। पति उसका मज़ाक उड़ाता है। वह इसे स्थापित मान्यता मानता है कि स्त्रियों का काम केवल घर-बार, बच्चे और परिवार की देखभाल करना मात्र है। सरिता सिंह आगे अपनी कविता में कहती हैं -

"आधी पढ़ाई करके छोड़ी हूँ
एम. ए. की परीक्षा लिख ही दूँ"
पति ने व्यंग्य बाण से
सुखा दिए थे प्राण
"तुम जाओ दफ्तर
मैं बैंठू अपने घर
ऐसा ही था तो
ब्याह ही क्यों किया[17]

स्त्री को पुरुषों की नजरों से ही देखा जाता है। उसकी चाल, सूरत, गुण, हंसी, मस्ती पर एक पितृसत्तात्मक समाज और परिवार रोक लगाता रहता है। आदिवासी समाज में भी यही हो रहा है। विवाह से पहले स्त्री थोड़ी बहुत स्वतंत्र होती है। उसकी बातें, उसकी हँसी सबको भाती है। किंतु विवाह के बाद तो जैसे उसकी जिंदगी ही बदल जाती है। उस पर बंदिशें लगाई जाती हैं। यदि स्त्री विधवा हो जाए तो वह हर घर-परिवार में आलोचना का विषय बन जाती है मानो उसके पति के साथ-साथ उसकी सारी खुशियाँ भी मिट गयी हो। क्या एक स्त्री का वजूद उसके पति के होने मात्र से होता है? क्या विधवा होकर उसने कोई अपराध कर दिया?

विधवा होने पर भी क्या वह विवाह के बंधन में ही बंधी रहे? यही सवाल हमें मीरा रामनिवास की कविता 'अपराधबोध' में मिलते हैं -

आज उसके
हास्य व रूप सौन्दर्य
आलोचना का विषय बन गए हैं
सादगी से निकलने पर भी
छींटाकशी करती हैं
सबकी नज़र
सामने पड़ भी जाए तो
अपराधबोध से देखती हैं
आँखें
क्योंकि वह आज विधवा है
जो पहले फूल थी
वही आज कांटा है[18]

आज आदिवासी स्त्री विवाह जैसे बंधनों में पड़ना ही नहीं चाहती, क्योंकि उसकी मर्जी के खिलाफ उसकी शादी होती है। यदि मनचाहे वर के साथ शादी हो भी गई तो भी मर्द उस पर अपना रौब दिखाता है। उसे पीटता है। शराब पीता है। घर में स्त्री को सिर्फ बच्चा पैदा करने की मशीन भर बना दिया जाता है। कोई उसके दुख-दर्द नहीं समझता। ऐसी स्थिति से उसे यही

बेहतर लगता है कि शादी ही न की जाए। विवाह संस्था की हकीकत और पितृसत्ता की दमनकारी नीतियों के प्रति चेतना-प्रसार का कार्य आदिवासी कविता कर रही है। डॉ. मंजु ज्योत्सना की कविता 'ब्याह' में एक स्त्री का कथन है अपने माता-पिता के प्रति, जिसमें वह कहती है -

माँ, मेरी शादी मत करना

पिता, मेरी शादी मत करना

मैंने देखी है-

'बुधनी' की जिंदगी

खूब सवेरे उठकर, भात पकाकर

बाल-बच्चे संभाल, खेत में खटती है

उसका जबर मर्द

सांझ, सवेरे, रात

जब चाहे तब उसे मारता है कितना

माँ मुझे पराए घर न भेजना

मैं बेटे की तरह कमाऊँगी/ मत भेजना

माँ मुझे दूसरे के घर न भेजना[19]

आदिवासी स्त्री अपने समाज के द्वारा हमेशा छली गई। कभी परिवार के द्वारा तो कभी शौहर के द्वारा। समाज के लोगों के साथ साहूकार-सेठ, पुलिस, राजनेता मिलकर उसे वेश्या तक बना

डालते हैं। आदिवासी पुरुष यदि किसी झूठे जुर्म में पकड़ा जाए तो उसे छुड़ाने के लिए पत्नी को अपना जिस्म दांव पर लगाकर उसे छुड़ाना पड़ता है। ये सब अत्याचार सहने के बावजूद उसे परिवार और समाज में केवल तिरस्कार ही मिलता है। अब आदिवासी स्त्री अपने समाज व परिवार वालों से प्रश्न पूछती दिखती है कि क्या उसे सुखपूर्वक जीने का कोई अधिकार नहीं। वह अपना हक मांग रही है। रविकुमार गोंड 'आदिवासी अस्मिता' कविता में लिखते हैं -

आदिवासी स्त्री समाज की हमेशा से
बलि दी गई है
चाहे धर्म, समाज, कुल, रीति-रिवाज
या हो फिर बिरादरी की टकरार।
दिन-रात जी तोड़ मेहनत कर
पेट पालती है अपने परिवारों का
इसके बावजूद उसे मिलता
अमानवीय व्यवहार, तिरस्कार, बहिष्कार।[20]

आदिवासी समाज की धारणा समतामूलक समाज की रही है। उनके समाज में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता है। ऊंच-नीच, जात-पाँत, लिंग भेद आदि असमानताओं से यह समाज दूर है। वह सामूहिकता, सह-अस्तित्व की भावना रखता है। अपने इस जीवन-दर्शन, जीवन शैली को वे सदियों से निभाते आ रहे हैं। किंतु अब इस जीवन-दर्शन में कई बदलाव आ गए हैं। तथाकथित सभ्य समाज ने इनकी संस्कृति,भाषा एवं जीवन शैली को बदल डाला और जबरन

अपने धर्म-संस्कृति, रीति-रिवाज इन पर थोप दिए। वंदना टेटे, डॉ. रोज केरकेट्टा के हवाले से लिखती हैं, *"आदिवासी शिष्ट साहित्य में स्त्री श्रम, सहिष्णुता, ममत्व से पूर्ण तो मिलती हैं, लेकिन अपने लिए और परिवार के लिए निर्णय लेती हुई कम मिलती हैं। वह जीने के लिए कठिन परिश्रम करती है, देश-परदेश जाती है, सेवा करती है। दूसरों को प्रसन्न रखने की सामंती प्रवृति आदिवासी समाज में नहीं है।"*[21] आदिवासी संस्कृति का समतामूलक व्यवहार उसे विशिष्ट बनाता है। डॉ. सावित्री बड़ाईक इस विषय में लिखती हैं - "*आदिवासी समाज में कोई भी छोटा-बड़ा नहीं होता। यदि कोई आदिवासी बांसुरी या मांदर बजाने में निपुण है तो यह उसका गुण तो है, परंतु उसे खेत में काम करना ही पड़ेगा। हल चलाने, फसल काटने, दँवरी करने और मोर बाँधने का काम उसके लिए भी अनिवार्य है। स्त्री-पुरुषों में गैर बराबरी न के बराबर है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में प्रति 1000 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या 940 है और आदिवासियों में 990 है। आदिवासी स्त्रियों को अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार है। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर खेती-बाड़ी के द्वारा अपना जीवन खुशहाल करने में लगे रहते हैं।"*[22]

उपर्युक्त दो प्रसिद्ध आदिवासी रचनाकारों के कथनों से स्पष्ट होता है कि आदिवासी दर्शन गैर-आदिवासियों से बिल्कुल भिन्न है। आदिवासी कविताओं में स्त्रियों की पीड़ा, दर्द और आक्रोश दिखाई पड़ता है। ये स्थितियाँ हमारे सामने कई सवाल खड़े करती हैं। स्त्री-पुरुषों की बराबरी अब नहीं दिखतीं। यह बराबरी न तो श्रम के मामले में, न समानता के मामले में और

न ही अधिकारों के मामले में ही दिखती है। आदिवासी जीवन-दर्शन जो पुरुष-स्त्री को समान दृष्टि से देखता था, अब केवल पढ़ने-लिखने भर तक के लिए सीमित रह गया।

पूर्वोत्तर की आदिवासी स्त्रियाँ गैर-आदिवासी स्त्रियों की तुलना में अधिक शिक्षित हैं किंतु पितृसत्तात्मक व्यवस्था से ये भी ग्रसित हैं। मिज़ोरम, पूर्वोत्तर का एक विकसित राज्य है, जहाँ की स्त्रियाँ अधिक स्वतंत्र दिखाई देतीं हैं, किंतु पुरुष मानसिकता की चपेट ने इन्हें कुचल कर ही रखा है। स्त्रियों को लेकर मिज़ो समाज में कुछ लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं, जैसे- 'Hmeichhia leh chakaiin sakhua an nei lo' अर्थात स्त्री और केकड़े की कोई जाति/धर्म नहीं होती। 'Hmeichhia leh pal chhia chu thlak theih' यानि स्त्री और बाड़े बदले जा सकते हैं। 'Hmeichhia finin tuikhur ral a kai lo'अर्थात स्त्रियों के विचार में कोई प्रगति नहीं होती।

उपर्युक्त लोकोक्तियों में स्त्री की तुलना केकड़े और बाड़े से की गई हैं कि इनका कोई धर्म / जाति नहीं होती, वह जिस पुरुष से विवाह करेगी उसी के अनुसार इसका धर्म /जाति बनेगा। जिस प्रकार लकड़ी के पुराने बाड़े को समय-समय पर बदला जाता है उसी प्रकार स्त्री को भी बदला जा सकता है। ऐसी है पुरुषों की मानसिकता। आदिवासी समाज के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे अपनी स्त्रियों को वही इज्जत सम्मान दे जो वह पहले देता आया था, जो उसकी संस्कृति का अभिन्न अंग है।

पूर्वोत्तर की आदिवासी स्त्रियों को लेकर भी यही धारणा है कि वहाँ की स्त्री स्वतंत्र है। किंतु स्त्री स्वातंत्र्य का यथार्थ कुछ और ही है। यहाँ की स्त्रियाँ भी अपने घर, परिवार और पति से

प्रताड़ित होती हैं। मेघालय राज्य में मातृसत्तात्मक समाज है। यहाँ की स्त्रियाँ घर-बार चलाती हैं। पुरुषों से अधिक श्रम भी करती हैं। यहाँ की स्त्रियाँ ज्यादा सक्षम एवं सबल हैं। बावजूद इसके वे अपने पति के हाथों पिटती हैं। स्त्रियों को दबाकर रखने की मानसिकता इस कदर हावी रहती है कि उन्हें यह गवारा नहीं कि एक स्त्री अधिकारों के मामले में उनकी बराबरी करे। मेघालय की कवयित्री बिजोया सावियान अपनी कविता 'औरत' में पुरुषों द्वारा स्त्री को पीटे जाने की हकीकत सामने लाते हुए कहती हैं -

जानती वह

दोनों में से वह है ज्यादा सक्षम

और सबल

बावजूद इसके कि गई रात

बुरी तरह पीटी गई थी वह[23]

मेघालय में आदिवासी स्त्रियों के विवाह उपरांत पति से पिटने जैसे उदाहरण हमें नागालैंड में भी देखने को मिलते हैं। यहाँ भी स्त्रियों की वैसी ही स्थिति है। कविताओं के अवलोकन से पता चलता है कि यहाँ की स्त्री भी ऐसा मानती है कि उसके लिए विवाह एक ऐसी सामाजिक स्थिति है जिसमें उसे पति द्वारा पीटा जाना है और जिंदगी भर डरकर ही रहना है। एक पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष की मर्दानगी का अर्थ पत्नी को पीटने से निकाला जाए तो ऐसे समाज और विवाह से स्त्री अवश्य मुक्ति चाहेगी। नागालैंड की अंगामी आदिवासी कवयित्री मोनालिसा चंककिजा लिखती हैं-

मर्दाना हाथ घूंसा चलाते कोमल औरताना देहों पर

मेरी नजर में हारी हुई लड़ाइयाँ है

जीतते हुए युद्ध नहीं [24]

वह आगे लिखती हैं-

एक पिटी हुई पत्नी

जीवित प्रमाण है

पुरुष की

कमजोरी और हीनता के डर का

जिसे वह पितृसत्ता के समाज में

मर्दानगी के मुखौटे में छिपाए रखता है।[25]

अरुणाचल की आदिवासी स्त्रियाँ भी अपने समाज के रूढ़ि-बंधनों में जकड़ी हुई हैं। इन रूढ़ि-बंधनों के चलते घर-परिवार के भीतर भी वे स्वतंत्र नहीं हैं। परिवार व समाज में धर्म के नाम पर एक स्त्री पर मनमाने अत्याचार किए जाते हैं। यदि एक स्त्री कुछ बातों का विरोध कर भी देती है तो उसे निर्लज्ज और राक्षसी करार दे दिया जाता है। पुरुष अपनी स्त्रियों को पापिन, कलंकिनी जैसे स्त्री सम्मान के विपरीत जाने वाली संज्ञाओं से नवाजते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें सरेआम निर्वस्त्र कर बेइज्जत करने में जरा भी नहीं हिचकते। अरुणाचल की कवयित्री जमुना बीनी तादर अपनी कविता 'औरत होकर' में घर, परिवार, समाज और धर्म

की रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह कर उठती हैं। आखिर धर्म की पाबंदियों में कब तक घुटे। आदिवासी स्त्री के इसी रूप को अपनी कविता में व्यक्त करते हुए कवयित्री लिखती हैं -

अरे!

यह क्या हुआ?

गज़ब हो गया !!

एक औरत ने

जड़ दिया

धर्म के गाल पर

जोरदार तमाचा[26]

आदिवासी समाज की स्त्रियाँ अपने समाज की रीढ़ होती हैं। लेकिन अपने आर्थिक अधिकारों से वे सदा वंचित ही रही हैं। अपने जीवन में दुख-दर्द, घुटन-पीड़ा, दोयम दर्जे की स्थिति, विस्थापन की त्रासदी आदि अनेक समस्याओं से मुक्ति की बेचैनी आदिवासी कविता में सहज ही देखी जा सकती है। अपनी मुक्ति से जुड़े तमाम प्रश्नों पर आज वह बहस चाहती है। इन्हीं प्रश्नों में से एक है अपनी आर्थिक आजादी का प्रश्न। वे फसल बोना- काटना,पत्तल बनाना, झाड़ू बनाना, चटाई बुनना, बाहर मजदूरी करना, घर के कामकाज के साथ बाहरी व्यवसाय चलाना जैसे कार्य करती हैं, फिर भी अपने लिए कुछ बचाकर रख पाना इनके लिए संभव नहीं हो पाता है। इनके भी कई सपने होंगे, अरमान होंगे जिन्हें वे कभी पूरा नहीं कर पाती होंगी । आर्थिक तंगी के कारण ये पुरुषों के साथ मजदूरी करने निकल पड़ती हैं। पुरुषों की तुलना में

इन्हें कम मजदूरी दी जाती है। स्त्रियों के श्रम को हमारा पुरुष समाज सदैव ही कम आंकता आया है। कात्यायनी लिखती हैं "औरत का श्रम सारी दुनिया में मर्द के श्रम से सस्ता है। पूरी दुनिया के कुल श्रम का 2/3 भाग औरत करती हैं जबकि उन्हें कुल मजदूरी का मात्र 1/3 भाग ही मिलता है।"[27] इसके बावजूद इनके श्रम का जो कुछ भी मूल्य मिलता है, वह या तो घर-खर्च में चला जाता है या फिर पुरुष इनसे छीन लेते हैं। वे पैसों के लिए पलायन और विस्थापन की पीड़ा भी झेलती हैं। इन्हीं परिस्थितियों के कारण वे अपने आर्थिक शोषण से मुक्ति की कामना लिए सामने आ रही हैं।

निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा और शोषण की मार्मिक अभिव्यक्ति करने वाली स्त्री-अस्मिता की बेजोड़ कवयित्री हैं। एक स्त्री घर और बाहर जिन दुःखों को झेलती है, उनका साक्षात बिंब उनकी कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। बाजारवाद और भूमंडलीकरण की चपेट में आदिवासी स्त्री पिस रही है। आज बाज़ार प्लास्टिक, फायबर के सामानों से भर गया है जिसके चलते आदिवासी स्त्रियों द्वारा बनाए गए झाड़ू तथा अन्य सामानों का उचित दाम तक उन्हें नहीं मिलता। सामान बिकता भी है तो कम दामों में, जिससे वह अपना पेट तक नहीं भर पाती। निर्मला पुतुल 'बहामुनी' कविता में इसी यथार्थ को प्रकट करती हुई कहती हैं -

तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते है पेट हजारों
पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट
कैसी विडम्बना है कि
जमीन पर बैठे बुनती हो चटाइयाँ

और पंखा बनाते टपकता है

तुम्हारे करियाए देह से टप-टप ...पसीना.... ।[28]

उनकी मेहनत से उगाई गई फसल बाहरी लोगों द्वारा उनसे सस्ते दामों पर खरीद ली जाती है और फिर उसी से बनाए गए नए और विभिन्न उत्पादों को बाजार में अधिक मूल्यों पर बेचकर मुनाफा कमाया जाता है। मजे की बात यह है कि अगर आदिवासी जन अपने ही उत्पादों से बने प्रसंस्करित उत्पादों को खरीदने का प्रयास भी करे तो इनके पास उतना पैसा नहीं होता है। ये है उनकी जिंदगी का कड़वा यथार्थ । आदिवासी स्त्री करे भी तो क्या । इतनी धनराशि कहाँ से लाए। निर्मला पुतुल अपनी दूसरी कविता 'बिटिया मुर्मू के लिए' में आदिवासी स्त्रियों के इस यथार्थ तथा प्रसंस्करित उत्पादों को खरीदने की उनकी असहाय स्थिति पर कहती हैं-

सोचो-

तुम्हारे पसीने से पुष्ट हुए दाने एक दिन लौटते हैं

तुम्हारा मुँह चिढ़ाते तुम्हारी ही बस्ती की दुकानों पर

कैसा लगता है तुम्हें सब

तुम्हारी ही चीजें

तुम्हारी पहुँच से दूर होती दिखती हैं ?[29]

उनके समाज के पुरुष दिन-रात शराब के नशे में धुत्त रहते हैं और अपने घर-परिवार का खर्च चलाने का पूरा जिम्मा अपनी स्त्रियों पर डाल देते हैं, ऐसे कामचोर और निष्क्रिय पुरुषों के खिलाफ भी आदिवासी स्त्रियाँ आवाज़ उठा रही हैं। इन्हीं लापरवाह पुरुषों के कारण

आदिवासी स्त्रियों को अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करने हेतु घर से बाहर काम के लिए निकलना पड़ता है लेकिन उन कार्यस्थलों पर भी वे सुरक्षित नहीं हैं। वहाँ भी वे अन्य पुरुषों की गिद्ध निगाहों से अपने आप को बचाती फिरती हैं। निर्मला पुतुल कहती हैं-

मैंने देखा था चुड़का सोरेन

तुम्हारे पिता को अक्सर हड़िया पीकर

पिछवाड़े बंसबिट्टी के पास ओघड़ाए हुए

कठुवाई अंगुलियों से

दोना-पत्तल-चटाई बुन

बाज़ार ले जाकर बेचते हुए तुम्हारी माँ को भी

हज़ार-हज़ार कामुक आँखों और सिपाहियों के पंजे झेल[30]

अधिकारों से वंचित और पुरुषों द्वारा शोषित एक स्त्री के पास कहने को अपना कुछ भी नहीं। घर का पेट भरने के लिए उसे कठोर परिश्रम कर पैसे कमाने पड़ते हैं तब जाकर उसके घर चूल्हा जलता है। पहाड़ी स्त्री के श्रम, उसकी मेहनत को अपनी कविता में जगह देती हुई निर्मला पुतुल लिखती हैं-

वह जो सर पे सूखी लकड़ियों का गट्ठर लादे

पहाड़ से उतर रही है

पहाड़ी स्त्री

अभी-अभी जाएगी बाज़ार

और बेचकर सारी लकड़ियों

बुझाएगी घर-भर के पेट की आग[31]

पति की अनुपस्थिति में एक स्त्री घर-बार चलाने के लिए क्या-क्या नहीं करती, पैसे कमाने के लिए वह कितनी परेशानियाँ झेलती है। वह सवाल पूछती है कि आखिर ये आर्थिक शोषण वह क्यों और कब तक झेले। क्यों उसे उसकी मेहनत का उचित दाम नहीं मिलता? आदिवासी स्त्री के जीवन की इस विडम्बना को निर्मला पुतुल की कविता 'ढेपचा के बाबू' में इस तरह प्रस्तुत किया गया है -

इधर काम-काज भी नहीं मिलता आजकल

जो मेहनत मजूरी कर घर चलाऊँ

दोना-पत्तल भी नहीं बिकता

और न ही लेता है कोई चर-चटाई

झाड़ू, पंखा, दातुन का भी बाज़ार नहीं रहा अब

भूले-भटके गर कभी कोई पैकार आता भी है

तो रुपये जोड़ा माँगता है पंखा

और सौ रुपये दर्जन चटाई[32]

आदिवासी स्त्री अपनी माँ से कहती है कि उसे विवाह नहीं करना है। उसने एक विवाहित स्त्री 'मँगरी' की दुर्गति देखी है जो सुबह से शाम तक बाहर काम पर जाती है ताकि कुछ पैसे मिले

और घर चल जाए। जो थोड़े बहुत पैसे उसे मिल भी जाते है तो पति उसे मार-मार कर पैसे छीन लेता है। डॉ. मंजु ज्योत्सना अपनी कविता 'ब्याह' में कहती हैं-

मैंने देखी है-

'मंगरी' की जिंदगी

एकदम सवेरे काम समाप्त कर

भात बांध, बांध पर खटने जाती

बच्चों के खाने को दो पैसे कमाती

न घर, न खेत- खलिहान, न कामधाम

साँझ को उसके लाए पैसे भी

उसका हुरमुठ (उदण्ड) मर्द लात मारकर

लूटकर, मनमानी हंडिया पीता[33]

एक स्त्री घर और रिश्तों को संभालती है। वह जो कमाएगी, उसी से घर का खर्च चलेगा। घर में आमदनी का अन्य कोई तरीका नहीं। एक दो पैसे अपने लिए बचाए रखती है किसी खूँटे में बाँध कर कि कभी उसके काम आए। वह पैसे भी पति की बीमारी में हाथ से निकल जाते हैं। निर्मला पुतुल अपनी कविता 'माँ' में एक स्त्री की आर्थिक तंगी दिखाते हुए कहती हैं –

जैसे खूँटे में बाँधती है

पैसे – दो - पैसे कभी न खोलने के लिए

पर पति की बीमारी में

जैसे खूँटे से सरकते हैं पैसे[34]

एक युवती के भी अरमान होते हैं कि वह भी श्रृंगार करे। खुद को सजाए-संवारे किंतु उसकी गरीबी उसके अरमानों को फलित नहीं होने देती है। पेट के खातिर वह बाज़ार जाती है, गजरे बेचती है। उसकी भी बहुत इच्छा है कि गजरा लगाए, पर भूख के आगे सभी इच्छाएं उसे छोड़नी पड़ती हैं। निर्मला पुतुल इस आदिवासी युवती के सपनों के साथ-साथ उसके दर्द को इस तरह शब्द देती हैं-

उसने गजरे में पिरो रखे हैं अरमान

उसके अरमान जो फूलों में गजरे की तरह पिरोए हैं

वह खुद गजरा नहीं लगाती

लेकिन दूसरे को गजरा लगाने की

विशेषताएँ बताती है[35]

इसी प्रकार निर्मला पुतुल की कविता 'अखबार बेचती लड़की' की कहानी भी यही है। वह लिखती हैं-

अखबार बेचती लड़की

अखबार बेच रही है या खबर बेच रही है

यह मैं नहीं जानती

लेकिन मुझे पता है कि वह

रोटी के लिए अपनी आवाज़ बेच रही है[36]

भूख और गरीबी के कारण कई आदिवासी युवतियों को पैसे कमाने शहर जाना पड़ता है। आदिवासी इलाकों में काम की कमी है और शहरों में मजदूरी मिल जाती है। उनकी यही भूख और गरीबी उन्हें पलायन के लिए विवश कर देती है। कोई परिवार की इच्छा से, कोई बहकावे में, तो कोई घरवालों की इज़ाजत के बिना शहर चली जाती हैं। वहाँ भी वे ठगी जाती हैं, बलात्कार की शिकार होती हैं या फिर देह व्यापार में फंसा दी जाती हैं। कवयित्री लीमा टूटी इन युवतियों के शोषण को उजागर करती हैं। वह यह बताना चाहती हैं कि यदि उन युवतियों कि आर्थिक स्थिति अच्छी होती तो आज ये बच जातीं। उनकी कविता 'एक ख़त बाबा के नाम' का यह अंश देखिए -

हमारी गरीबी ने मुझे मजबूर किया

हमारी भूख और तुम्हारे चिंतित चेहरे ने

मुझे मजबूर किया

××××

पर...अब.....पछता रही हूँ

कैद हो गई हूँ मैं यहाँ

ठगी गयी हूँ बाबा

××××

अब अंतर महसूस हो रहा हैं मुझे

यहाँ की जटिलता और हमारी सरलता का

यहाँ के छल और हमारे भोलेपन का

एक चेहरे में कितने चेहरे.....रोज़ देख रहीं हूँ मैं[37]

तथाकथित मुख्यधारा के लोग आदिवासी स्त्रियों की गरीबी का फायदा उठाकर उन्हें रोजगार के लालच में यहाँ-वहाँ ले जाते हैं। इनका आर्थिक, दैहिक और मानसिक शोषण किया जाता है। अरुणाचल की कवयित्री जमुना बीनी तादर आदिवासी स्त्रियों की आवाज़ बन उनकी सच्चाई सामने लाती है कि पैसों के लिए एक स्त्री कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है। वह अपनी कविता 'परीकथा' में लिखती है-

रोजगार का

सब्जबाग दिखा

ये दानव

इन परियों को

नकली स्वर्ण-पिजरों में

करते कैद।

और शुरु

कैदी परियों की

अनवरत यातना

शोषण

पर

शोषण

आर्थिक

मानसिक

दैहिक।[38]

गैर-आदिवासियों ने इन आदिवासियों के जंगल और सभी संसाधन लूट लिए । ऐसे में अशिक्षा और भोलेपन के कारण इनके पास गरीबी के सिवाय कुछ नहीं बचा। रोटी व पानी के लिए इन स्त्रियों को लड़ना पड़ रहा है। वे अपनी असहाय स्थिति आज सबके सामने ला रही हैं और सवाल कर रही हैं तथाकथित सभ्य समाज से। पूनम विश्वकर्मा 'वासम' अपनी कविता में लिखती हैं-

अपनी ही माटी पर भूख से जंग लड़ना

कोई आसान काम नहीं

××××

घने जंगलों के बीच से आती हैं आवाजें

हमें रोटी दो

हमें पानी दो

आखिर कब तक हम रहेंगे भूखे नंगे खून के आँसू पीते[39]

एक आदिवासी स्त्री साप्ताहिक बाज़ार में अपना सामान बेचने जाती है। सिर पर सामान रखकर मिलों दूर स्थित साप्ताहिक बाजार की ओर अपने कदम आगे बढ़ाती यही सोचती

चलती है कि आज बाज़ार में उसे बैठने की कोई उचित जगह मिलेगी या नहीं? सामान बिकेगा या नहीं? क्योंकि यदि सामान न बिका तो शाम को खाना नहीं पकेगा और पति को हँड़िया नहीं मिलेगी । गरीबी के कारण ऐसी शारीरिक और मानसिक यातनाएँ झेलते- झेलते वह जानने लगी है कि ये यातनाएँ उसे विकास के नाम पर मिली हैं। गाँव के गाँव विकास के नाम उजाड़ दिए गए हैं। विकास के आगे इनकी गरीबी, लाचारी की कोई कीमत नहीं समझी गई है। आशुतोष कुमार झा अपनी कविता 'दातून बेचनेवाली के बहाने' में कहते हैं-

नहीं मिलेगी साप्ताहिक बाज़ार में
अच्छी जगह
और बिक नहीं पाएंगे
खटिया, दतुवन, पत्तल और ठोंगे
बिना पैसों के
न भात, न हँड़िया[40]

गैर-आदिवासियों के साथ – साथ इन आदिवासी स्त्रियों का आर्थिक शोषण इनके पुरुषों द्वारा भी व्यापक स्तर पर किया जाता है। भेड़-बकरी के साथ घर-बार का काम कर ये दो जून की रोटी कमाती हैं। उस पर उनके शराबी पति उनके साथ गाली-गलौच करते हैं। आदिवासी स्त्रियों के लिए अब ये सब असहनीय हो गए हैं। लखनलाल पाल अपनी कविता 'तीखी नोकों के पद चिन्ह' में कहते हैं -

समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग आदिवासी स्त्रियाँ

बकरियों को चराकर लकड़ियाँ बीनकर

हाड़-तोड़ मेहनत करके जुटा लेती दो जून की रोटी

साँझ को हँड़िया में लिपटा पुरुष चीथता है

माँस पका या गदराया[41]

अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता की आवाज़ उठाती हुई ये स्त्रियाँ अपने हक की मांग करती हैं। मोनालिसा चंकिजा अपनी कविता में ऊंचे स्वर में कहती हैं-

मर्दाना हाथ घूंसा चलाते कोमल औरताना देहों पर

मेरी नज़र में हारी हुई लड़ाइयाँ है

जीतते हुए युद्ध नहीं

पैसा-पैसा तरसती पत्नियाँ

पुत्रहीन माँ

उनकी किस्मत उनका भाग्य

लिखा जाता है

अनदेखी आग की जिह्वा पर[42]

(ख) स्त्री-मुक्ति की राहें :-

आदिवासी स्त्री एक ओर भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद से प्रभावित, मुख्यधारा के समाज द्वारा शोषित है तो दूसरी ओर अपने समाज, परिवार में भी उत्पीड़ित है। इस दोहरे शोषण में

आज वह अपनी अस्मिता व अस्तित्व की तलाश कर रही है। आज वह अपने ऊपर हो रहे हर प्रकार के अन्याय और अत्याचार को पूरी दुनिया के सामने ला रही है। साथ ही वह अपने उत्पीड़न का खुलकर विरोध भी कर रही है। पितृसत्तात्मक समाज हो या मातृसत्तात्मक दोनों में ही वह शारीरिक उत्पीड़न के साथ-साथ मानसिक और आर्थिक उत्पीड़न सहने को विवश है। आदिवासी स्त्रियों ने ही आज तक अपनी संस्कृति को मौखिक रूप में जीवित रखा है। आज भी ये अपने सुख-दुखों को गीतों में पिरोये रखती हैं।

प्रस्तुत उप-अध्याय में इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिन्दी कविताओं के माध्यम से स्त्री – मुक्ति से जुड़े कई सवालों की पड़ताल की जाएगी और स्त्री – मुक्ति की राहों की खोज की जाएगी ।

आदिवासी स्त्री आज शोषक वर्ग के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद कर रही है। उसे अब स्वयं को पुरुष दृष्टि से देखना- तोलना गवारा नहीं। वह स्वयं की पहचान बनाना चाहती है। वह अब पुरुष सत्तात्मक समाज, घर, संतान और प्रेम के बंधनों से मुक्त होना चाहती है । वह अपनी पहचान की जमीन चाहती है जहाँ सिर्फ और सिर्फ उसे अपने होने का अहसास मिले। झारखंड की बेजोड़ आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं में अपने समाज का कड़वा यथार्थ खुलकर दिखाया है। उनकी कविताओं को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे वे हमसे संवाद कर रही हैं। पुतुल जी आदिवासी स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध उन्हें अपनी कविताओं के माध्यम से जगाने का प्रयास कर रही हैं। उन्हें स्त्री सामर्थ्य का अहसास दिला रही है, उन्हें जागृत कर रही है। उनकी कविता 'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री' में स्त्री अपनी अस्मिता की चाह और रिश्तों की भावनात्मक बेड़ियों के विरुद्ध स्वर उठाती हुई कहती है -

मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते

मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से

क्या है मात्र एक स्वप्न के

स्त्री के लिए घर संतान और प्रेम?

क्या है?[43]

धरती से इस छोर से उस छोर तक

मुट्ठी भर सवाल लिए मैं

दौड़ती-हाँफती- भागती

तलाश रहीं हूँ सदियों से निरंतर

अपनी जमीन, अपना घर

अपने होने का अर्थ !![44]

निर्मला पुतुल की लड़ाई स्त्री की परिभाषा को लेकर है। अपने ही समाज में मौजूद स्त्रियों पर हो रहे अन्याय के खिलाफ वह आवाज़ उठाती है। वह पुरुषों की मानसिकता पर सवाल उठाती है। पुरुष ने स्त्री को तन के भूगोल से परे जाना ही कितना है? उसने कभी स्त्री को स्त्री की दृष्टि से देखने की कोशिश ही नहीं की। पुरुषों ने स्त्री की भूमिका को केवल चूल्हे से बिस्तर तक सीमित कर रखा है। यह पुरुषों की बेहद संकीर्ण और स्त्री विरोधी उत्पीड़नकारी मानसिकता है। पुतुल जी पुरुषों की इस अमानवीय और स्वार्थी मानसिकता का विरोध करती हुई कहती हैं -

क्या तुम जानते हो

एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण?

बता सकते हो तुम

एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखते

उसके स्त्रीत्व की परिभाषा [45]

विवाह के पश्चात एक स्त्री घर-परिवार और पति को संभालते हुए काम-काज करते-करते अपनी सारी जिंदगी गुजार देती है। स्त्री अब अपने पति से सवाल करती है। वह पुरुष की चुप्पी पर भी सवाल उठाती है। वह अपने अस्तित्व का जवाब चाहती है। निर्मला पुतुल की कविता 'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए' में आदिवासी स्त्रियाँ अपनी मुक्ति की राह तलाश रही हैं। निर्मला पुतुल इन स्त्रियों की आवाज़ को अभिव्यक्ति देती हुए कहती हैं -

या कोई चादर

कि जब जहाँ जैसे-तैसे

ओढ़-बिछा ली?

चुप क्यों हो!

कहो न, क्या हूँ मैं

तुम्हारे लिए??[46]

आदिवासी स्त्री यहाँ केवल देह मुक्ति की बात नहीं करती, बल्कि उसे मुक्ति पुरुष की उस मानसिकता से भी चाहिए जो स्त्री को केवल देह के रूप में देखती है और उसके किसी स्वतंत्र

अस्तित्व से इंकार करती है। रमणिका गुप्ता स्पष्ट शब्दों में कहती हैं - "आज जब स्त्री स्वयं अपनी पसंद-नापसंद के आधार पर अपने प्यार का इजहार कर रही है, तो चारों ओर से शोर उठने लगा है कि स्त्री-मुक्ति का अर्थ देह-मुक्ति हो गया है। उनकी नज़र में देह की मुक्ति का अर्थ है सेक्स की मुक्ति यानी चरित्रहीनता है। स्त्री केवल देह की मुक्ति मिलने भर से ही मुक्त नहीं हो जाती। उसे तो अपनी देह के प्रति पाले जाने वाली पुरुष की हेय-दृष्टि, उसके एकाधिपत्य और वर्चस्वादी मानसिकता से भी मुक्ति चाहिए जो किसी भी पुरुष को स्त्री के प्रति शंकालु बनाए रखती है। उसे समाज की इस सोच से भी मुक्ति चाहिए कि स्त्री केवल भोग्य है, वस्तु है, संपत्ति है, जिसके हाथ से निकल जाने पर पुरुष की इज़्जत और प्रतिष्ठा खत्म हो जाती है। किसी स्त्री को देखने पर पुरुष उसे ललचाई नजरों से न देखे। यही स्त्री-मुक्ति का अभीप्सित है। पर हैरानी की बात तो यह है कि अधिकांश पुरुष स्त्री की सीरत नहीं, ज्ञान नहीं, गुण नहीं, उसकी सूरत व सेक्स के प्रति ही आकर्षित होते हैं।"[47]

निर्मला पुतुल की कविताओं में स्त्री जीवन के असंख्य आख्यान मिलते हैं। उनकी कविता किसी भी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रति चेतना का भाव पैदा करती है। निर्मला पुतुल ऐसी स्त्रियों के विरुद्ध रचे जा रहे षडयंत्रों के खिलाफ उन्हें विद्रोह के लिए प्रेरित कर रही हैं। वह अपनी कविता 'बिटिया मुर्मू के लिए' में ललकारते हुए कहती हैं-

उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो

उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ

××××

जबकि तुम्हारे हिस्से में

भूख और थकान के सिवा

सिवा एक बेहतर जिंदगी की उम्मीद के

शायद कुछ भी नहीं है .....[48]

आदिवासी स्त्रियाँ मात्र कुछ पैसे और शराब के लिए बेच दी जाती हैं। आदिवासी समाज में मौजूद ऐसे धूर्त लोगों को निर्मला पुतुल खरी-खरी सुनाती हैं और उनका खुलकर विरोध करती हुई कहती हैं-

कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान

जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारु में रख देता है

पूरे गाँव को गिरवी

और ले जाता है कोई लकड़ियो के गट्ठर की तरह

लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को[49]

निर्मला पुतुल तथाकथित सभ्य समाज के उन सौदागरों की पहचान करवा रही है जो आदिवासी लड़कियों को फंसाकर ले जाते हैं और कहीं दूर देश में जाकर उन्हें बेच दिया जाता है। ऐसे पुरुषों की मंशा को आज ये जान गई हैं। इनसे आदिवासी स्त्रियाँ मुक्ति की गुहार नहीं लगा रही, बल्कि मुक्ति की लड़ाई लड़ रही हैं और जमकर उनका विरोध भी कर रही हैं। निर्मला पुतुल कहती है -

पहचानो उन्हें बिटिया मुर्मू .....पहचानो।

पहाड़ों पर आग वे ही लगाते हैं

उन्हीं की दुकानों पर तुम्हारे बच्चों का

बचपन चीत्कारता है

उन्हीं की गाड़ियों पर

तुम्हारी लड़कियाँ सहजबाग देखने

कलकत्ता और नेपाल के बाज़ारों में उतरती हैं[50]

जो तुम्हारी ही बस्ती की रीता कुजूर को

पढ़ाने- लिखाने का सपना दिखाकर दिल्ली ले भागा

और आनन्द-भोगियों के हाथ बेच दिया।[51]

आदिवासी स्त्रियाँ पुरुषों के षडयंत्र तथा अत्याचार से मुक्ति चाहने के साथ-साथ विकास और बदलाव का सुनहरा ख्वाब दिखाने वाली उन चालबाज महिलाओं से भी मुक्ति चाहती हैं जो उनके अपने समाज के भीतर और बाहर दोनों जगह हैं और जो सत्ता में अपनी कुर्सी बचाने के खातिर स्त्रियों पर ही अन्याय करती हैं। आदिवासी महिलाओं के साथ अन्याय और अत्याचार करने वाली सौदागर महिलाओं से सचेत करते हुए निर्मला पुतुल कहती लिखती हैं -

और हाँ पहचानों !

अपने ही बीच की उस कई-कई ऊँची सैण्डिल वाली

स्टेला कुजूर को भी

जो तुम्हारी भोली-भाली बहनों की आँखों में

सुनहरी जिंदगी का ख्वाब दिखाकर

दिल्ली की आया बनाने वाली फैक्ट्रियों में

कर रही हैं कच्चे माल की तरह सप्लाई[52]

××××

बिछ जाएँ जब-तब उनके इशारे पर उनकी खातिर

तो नहीं चाहिए हमें उनका एहसान

उठा ले जाएँ वे अपनी व्यवस्था

ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें

नहीं चाहिए ऐसा बदलाव

नहीं चाहिए !!![53]

आदिवासी स्त्री की मुक्ति का अर्थ है - आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, दैहिक, राजनैतिक शोषण से मुक्ति । सामाजिक शोषण का एक पहलू है वैवाहिक शोषण। ऐसा नहीं है कि स्त्री विवाह जैसे बंधन का पूर्ण विरोध करती है। वह विवाह संबंधी कई मामलों से मुक्ति की इच्छा रखती है। उसके भी सपने है कि उसका पति कैसा हो। अपने पति से वह कई अपेक्षाएं रखती है, केवल उसकी गुलाम बनकर जीना नहीं चाहती। वह ऐसे पुरुष का विरोध करती है जो दिन-रात हड़िया में डूबा रहता हो, काहिल-निकम्मा हो, अन्य लड़कियों पर बुरी नजर रखता हो, बात-बात पर लाठी-डंडा उठाता हो, जो जब चाहे परिवार छोड़ बंगाल, असम चला जाता हो और जिसे अपने पत्नी की परवाह न हो। पति के रूप में वह ऐसा पुरुष भी नहीं चाहती जो

पढ़ना-लिखना बिल्कुल न जानता हो और जो अपनी पत्नी का सुख-दुख बांटने में असमर्थ हो। ऐसे नासमझ, स्वार्थी, शराबी, झगड़ैल और गंवार पुरुष से वह अपना कोई नाता नहीं रखना चाहती। अब वह ऐसे मर्द से मुक्त होना चाहती है तथा स्वयं की अपनी पहचान बनाना चाहती है। वह समाज और परिवार के बनाए हुए वैवाहिक बंधनों से मुक्ति चाहती है। वह ऐसे पुरुष को पति के रूप में देखना चाहती है जो उसे बेहिसाब प्यार करे तथा जो उसकी चिंता करे । निर्मला पुतुल की कविता में ऐसी आदिवासी स्त्री की आंकांक्षा, अभिलाषा इस रूप में व्यक्त हुई है -

वसन्त के दिनों में ला सके जो रोज
मेरे जुड़े के खातिर पलाश के फूल
जिससे खाया नहीं जाए
मेरे भूखे रहने पर
उसी से ब्याहना मुझे !!![54]

आदिवासी महिलाओं का लगातार मानसिक और शारीरिक शोषण होता रहा है। एक आदिवासी स्त्री को लेकर पुरुषों की कितनी घिनौनी मंशा होती है। उनकी झूठी तारीफ की जाती हैं, उनका मज़ाक उड़ाया जाता है। दिन के उजाले में उसे देखकर नाक-भौं-सिकोड़ते हैं और रात को वही स्त्री उसके लिए भोग की वस्तु बन जाती है। समाज के ऐसे पुरुषों और उनकी मानसिकता को आदिवासी स्त्री अब पहचान गयी है। ऐसे पुरुषों को खुलेआम चुनौती दे रही है। वह कहती है कि अब मैं लड़ूँगी तुम्हारे खिलाफ क्योंकि जब तक लड़ूँगी नहीं, तब तक न तो

मेरा उत्पीड़न रुकेगा और न ही सच्चाई सामने आ पाएगी। निर्मला पुतुल की कविता के माध्यम से वह कहती है -

वे घृणा करते हैं हमसे

हमारे कालेपन से

उन्हें प्रिय है

मेरी गदराई देह

मेरा मांस प्रिय है उन्हें ![55]

.....

पर याद रखो

तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गलियों से गुजरती

मैं तलाश रहीं हूँ तुम्हारी कमजोर नसें

ताकि ठीक समय पर

ठीक तरह से कर सकूँ हमला

और बता सकूँ सरेआम गिरेबान पकड़

कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो !!![56]

मुक्ति का दृढ़ संकल्प लिए ही आज आदिवासी कविताओं में विद्रोह के स्वर फूट रहे हैं। जब तक शोषण और अत्याचार के खिलाफ़ विद्रोह नहीं किए जाएंगे, तब तक मुक्ति संभव नहीं।

आदिवासी स्त्रियाँ अब इस राह पर चल पड़ी हैं। वे निडर हैं। यदि मुक्ति की इस राह में चलते-चलते वे थक भी जाए तो रुकने का कोई सवाल ही नहीं। मुक्ति की चाह रखने वाली हजारों-हज़ार स्त्रियाँ उनके काफिले का हिस्सा बनेंगी, मुक्ति की यह उत्कट अभिलाषा ही उन्हें मुक्ति के लक्ष्य तक पहुँचाएंगी। निर्मला पुतुल लिखती हैं-

इसलिए चुप नहीं रहूँगी अब

उगलुंगी तुम्हारे विरुद्ध आग

तुम मना करोगे जितना

उतनी ही ज़ोर से चीखूंगी मैं

××××

और अगर किसी तरह हारी इस बार भी

तो कर लो नोट दिमाग की डायरी में

आज की तारीख के साथ

कि गिरेंगी जितनी बूंदे लहू की धरती पर

उतनी ही जन्मेंगी निर्मला पुतुल

हवा में मुट्ठी-बांधे हाथ लहराते हुए ![57]

आदिवासी स्त्री का संघर्ष जहाँ उनके अपने समाज की रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा उनके पतियों द्वारा किए जा रहे अत्याचार और शोषण के विरुद्ध है वही उन पूंजीपतियों व सामंतों के खिलाफ भी है जो उन्हें उनकी जमीन से बेदखल कर रहे हैं। स्त्रियों के इसी संघर्ष और विद्रोह

के स्वर को शब्द देते हुए तथा डर को अपने भीतर तनिक भी जगह न देने की पुरजोर शब्दों में अपील करते हुए रोज केरकट्टा लिखती हैं-

डर को बुनो मत, न बाँटो

डर रहा हो जहाँ छील दो

जड़ से उखाड़ो

आग में झोंक दो

पास डर को न फटकने दो[58]

अपने अधिकारों के लिए आदिवासी स्त्रियों ने हर जगह संघर्ष किया है। इस हेतु उन्होंने पुरुष प्रधान समाज और शासकों से भी लोहा लिया है। जब बात उनकी अस्मिता और अस्तित्व की आती है तो उनके विद्रोह के स्वर तीखे हो जाते हैं। आदिवासी कविताओं में नव जागृति, स्त्री चेतना और मुक्ति के स्वर सुनाई देते हैं। वे मात्र वस्तु बनकर रहना नहीं चाहती। वे आजादी की सपने सजाती हैं। वे चूल्हे, बिस्तर तक सीमित रहना नहीं चाहती। सरिता बड़ाईक की कविता 'मुझे भी कुछ कहना है' में एक आदिवासी स्त्री अपने मन में उमड़ी मुक्ति की आकांक्षाओं को बिना लाग-लपेट के सीधे-सीधे अपने प्रियवर से कह देती है-

चूल्हे बिस्तर की परिधि में

मुझे नहीं है रहना

गऊ चाल में चलकर नहीं है थकना

मन में भरी है कविता

मंजूर नहीं है थकना

हे प्रियवर.....[59]

अपने संपादकीय 'खरी खरी बात' में रमणिका गुप्ता लिखती हैं - "मनुष्य के मौलिक जीन्स से भी अधिक मनुष्य की भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियों और परिवेश पर ही मनुष्य का विकास आधारित है। स्त्री पर भी यही लागू होता है। बावजूद इसके, एक साझी व्याख्या तो स्त्री की समझ में आ ही गई है कि पुरुष ने उसके मन को गुलाम बनाने से पहले उसे परिवार, ब्याह, संतान और समाज की लक्ष्मण रेखाओं के बाड़े में कैद करके उसके शरीर को गुलाम बनाया और उसे सभी अधिकारों से वंचित किया। पुरुष को जब जरूरत हो प्यार, आलिंगन व चुंबन के हथियार का इस्तेमाल कर या उसके रूप का बखान कर उसे गौरवान्वित किया- सर्वोत्तम करार दिया, लेकिन उसके सब अधिकार छीन लिए ताकि वह उसी के प्रति समर्पित रहे।"[60] वाहरु सोनवणे महाराष्ट्र के एक महत्वपूर्ण कवि हैं। आदिवासी स्त्रियों की पीड़ाओं को ये बखूबी समझते हैं और अपनी कविताओं में आदिवासी स्त्रियों की मुक्ति की आवाजों को जगह देते हैं। वे अपनी कविताओं में उस पुरुष मानसिकता का विरोध करते हैं जो स्त्रियों को केवल दासी अथवा भोग की वस्तु मात्र समझते हैं। पुरुष-सत्तात्मक समाज में एक पुरुष स्त्री को किस नजरिए से देखता है। इसे बताते हुए वे अपनी कविता 'औरत' में लिखते हैं-

एक ऐसी चीज

जिसे घाट में बाट में

जहाँ मिले थाम लो

जब चाहे अंग लगा लो

पूरी हुई हवस तो त्याग दो

न चीख न पुकार[61]

ग्रेस कुजुर अपनी कविता 'बौना संसार' के माध्यम से स्त्रियों पर हो रहे दमन और उनकी पीड़ा को सामने लाती हैं। स्त्री, जो पुरुष से किसी भी मायने में कम नहीं है, उसे आज समाज में घर-परिवार के बंधनों में दबाया जा रहा है। उसका ऊँचा बोलना और थोड़ी सी प्रगति कर लेना भी पुरुषों को गवारा नहीं। पुरुष डरता है कि कहीं वह हमसे आगे न निकल जाए। हमारे खिलाफ कहीं कोई आवाज़ न उठाए। आज आदिवासी कविताएं स्त्री चेतना, आक्रोश और विद्रोह की कविता है। वह स्त्री मुक्ति की बात करने वाली कविता है। ग्रेस कुजुर कहती हैं -

लेकिन तुम्हें उसका बरगद होना

अच्छा नहीं लगता

तुम-

कैद कर देते हो उसे-

गमले में किसी बोनसाई की

मानिंद

इसके बावजूद वह फूलती है

फलती है[62]

सरिता सिंह बड़ाईक की कविता 'रिश्तों का बोझ' में एक ऐसी आदिवासी स्त्री की मनःस्थिति व्यक्त हुई है जो पति के जीवित रहते प्रताड़ित थी और अब विधवा होने पर भी सास-ससुर, घर-बार, बाल-बच्चे सबकी ज़िम्मेदारियों को समाज की परंपरा अनुसार निभाते-निभाते थक गई है। इन सामाजिक बंधनों के अधीन संभाली जाने वाली जिम्मेदारियों के बोझ तले इतना दबा दी गई है कि न उसके अपने कोई विचार बचे हैं और न ही उसकी कोई इच्छाएँ बची हैं। पति उसकी पढ़ने-लिखने की इच्छा पर आपत्ति जताता है और सास-ससूर उससे घूंघट की ओट में ही देखना चाहते हैं। रिश्तों के ऐसे थोथे उसूलों से उसे अब घुटन होने लगी है। वह इन बंधनों से मुक्त होना चाहती है। वह कहती है -

सपनों का धोखा
राख सा दिख रहा है
फूल सा खिला बदन
थोथे उसूलों की चारदीवारी में
मूढ़ मर्यादा के घूंघट तले
सिसकती है प्रतिभा[63]

मेघालय की कवयित्री एस्थर सिएम आदिवासी स्त्रियों की दयनीय स्थिति को सामने लाती हैं आर्थिक रूप से विपन्न स्त्री से अपने प्रियतम से विवाह करने की आजादी छीन ली जाती है। समाज के ठेकेदार स्त्रियों के प्रेम करने के अधिकार को तमाम तरीकों से बाधित करने की मंशा रखते हैं, ऐसी मंशा रखने वालों के खिलाफ आदिवासी स्त्रियाँ अपना स्वर प्रखर कर रही हैं।

'स्त्री मुक्ति' कविता कमजोर आर्थिक स्थिति की शिकार महिला के जीवन में प्यार के अभाव की स्थिति को दर्शाती है -

जिसकी आजादी भी लगी है दांव पर

लुटी है मासूमियत

साधन-विहीन निर्धन उस औरत को

नहीं कोई अधिकार

कि करे वह प्यार .....

या करे कोई उससे प्यार[64]

त्रिपुरा की जोगमाया चकमा अपनी कविता 'आवाज़ का आसमान' में पितृसत्तात्मक समाज में पीड़ित स्त्रियों की स्थिति को सामने लाती हैं। एक पत्नी हर दिन किसी न किसी रूप में अपने पति द्वारा प्रताड़ित होती रहती है। पति स्त्री पर ही दोषारोपण कर अपना बचाव कर लेता है। वह निडर होकर और बिना झिझके अपने पर हुए अत्याचारों को अभिव्यक्ति दे रही हैं। यह कवितांश देखिए -

लेकिन याद रखिए

आपका बचाव

चाहे कुछ क्षणों के लिए ही क्यों न हो

होंगी ये इतिहास निर्मातक

घटनाएँ .....

स्त्रियों के दमन की

पीड़ा के इन पृष्ठों पर[65]

इसी प्रकार नागालैंड की मोनालिसा चंककिजा एक आदिवासी प्रताड़ित पत्नी का आक्रोश अपनी कविता में दिखाती हैं -

मैं अमर बना दूँगी तुम्हें

एक भारी राजकीय शोक से भी अधिक

केवल एक याद में

उस व्हिस्की के गिलास की

जिसे तुमने फेंका था

उस औरत के चेहरे पर उन्नीस सो तिहत्तर में

बावजूद इसके कि तुम

एच. एस. एल. सी थे प्रथम ....[66]

आदिवासी स्त्रियों का विरोध अपने समाज की प्रचलित रूढ़ परम्पराओं से भी है जो उसके पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण है। ये परम्पराएँ उसे कभी आगे बढ़ने नहीं देती। स्त्रियों को डायन और चुड़ैल जैसे स्त्री सम्मान के विरुद्ध अपमानजनक नाम देकर उत्पीड़ित और दंडित किया जाता है। यहाँ तक कि विधवा नाम भी बेहद नकारात्मक अर्थों और तरीकों से लिया जाता है। वह आज समाज में अपनी बराबरी का हक मांगती है। वह इन रूढ़ि - परम्पराओं, अंध-श्रद्धाओं के खिलाफ मुक्ति की आवाज बुलंद कर रही है। निर्मला पुतुल लिखती हैं-

नहीं तो पकलू बुढ़िया की तरह

मुझे भी घसीट कर ले जाते लोग कुलि में

और भरी पंचायत में सर मुंडवा

नचा देते नंगा

कर देते मुंह पर पेशाब

ठूस देते मैला।[67]

आदिवासी स्त्रियों ने अब स्वयं पर हो रहे शोषण के खिलाफ विद्रोह करने की ठान ली है। हमेशा से डरी-डरी सी रहने वाली, चुप्पी साध लेने वाली और घूंघट-चौखट में ही अपनी जिंदगी गुजर देने वाली स्त्रियों ने अब डरना छोड़ दिया है। वे अब अपना इतिहास स्वयं लिखेंगी। ये अपनी राहें स्वयं बना रही हैं, ऐसी राहें जहाँ खुली हवा में खुलकर सांस ली जा सके और अपना अस्तित्व पाया जा सके। रणेन्द्र की कविता 'साइकिल पर सवार लड़की में' स्त्री के बदलते स्वरूप को देखा जा सकता है। वह लिखते हैं-

चौखट के उस पार

घुटनों के बीच सिर छुपाएं

सदियों से जमी हुई चुप्पी तोड़

गुनगुनाते हुए खड़ी वह

प्रत्यंचा की तरह ही तनी है

घूंघट, चौखट, भृकुटि, फरमानों को

अगले पहिए से किनारे ठेल

रास्ता बना रही है

नई सृष्टि रच रही है

ब्रह्मा की नई बेटी[68]

सरिता सिंह बड़ाईक भी लिखती है कि स्त्रियाँ अपने घर-परिवार और समाज में प्रताड़ित हैं, शोषित हैं। इसके बावजूद वे अब डंके की चोट पर कहती हैं कि अब चुप नहीं रहेंगी। अपने मन की सारी कथा-व्यथा बताएँगी और लिखेंगी। वह अपनी कविता 'नहीं करूँगी अपना अंत' में लिखती हैं -

जीवन पर्यंत नहीं करूँगी अपना अंत

कलम की निब टूटेगी तो

अपने ही रक्त में डुबो उंगली

लिखूंगी दिन-रात[69]

जमुना बीनी तादर भी अपनी कविता में एक औरत के साहस और उसके विद्रोह को अभिव्यक्ति देती है। ये विद्रोह स्त्री मुक्ति की राह बना रहे हैं। वह लिखती हैं-

लेकिन वह है कौन?

क्या नाम है उसका?

वह.....वह है

तस्लीमा नसरीन

जो जला रही है मशाल

अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की

नपुंसक समाज में

अकेली ही

औरत होकर[70]

आदिवासी स्त्री की मुक्ति का आह्वान करती हुई निर्मला पुतुल एलान करती हैं-

हम भूगोल की सारी सीमाएँ लाँघकर

पहुँच जाएँगे इतिहास के उस गलियारे में

और दर्ज करेंगे अपना सशक्त हस्ताक्षर

हम समय की छाती पर पाँव रखकर

चढ़ेंगे इतिहास की सीढ़ियाँ

और बुलंदियों पर पहुँचकर

फहराएँगे अपने नाम का झंडा

कुछ इस तरह

हम स्त्रियाँ दर्ज कराएँगी

इतिहास में अपना इतिहास[71]

स्त्रियाँ अब दफ्तरों के बाबुओं को चाय-पानी पिलाने, उनकी फाइलें ढोने, सिर झुकाए घूँघट ओढ़े दफ्तरों के लॉन में काम नहीं करना चाहती। नहीं झेलना चाहती पुरुषों की ललचाई नजरें

और तिरस्कृत वचन। आज स्त्रियाँ शर्ट, पैंट, टोपी पहनकर स्वतंत्र शावेल चलाकर आत्मसम्मान के साथ जीना ज्यादा पसंद करती है। वह शावेल से कोयला उठाती ज्यादा खुश है क्योंकि वह जानती है कोयले की खूबी। कोयला कितना छोटा क्यों न हो पर आग उसी छोटे टुकड़े में जल्दी लगती है। वह कहती है-

नहीं चाहती

दफ्तरों में बाबुओं को पानी पिलाना,

चाय लाना,

और न ही चाहती हूं

अफसरों की फाइलें ढोना।

× × × ×

इसलिए एतवरिया उराइन, चलाती है

शावेल

शर्ट, पैंट, टोपी पहने

ओपन माइंस में।[72]

अंत में हम कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी की आदिवासी कविताओं में आदिवासी स्त्री की अस्मिता की खोज एवं शोषण के विविध आयामों को उद्घाटित किया गया है। कविताओं में स्त्रियों के खिलाफ हो रहे अन्याय, अत्याचार के खिलाफ विद्रोह के स्वर फूट रहे हैं। गैर आदिवासियों द्वारा किए जा रहे शोषण एवं छल-प्रपंच के कारण ये अपने जंगल-जमीन से

विस्थापन की जिंदगी जीने को अभिशप्त हैं। आज आदिवासी कविताओं में स्त्री मुक्ति की राहें कई रूपों में सामने आ रही हैं। वे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा मानसिक-शारीरिक सभी तरह के उत्पीड़नों-शोषणों के खिलाफ विद्रोह कर रही हैं। ये घर-परिवार और समाज की अंधश्रद्धाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों तथा चूल्हा-बिस्तर के जाल से मुक्ति के गीत गाती हैं। घर, परिवार और समाज को नयी राह दिखाती हुई ये आगे आ रही हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर गहरा प्रहार करती हुई पुरुषों के स्वभाव और मानसिकता में बदलाव लाने का संकल्प लिए खड़ी हैं। रूढ़ि-आडंबर से दूर वास्तविकता की एक नयी जमीन तलाशती ये बेचैन स्त्री अब नया इतिहास रच रही हैं। ये स्त्री अस्मिता की रक्षा तथा समाज में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करने पर बल दे रही हैं। वैश्वीकरण और बाजारीकरण के इस दौर में आदिवासी स्त्री जाति, धर्म से मुक्ति की बात करती है और अपनी आदिम संस्कृति के संरक्षण का मुद्दा उठाती हैं।

आदिवासी कविता स्त्रियों के अस्तित्व, उनके अधिकारों के लिए एक द्वार खोल रही है। परिणामस्वरूप इनसे प्राप्त प्रेरणा, जागरूकता और चेतना स्त्रियों को अपनी लड़ाई लड़ने की शक्ति प्रदान कर रही हैं। साथ ही अपने आदिम मूल्यों, प्राकृतिक संपदाओं, संस्कृति, संरक्षण की चिंता भी इन कविताओं में दिखाई देती है। अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासियों ने संघर्ष और मुक्ति की गाथा का एक नया साहित्य रचा है।

संदर्भ सूची

1. स्त्री मुक्ति के प्रश्न और समकालीन विमर्श, सं. डॉ. अल्पना सिंह, डॉ. आलोक कुमार सिंह,देव प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण,2015, पृ. 144

2.ताबेन जोम, जमीन का हिस्सा, वासवी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पहला संस्करण,2003, पृ. 163

3.आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, सं. विशाला शर्मा, दत्ता कोल्होर, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण,2016, पृ. 198-199

4.ताबेन जोम, जमीन का हिस्सा, वासवी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पहला संस्करण,2003, पृ. 174

5. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005 ,पृ. 8

6.वही, पृ. 28

7. वही, पृ. 40-45

8.वही, पृ. 50

9. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 , पृ. 61

10.वही, पृ. 59-60

11.वही, पृ. 95

12. युद्धरत आम आदमी, हाशिये उलांघती स्त्री, सं. रमणिका गुप्ता, पूर्णांक- 108,भाग-2, 2011, पृ. 392

13. वही, पृ. 21

14. वही, पृ. 104

15. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण – 2014,पृ. 40

16. वही, पृ. 4

17.वही, पृ. 41

18.वही, पृ. 63

19.वही, पृ. 98

20. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली,2017, पृ. 38

21. आदिवासी साहित्य विमर्श, सं. गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 197

22.आदिवासी दर्शन और साहित्य, सं. वंदना टेटे, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली,पहला संस्करण,2016,पृ. 80-81

23. युद्धरत आम आदमी, हाशिये उलांघती स्त्री, सं. रमणिका गुप्ता, पूर्णांक- 108,भाग-2, 2011, पृ. 393

24.वही, पृ. 419

25. वही, पृ. 419

26. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादर ,नॉटनल, ई-बुक, , पृ. 81

27. दुर्ग द्वार पर दस्तक, कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, दूसरा संस्करण, 1998, पृ. 37

28.नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005 , पृ. 12

29. वही, पृ. 14

30. वही, पृ.19

31. वही, पृ. 36

32. वही, पृ. 44

33. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण – 2014, पृ. 98

34. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 पृ. 10

35. वही, पृ. 33

36.वही, पृ. 34

37.पक्षधन, सं. विनोद तिवारी, वर्ष-12, जुलाई-दिसम्बर, 2018, जन-जून, 2019, सन्युक्तांक- 25,26, दिल्ली, पृ. 198,199

38.वही, पृ. 228-229

39.वही, पृ. 216-217

40. वही, पृ. 241

41.समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर,पहला संस्करण,2013, पृ. 20

42. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादर, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 419

43.नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005 , पृ. 9

44. वही, पृ. 30

45. वही, पृ. 8

46. वही, पृ. 29

47.युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता, अंक-107,अप्रैल- जून,2011, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 3

48. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005 , पृ. 14-15

49. वही, पृ. 20

50. वही, पृ. 15

51. वही, पृ. 21

52. वही, पृ. 21

53. वही , पृ. 35

54. वही, पृ. 52

55. वही, पृ. 72-73

56. वही , पृ. 56

57. वही, पृ. 90-91

58.समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर,पहला संस्करण,2013, पृ. 91

59.नन्हें सपनों का सुख, सरिता बड़ाईक, रमणिका फ़ाउंडेशन, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 47

60.युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता, हाशिये उलांघती स्त्री, स्त्री मुक्ति आंदोलन पर केंद्रित कविता विशेषांक,भाग- 1,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 3

61.पहाड़ हिलने लगा, वाहरु सोनवणे, शिल्पायन प्रकाशन,दिल्ली, 2009,पृ. 19

62.आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण – 2014, पृ. 25

63. वही, पृ. 41

64.युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता, हाशिये उलांघती स्त्री , भाग- 2,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 394

65. वही, पृ. 420

66. वही, पृ. 419

67.अपने घर की तलाश में, निर्मला पुतुल, रमणिका फ़ाउंडेशन, दिल्ली, 2004, पृ. 50

68.थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, रणेन्द्र, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 24-25

69.युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता, स्त्री मुक्ति आंदोलन पर केंद्रित कविता विशेषांक, भाग- 1,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 220

70. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादर, नॉटनल –ई-बुक, पृ. 82

71.बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 , पृ. 74-75

72.लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, व प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ.38

पंचम - अध्याय

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं का भाषागत वैशिष्ट्य

(क) भाषा

(ख) शैली

पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं का भाषागत वैशिष्ट्य

मनुष्य अपने विचारों को जिस माध्यम से प्रकट करता है उसे भाषा कहते हैं। भाषा मनुष्य के पारस्परिक भावों एवं विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा तभी सार्थक सिद्ध होती है जब पाठक या श्रोता उसे समझ ले। अतः भाषा का मूल कार्य संप्रेषण है। भाषा के संबंध में भाषा वैज्ञानिकों ने ही नहीं, बल्कि समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों द्वारा भी विचार किया गया है। विभिन्न विद्वानों ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है-

"दार्शनिकों के अनुसार भाषा शाश्वत विचारों की बाह्य अभिव्यक्ति है। मनोवैज्ञानिक भाषा को समस्त मानसिक मनोभावों तथा मनोवेगों की अभिव्यक्ति का साधन मानते हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञान के अनुसार, भाषा उद्दीपन के प्रति की गई प्रतिक्रिया है। समाजशास्त्री भाषा को उन समस्त सामाजिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं जिनका संबंध भाषा-व्यवहार से है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा समाज विशेष में विचार-विनिमय के लिए प्रयुक्त होने वाली यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीक व्यवस्था है।"[1]

बृहत हिंदी कोश के अनुसार - "भाषा भावप्रकाश करने का साधन, किसी विशेष देश का या जनसमाज में प्रचलित शब्दावली और उसे बतरने का ढंग।"[2]

रामविलास शर्मा के अनुसार - "भाषा संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है। भाषा स्वयं भी संस्कृति को व्यक्त करती है। भाषा स्वयं भी संस्कृति का अंग होती है। उसमें मनुष्य के विचार, भाव, संस्कार और संवेदनाएँ शामिल हैं।"[3]

अतः हम कह सकते हैं कि भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है जिसके माध्यम से एक मनुष्य या उनका समुदाय दूसरे मनुष्यों और समूहों से अपने-अपने विचारों एवं मनोभावों को अभिव्यक्त करता है।

कविता साहित्य की वह विधा है जिसमें व्यक्ति अपने आंतरिक भावों को कम शब्दों में पिरोकर गहराई के साथ प्रस्तुत करता है। कविता का सीधा संबंध हृदय से होता है। यह हमारे जीवन में बदलाव करती है और पाठक की मानसिक स्थिति को उद्वेलित करती है। कविता के द्वारा हम संसार के सुख-दुःख, आनंद, क्रोध, प्रकृति, जीव-जंतु आदि के यथार्थ रूप को अनुभव करते हैं। कविता का एक उच्च आदर्श होता है, यह जिंदगी को सहजता से जीने की सीख देती है। एक आम आदमी के दुख-दर्द में शामिल होती है कविता।

आदिवासियों की अपनी पहचान, समृद्धि, समस्याएँ, दुःख-दर्द, विस्थापन की पीड़ा, प्रकृति प्रेम, पर्यावरण की चिंता, विद्रोह, चेतना, संस्कृति, लोककला, जीवन दर्शन आदि की झलक हमें कविता में देखने को मिलती है। आदिवासी कविता ने साहित्य में अपनी विशिष्ट जगह बना ली है।

आदिवासी हिंदी कविताओं के भाषागत वैशिष्टय का अध्ययन करने के पहले हमें यह समझना होगा कि आदिवासियों की भाषा, संस्कृति, आस्था, विश्वास, जीवन शैली सर्वथा भिन्न है।

आदिवासी समुदाय भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में निवास करते हैं। हर समुदाय की अपनी एक अलग भाषा-संस्कृति है। उत्तर भारत में मुंडारी, खडिया, संथाली, कुडुख, हो एवं नागपुरिया, मध्य भारत में गोंड, कोरकू, भील तथा पूर्वोत्तर में खासी, कूकी, नाग, मिज़ो, त्रिपुरी और दक्षिण में गोंड, बड़गा, पनियान, कादर आदि आदिवासी समुदाय हैं।

आदिवासी साहित्य सृजन की परंपरा मुख्यतः मौखिक रही है। आदिवासी कविता का मौखिक रूप उनकी वाचिक परंपरा में ही देखा जा सकता है। आदिवासी कविता कई आंचलिक भाषाओं में रची गई है और रची भी जा रही है जिनका प्रकाश में आना या उनसे संवाद होना अभी भी शेष है। आज आदिवासियों के साथ-साथ गैर-आदिवासी भी आदिवासियों पर लिख रहे हैं। आदिवासी अब अपनी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा में भी लिख रहे हैं। आज आदिवासी साहित्य कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक आदि विधाओं से भरा है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व की लड़ाई में इन्होंने कविता को ही अपना हथियार बनाया है। आदिवासी कविता उपेक्षितों, वंचितों, शोषितों, पीड़ितों की आकांक्षाओं का जीवंत दस्तावेज़ है, साथ ही यह मौलिक और भिन्न कला रूप व विषय-वस्तु लेकर उपस्थित हुई है। उनकी कविताओं की छवियाँ, कथन, शिल्प और वस्तु पूर्णतः अलग है। गंगा सहाय मीणा लिखते हैं कि "आदिवासी साहित्य की लंबी मौखिक और लगभग एक सदी पुरानी लिखित परंपरा के विकास के रूप में आए समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरुआत हमें 1991 के बाद से माननी चाहिए।" [4]

हरिराम मीणा मानते हैं कि "जब हम आधुनिक कविता के संदर्भ में आदिवासी कविता की बात करते हैं तो आदिवासी कविता संभव है, तथाकथित मुख्यधारा के समाज के लिए प्रारंभिक दौर की रचनात्मकता हो" [5]

अतः हम कह सकते हैं कि आदिवासी कविता अभी भी अपने शैशवकाल में है, फिर भी इनकी विषय-वस्तु, भाषा-शैली, भाव एवं संदेश मुख्यधारा की समकालीन कविताओं से कम नहीं है। आदिवासियों की अपनी सहज कथन भंगिमा है। जिस प्रकार इनका स्वभाव सरल-सहज है, उसी प्रकार उनकी कविताओं की भाषा भी सरल-सहजता लिए हुए है। उनकी अभिव्यक्ति शास्त्रीय या विशिष्ट नहीं है। यह तो सामूहिक मन की सहज अभिव्यक्ति है। उनकी कविता की भाषा में ही उनके जीवन दर्शन की झलक सहज ही देखने को मिलती है।

1) भाषा में सहजता:

आदिवासी कवियों ने अपनी कविता में रोजमर्रा की बोल-चाल की भाषा को चुना है। बिना लाग-लपेट के जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा गया है। इससे भाषा में सहजता आ गई जिससे वह पाठक तक आसानी से पहुँच जाती है। सहजता के इस गुण के माध्यम से कवियों ने अपनी कविताओं के गहरे से गहरे प्रसंग को भी संप्रेषणीय बना दिया है। इसका उदाहरण हम निम्नलिखित आदिवासी कवियों की कविताओं में देख सकते हैं। जमुना बीनी तादर की कविता का यह अंश देखिए -

जब नदी

तुम्हें लीलने के लिए

आगे बढ़ी

तुम ऊँचें पहाड़ों में

भाग गए

घने जंगलों के

लम्बे

और

चौड़े पेड़ों पर

चढ़ गए

स्वयं को डूबने से बचाने

और

अपनी नस्ल को

विलुप्त होने से।[6]

वंदना टेटे का यह कवितांश भी देखिए जो भाषा की सहजता का एक उदाहरण है -

मैंने तय कर लिया है

लौट जाऊँगी

अपनी दुनिया में

क्योंकि बहुत मुश्किल है

इस अनजानी, असहाय

दुनिया में अकेले रहना [7]

हरिराम मीणा की कविता की यह सहजता भी दृष्टव्य है -

हमें पता नहीं

हम बंदर की औलाद हैं

या भगवान की मंशा

मगर, पैदा आदम-जात ही में हुए।[8]

भाषा की सहजता के सौन्दर्य के मामले में निर्मला पुतुल का कोई सानी नहीं है। यह उदाहरण दृष्टव्य है -

तीन बरस हो गये

अब छोटका भी पाँच साल का हो गया

चितकबरी बछिया भी गाय बन गयी

जंगल के कंद फल खत्म हो गये

महुआ का टपकना भी बंद हो गया

बँधना, सोहराय भी गुजर गया

लेकिन तुम नहीं आये [9]

महादेव टोप्पो की भाषा का यह रूप जो कि सीधे अभिधा में है, लेकिन काव्यमय है-

मैं जैसा भी था खुश था

लेकिन वे मानते नहीं

कि मैं खुश हूँ

पहले ले आये वेद-पुराण फिर कुरान

फिर लाये बाइबल

हद तो यह कि

अब ले गये हैं हमारे हल, बैल

कुदाल, कुल्हाड़ी, हमारे तीर कमान

बहुत समझाया भैया

जंगल में त्रिशूल का कैसा और क्या काम

कहा- धर्म रक्षा के लिए रखना

और वे जबरन थमा गये

इन्हें हाथों में हमारे[10]

भगवान गव्हाडे लिखते हैं-

होरी अच्छा किया तुमने जो

मूँद लीं समय से पहले अपनी आँखें

देख-सह नहीं पाते अपने किसान भाइयों की

दयनीय स्थिति [11]

अश्विनी कुमार पंकज की कविता की भाषा की यह सरलता भी उल्लेखनीय है -

देखिये

मैं नई सदी में पैदा हुआ हूँ

बात करने से पहले

आपको इतना वक्त तो देना ही होगा

कि मैं इस दुनियां को

कुछ तो देख लूँ[12]

आदिवासी कविता की विशिष्टता है कि भाषा सरलता-सहजता लिए हुए है। कहीं भी दुरुहता नहीं मिलती।

एकान्त श्रीवास्तव की कविता का यह अंश देखिए जिससे साफ पता चलता है कि बोलचाल की आम भाषा में भी रचनात्मकता के साथ जीवन का कड़वा यथार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है -

नहीं भैया, काठ क्या

हमारा तो जीवन ही भारी

पत्थर होता तो डूब जाता

काठ तो डूबता नहीं

जल में [13]

रणेन्द्र की कविता की भाषा की सहजता देखिए -

शिकारी आएगा

दाना डालेगा

लोभ से फँसना नहीं [14]

लीलाधर मंडलोई की कविता की भाषा का यह सहज रूप दृष्टव्य है -

एक सुबह पता चला कि कुछ लोग

जबरन जा घुसे, रात गए उसकी खोली में

कि जब वह थकी-हारी गहरी नींद में थी

क्या हुआ बाद उसके सही-सही मालूम नहीं

सिवाय इसके कि पाई गई वह मृत [15]

उपर्युक्त कविताओं के अंश पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आदिवासी कविताओं की भाषा सरल और सहज है। कवि ने अपनी बात सीधे तरीके से, सरल रूप में अभिव्यक्त की है। आदिवासी कविताओं की भाषा जितनी सरल है, भाव की उतनी ही गहराई भी उनमें है। इन कविताओं में उनकी अस्मिता की गहन चिंता और बेचैनी को सीधे, सरल किन्तु गहनता के साथ अभिव्यक्त किया है।

2) भाषा में शब्द प्रयोग:

भाषा कई शब्दों के मेल से बनती है। कविता के भाव-प्रकाशन की शक्ति शब्दों की काट-छाँट तथा उनके चयन में निहित होती है। शब्द प्रयोग और उनका चयन कविता को वजनदार बनाता है।

आदिवासी कवियों ने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज या आँचलिक, अरबी-फारसी और अंग्रेजी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। इसे हम आदिवासी कविताओं के माध्यम से देखेंगे ।

i) तत्सम शब्द:

तत्सम का तात्पर्य उन शब्दों से है जो पूर्णतः संस्कृत के शब्द हैं। आदिवासी कवियों ने अपनी कविताओं में जहाँ-तहाँ तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है-

हरिराम मीणा की कविता 'एकलव्य: पुनर्पाठ' में आए तत्सम शब्द :-

आभास हुआ –चीते के आगे **निरीह मृग**

'दुर्भेद्य लक्ष्य, कंपायमान है **धनुर्दंड**

प्रत्यंचा खिंचती नहीं,न ही सधते नाराच

निस्तेज हुए **दैवीय शस्त्र** [16]

हरिराम मीणा की कविता 'सेंटेनेली जनजाति के बारे में' में आए तत्सम शब्द :-

मुझे नहीं लगता की मैं **व्यक्त** करूँ **आभार**

-सूर्यप्रसूत रात्रियों का

या स्वागत करूँ **शुभ्रवर्ना अर्जुन** का

या कि **षोडश नमन** करूँ भगवान **भास्कर** को ।

पक्षियों के **कलरव** में मुझे नहीं सुनाई दी ।

-भोर-वंदना की सरगम भरी **ऋचाएं**। [17]

('रिश्तों का बोझ' कविता, सरिता सिंह बडाईक)

दिवंगत पति के **स्मृति शेष** में

स्वयं को नहीं पाती खोज।[18]

('हे समय के पहरेदारो!', ग्रेस कुजूर)

ऋषि- मुनियों की **मौन भाषाएँ**

और जुड़ी हैं **वन- प्रांत** की अनेक कथाएँ [19]

('परिवर्तन', डॉ. राम दयाल मुंडा)

जटाओं में फंसी गंगा

विकसती **चंद्रज्योत्स्ना**

भवभयहारक भूतेश्वर शिवजी,।[20]

('जमाने में और भी ग़म है मुहब्बत के सिवा', निर्मला पुतुल)

रख देती हूँ **पुनः** उसी **स्थल** पर

जैसे कर रही हूँ तुम्हारे **चरण स्पर्श** ।[21]

('बदल जाती है', वंदना टेटे)

मेरी **प्राथमिकताओं** में, **प्रार्थनाओं** में ।[22]

('प्रश्नों के तहखाने', महादेव टोप्पो)

पार्टियाँ हों **दक्षिण**, **वाम** या **मध्यमार्गी**

कभी **मेधा**, **रमणिका**, **अरुंधती** तो कभी **ब्रह्मदेव**।[23]

('आदिवासी अभिव्यक्ति', रविकुमार गोंड)

नवल प्रभात, सुख-साधन

हम या वो जो **स्वार्थ** के **वशीभूत** ।[24]

('किसान', भगवान गव्हाडे)

शक्ति- क्षीण मत होने दो भाई

उसके हुंकार को **प्रतिसाद** दो

पर **अभ्यागत आद्रा** का स्वागत करो । [25]

('मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में', निर्मला पुतुल)

वे **घृणा** करते हैं हमसे

वर्जित है उनके घरों में हमारा **प्रवेश** ।[26]

('खुली डबडब आँख', एकांत श्रीवास्तव)

अग्नि होती जाती है **मंद / जल** का **प्रवाह** प्रबल

करो कभी **परिक्रमा** इस देश की / उन रस्तों से जो **निषिद्ध** हैं ।[27]

('मियाँपुर', रणेंद्र)

हमारे **सिद्धार्थ-संबुद्ध** की / **प्रबुद्ध प्रतिवाद** की गहन गरिमा ।[28]

('डूब', एकांत श्रीवास्तव)

डूब में **साँझ** का **सूर्य** / इस **तरह** कि दिन के **क्षितिज** से उगकर

बन सके **मार्तंड** फिर ।[29]

('दोस्ती की रोटी की सोंधी गंध', चंद्रकांत देवताले)

साहित्य-संस्कृति और कला कि धकापेल के बीच

धक्के खाती जिंदगी,गरीबी और **विकलांगता** के **आदिवासी हाशिए** पर ।[30]

('हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती', अनुज लुगुन)

जो हमारी **अलिंगबद्ध** बाजुओं को और गाढ़ा करे

और **रक्तिम** होठों कि अंतिम **प्रगाढ़** मुहर ।[31]

ii) तद्भव शब्द:

जो शब्द संस्कृत के मूल रूप से परिवर्तित कर प्रयोग में लाए जाते हैं, उसे तद्भव कहते हैं। भाषा की सरलता, सहजता के लिए प्रायः तद्भव शब्दों का प्रयोग होता है।

('हमारे बच्चे नहीं जानते तोते-रे नोनो-रे', वंदना टेटे)

सच में /मैं चिंतित और उदास हूँ /कि नहीं **जान** पाएंगे मेरे **बच्चे**

मछली और **चिड़िया पकड़ने** की ।[32]

('मध्यम सुर', अश्विनी कुमार पंकज)

हम यातना **घरों** में नहीं थे /अगस्त का पूरा **महीना**

हर **गांव** तक जाती थी /और सर से **पांव** तक ।[33]

('हजार-हजार आँखों वाले', अश्विनी कुमार पंकज)

हजार-हजार **हाथों** वाले /हजार-हजार **पैरों** वाले /हजार-हजार **आँखों** वाले ।[34]

('अंततः आ ही गया मेघ', हरिराम मीणा)

दोनों ओर तनी हुई **ऊंची** चट्टानें /**सर** के ठीक **ऊपर** नजर आता है

जिसके **हाथों** में 'मेघदूत'।[35]

('खून को पनि कैसे लिख दूँ', निर्मला पुतुल)

आँख रहते अंधी कैसे हो जाऊँ मैं /कैसे कह दूँ **रात** को **दिन**[36]

('एक और जनी शिकार', ग्रेस कुजूर)

पटवा के **उजले पंख / हवा** में नहीं तैरते अब /।[37]

('मोर के पंख', सरिता सिंह बडाईक)

आम के मंजर की / **कोयल** का मन भी / चिलचिलाती **धूप** में[38]

iii) देशज / आंचलिक शब्द:

जो शब्द स्थानीय बोलियों से हिंदी भाषा के प्रयोग में आ गए हैं उन्हें देशज शब्द कहते हैं। इन शब्दों की उत्पत्ति अज्ञात होती है। जो शब्द किसी 'अंचल' या क्षेत्र विशेष में बोले जाते हैं, उन्हें आंचलिक शब्द कहते हैं।

('हमारे बच्चे नहीं जानते तोतो-रे नोनो-रे' , वंदना टेटे)

नहीं जान पाएंगे / **पाडू, दूरंग, ठडिया, लहसुवा** के बारे में

बोरो:का, पेछौरी, करया,पड़िया [39]

('यूँ ही नहीं चलेगा यह सब', हरिराम मीणा)

जो फँस जाए **जुगत** बैठा लो / इर्द-गिर्द है **रद्दर-पद्दर / नड़गोटी** बाँधो[40]

('प्रश्नों के तहखाने में', महादेव टोप्पो)

कोई हमारी **टंगिया**, **कुमनी**, हल, कुदाल, तीर, धनुष

धुमकुड़िया/घोटुल का अध्ययन करता ।[41]

('माँदल का साथ', महादेवी टोप्पो)

खद्दी, करम, माघे, बा पोरोब, जतरा में नहीं नाचेंगे [42]

'(सोनाई', भगवान गव्हाडे)

भिलावे के फूल के '**बिब्बुड़े**' चुन कर / '**घडगी**' का जानलेवा यज्ञ रचनाकर

निकाल लेती कला '**वंगण**'/ **सुपली**-टोकरी और बैलबंडी के [43]

('कुछ मत कहो सजोनी किस्कू', निर्मला पुतुल)

'जातीय **टोटम**' के बहाने / **मिहिजाम** के **गोआकोला** की

'**माँझी हाड़ाम**' '**पराणिक**' '**गुड़ित**' ठेकेदार, महाजन ।[44]

('अभी खूँटी में टाँगकर रख दो माँदल', निर्मला पुतुल)

बजाये नहीं असमय ढोल **माँदल** / गाय **गोहाल** के गोबर में फँसी

और पहुँचा है खेत पर बापू को **कलेवा** [45]

('वे अलसाये दिन', जमुना बीनी)

मुकु-मबलक खाना / मेरी **आप्पा** / **मकई**, **मड़ुआ** [46]

('युवा अरुणाचली', जमुना बीनी)

आबोतानी, आनउ, दोञो / **आबो पोलो** की कथाएँ / **हिकु-हुयुप, होञोर** और

उबला हुआ **ओयिक**।[47]

('एक और जनी शिकार', ग्रेस कुजूर)

नहीं है **'टोकी'** में अब / '**पियार**' और '**पीठोर**' की मिठास / न '**खुखड़ी**' न '**रुगड़ा**'

'**कादो**' हो गया है / **डाड़ी** और **चुआं** का पानी।[48]

iv) अरबी-फारसी शब्द

अंग्रेजों के आगमन से पहले भारत में मुस्लिम आधिपत्य रहा है। फलस्वरूप अरबी-फारसी के शब्द शासन, शिक्षा एवं बोलचाल में प्रयुक्त होते रहे हैं। हिंदी में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग लगभग सभी जगह हो रहा है और इनमें से बहुत सारे शब्द ऐसे हैं जो अब हिन्दी के हो गए हैं।

('मध्यम सुर', अश्विनी कुमार पंकज)

फौजी ताश खेल कर समय काटते थे / **आजादी** का मुंह चिढ़ाते हुए

इन्हें **अखबारों** / और रंगीन चैनलों में **तलाशते** [49]

('नागरिकता', अश्विनी कुमार पंकज)

दस्तावेज़ जब से / जीवन के लिए अनिवार्य हुए हैं

'इंसानियत' की / सरकारी परिभाषा बदल गई है ।[50]

('जब आदिवासियों का कारवाँ चलता है', रविकुमार गोंड)

जब आदिवासियों का **कारवाँ** चलता है, / **मंज़िलें ख़ुद-ब-ख़ुद आसान** हो जाती है

उनके पैरों में इतनी **ताकत** है, / ठोकर लगने से मिला हर **गम** भी ,।[51]

('कुछ भी तो बचा नहीं सके तुम', निर्मला पुतुल)

मेरी **तस्वीर**, मेरे **ख़त**, मेरी स्मृतियाँ / मेरा प्यार, मेरा सम्मान, मेरी **इज्जत** ।[52]

('हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती', अनुज लुगुन)

खेतों के **आसमान** के साथ / अनचाहे प्रसव के **खिलाफ सवाल** जनमाती **औरतें**

इनके **इरादों** को आग से **ज़्यादा गर्म** बनाने के लिए ।[53]

('कोई नहीं उसके साथ', चंद्रकान्त देवताले)

तहस-नहस कर दी गई उसकी झोंपड़ी / **बेदखल** कर दी गई जो विधवा

ताकते उसे जैसे वह कोई **खौफनाक** दृश्य ।[54]

('आदिवासी और यह दौर', हरिराम मीणा)

क्षत-विक्षत चौतरफा **माहोल** / **आतंकी जिन्न** के **कैदखाने** में विवश ।[55]

v) अंग्रेजी शब्द

('एक आदिवासी गाँव से गुजरती सड़क', ज्ञानेन्द्रपति)

रिंगें क्रेनें / चौड़े पंजर की **ट्रकें ट्रेलर** लगे **ट्रैक्टर** [56]

('हमारे बच्चे नहीं जानते तोतो-रे-नोनो', वंदना टेटे)

टी.वी., **कम्प्यूटर, नेट**, की दुनिया में / **वायर** के जरिए आती सूचनाओं

रिमोट, **माउस** और **मोबाइल** के **बटनों** पर [57]

('विकास-एक', अश्विनी कुमार पंकज)

जेनरल स्टोर्स रोज पैदा हो रहे हैं / **बैंकों** की संख्या भी बढ़ी है

ट्रकों का सिर्फ **ड्राईवर** से ही नहीं [58]

('तुमसे आदमी कहलाने के गुर नहीं सीखूँगा', महादेव टोप्पो)

गवर्नमेंटी, सन, इन, लॉ कहलाता [59]

('रॉस आईलैण्ड', के खण्डहरो से, हरिराम मीणा)

बैरक, दफ्तर**, मैस**, शस्त्रागार / **क्लब, कंट्रोलरूम** और बाजार [60]

('युवा अरुणाचली', जमुना बीनी तादर)

टी.वी. पर भी / **दॉरेमोन, पोकेमोन** / **बॉलीवुड** के गीत [61]

('एक सार्थक चीख़ के पहले की गहराती चुप्पी', निर्मला पुतुल)

विदेशी **कंपनियों** को उपलब्ध करा रही है / हम चुप हैं

रोजगार **गारंटी** योजना के तहत / हमें **जॉब कार्ड** मिला [62]

('कलकत्ता में एक सैलानी', महादेवी टोप्पो)

कभी **विक्टोरिया मेमोरियल** या / **न्यू मार्केट** या गरियाहाट की / दुकानों में भी [63]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि आदिवासी कवियों ने अपनी कविताओं में तत्सम, तद्भव, देशज/आंचलिक, उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी शब्दों के प्रसंगानुकूल प्रयोग किये हैं। आदिवासी जनकवि हैं, इसी कारण उनकी कविताओं में तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में मिलता है जिससे काव्य में सरल अर्थवत्ता ध्वनित होती है।

vi) मुहावरे और कहावतें

आदिवासी कविताओं में यत्र-तत्र मुहावरे और कहावतों का खुलकर प्रयोग हुआ है। ये मुहावरे और कहावतें कविता के भाव, विचारों को संक्षिप्त एवं अर्थवत्तापूर्ण बनाते हैं। इससे काव्य की भाषा को एक नया तेवर मिलता है। आदिवासी कवियों ने अपने काव्य में प्रसंग के अनुसार मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग किया है। निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'बेघर सपने' में आए मुहावरे तथा कहावतों के काव्य रूप में कुछ उदाहरण यहाँ दृष्टव्य हैं। यथा: - **अपनी दुनिया को पौवा, कनवा पैला से नापती (पृ.10), निपट अकेले जूझ रही हूँ जिनसे, मेरी नाभी में उठते शूल को (पृ.15), मन सिंहासन पर विराजमान (पृ.15), काँटों की तरह कूरेद निकाल फेंकोगे आत्मा में फंसी हुई पिन्न (पृ.15), वह वापस लौट आई अपने दुःखों को मुठ्ठियों में भरकर (पृ.23), इसी गमछे में दुःख बाँधकर ले जाती हैं मेरी माँ खेत पर (पृ.26), मेरे लिए दिल जंग लगा हुआ ताला है (पृ.47), हम समय की धरती पर पाँव रखकर चढ़ेंगे इतिहास की सीढ़ियाँ (पृ.74), नोटों के कफ़न में लपेटकर समझौतों के शमशान में दफ़न कर दिए जाते हैं (पृ.86), आँसुओं से नहाए थे दोनों के वक्ष स्थल (पृ.94), रोज जन्मती मरती है घर भर की पीड़ा हरती है (पृ.104)।** [64]

इसी तरह हरिराम मीणा के काव्य-संग्रह 'सुबह के इंतज़ार में' में भी मुहावरे तथा कहावतें काव्य रूप में देखे जा सकते हैं। यथा - **ठहर जाएगी घुमक्कड़ी जिंदगी तिरोहित होंगी ही आदिम-आस्थाएँ (पृ.30), नहीं छेड़ी हमने हिफाजती मुहिम मौसम के खिलाफ (पृ.32), जहरीले साँपों से हम खेलते रहे (पृ.33), समुद्रों में उठ रही हैं आग की लपटें (पृ.34), तुम्हारी आँखे तो भौंचक्की और पथराई-सी हैं (पृ.48), माचिस की डिब्बियों में तीलियों की तरह रहता**

है (पृ.51), और नफरत का एक काँटा चुभता है उसके भीतर (पृ.63), दहकती भट्टी से हाथ मिलाते हुए (पृ.69), सभ्यता का खंबा रोपने के लिए उसने गेंती से जगाया पथरीली धरती को (पृ.69), मैं बंद, कमरे में – भविष्य की चौखट पर आँखें जमाए (पृ.105)। [65]

भगवान गव्हाड़े के काव्य-संग्रह 'आदिवासी मोर्चा' में आए हुए मुहावरे तथा कहावतें, जैसे - **खौलता हुआ लहू हर पत्ते-पत्ते में (पृ.9), तितर-बितर हो गयी भीड़ (पृ.14), मेरे जीवन की धूप अँधेरे को चीरती हुई, ढिबरी के टिमटिमाते उजाले की तरह (पृ.15), तुम नींव की ईंट नहीं बल्कि नींव का पत्थर बनकर (पृ.16), मिट्टी की देह आखिर मिट्टी में मिल जाना (पृ.18), पैर उतने ही पसारो जितना तुम्हारा बिछौना (पृ.29), सिल जाती है जुबान, झुक जाती है शर्म के मारे गर्दन, साँप सूँघ जाता है) -पृ.45।** [66]

कुछ और उदाहरण जमुना बीनी तदार के काव्य-संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' से दृष्टव्य हैं - **एक कान से सुनती दूसरे से निकालती (पृ.10), रंग-बिरंगी तितलियाँ आँख मिचौली खेलती (पृ.10), मन भी कोई रंगीन सपने बुनता (पृ.10), पैसों का स्वाद चखा उनके जीभ को (पृ.17), कलेजा पर पत्थर रखकर यहाँ से भगाया था (पृ.23), कल्पना के परों पर सवार ये परियाँ (पृ.29), मिट्टी से उखड़ने का दर्द भी (पृ.33), चिराग तले अंधेरा (पृ.36), पौ फटने से पहले (पृ.58), कालिख पोत दिया माँ के मुख पर (पृ.66), हमारी संवेदनाएँ जंग खाती जा रही हैं वीभत्स रस में (पृ.98)।** [67]

उपर्युक्त मुहावरे और कहावतें आदिवासी कवियों के हृदय और मस्तिष्क से निकले वाक्यांश हैं जिन्होंने आदिवासी कविताओं को सौंदर्य तो प्रदान किया ही है, साथ ही कविता के अर्थ और

भाव को सरस, रोचक एवं प्रभावपूर्ण बनाया है। आदिवासी कविताओं में कठिन व दुरुह मुहावरे और कहावतें नहीं के बराबर हैं। जितने सरल और सीधे आदिवासी होते हैं उतनी ही सरलतापूर्ण उनकी भाषा और मुहावरे हैं जिसका पाठक सरलता से अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। कविताओं में कथ्य और प्रसंग के अनुसार सरल मुहावरों और कहावतों का प्रयोग हुआ है। इससे भाषा सरल, सरस एवं सहज बनी रहती है।

vii) अलंकार

अलंकार वैसे ही कविता की शोभा बढ़ाते हैं जैसे गहने-आभूषण नारी की शोभा बढ़ाते हैं। आदिवासी कविताओं में भी अलंकारों का प्रयोग मिलता है। आदिवासी जनकवि हैं। अस्मिता की खोज, मुक्ति की चाह, संघर्षों की पीड़ा, शोषण, अत्याचार के विरुद्ध जन्मी इनकी कविताएं केवल कवि बनने की दृष्टि से नहीं रची गई हैं। मन में उठी व्यथा, आक्रोश, चिंतन, क्रोध, सुख-दुख को शब्दों में पिरोए कविताएँ केवल अलंकरण की दृष्टि से भी नहीं रची गई हैं। ये तो स्वतः ही इनकी भावनाओं के साथ जुड़ते चले गए हैं।

आदिवासी कविताओं में शब्दालंकार-अर्थालंकार दोनों के उदाहरण मिलते हैं। कविताओं में जो अलंकार अधिक उपयोग हुए हैं; केवल उनका ही उदाहरण यहाँ दिया गया है। अर्थालंकार में उपमा, उत्प्रेक्षा, रुपक एवं मानवीकरण अलंकारों का सबसे अधिक प्रयोग इनकी कविताओं में मिलता है।

उपमा अलंकार

जहाँ एक वस्तु की तुलना दूसरी वस्तु से उसके समान गुण, धर्म, क्रिया आदि के आधार पर होती है, वह उपमा अलंकार कहलाता है।

आदिवासी कविताओं में उपमा अलंकारों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ ह, यथा -

वे जब हँसती हैं फेनिल दूध-सी निश्छल हँसी.. (पृ.17),

यहाँ उपमेय (हँसी) की तुलना उपमान (दूध) से की गई है। अन्य उदाहरण देखिए

रोप रही है अपना पहाड़-सा दुख (पृ.38)

काट रही है पहाड़-सा दिन (वही)

पहाड़-सी छाती (वही)

पहाड़-सा रंग (वही)

पहाड़ के छोटे-छोटे टुकड़ों-सा (वही)

उपर्युक्त उदाहरणों में 'पहाड़' शब्द का बार-बार प्रयोग कर जीवन की चुनौतियों और संकटों की तुलना इससे की गई है जिससे कविता का भाव गाम्भीर्य बढ़ जाता है। आदिवासी प्रकृति के कवि हैं। अपनी कविताओं में वे अपने जीवन, दिन, देह, छाती, रंग, दुःख आदि की तुलना पहाड़ से करते हैं। पहाड़ उनके जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है।

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' में आए उपमा अलंकार की कुछ छटाएँ काव्य रूप में यहाँ दृष्टव्य हैं। यथा: -

रस्सी में गाँठ-सी बाँध जो आयी हो मेरी शादी की तिथि (पृ.46)

आँगन में पड़े टूटे झाड़ू-सा पड़ी रह जाऊँगी कुछ न कुछ यहाँ (वही)

बेर गाछ पर बैठ पंडुक चिड़िया-सी (पृ.47)

मन उड़ियाने लगता है रूई के फाहे-सा (पृ.78) [68]

हरिराम मीणा के काव्य-संग्रह 'सुबह के इंतज़ार में' में प्रयुक्त उपमाएँ –

उभरे पठार-सी चौड़ी छाती (पृ.11)

धनुष की कमान-सी तनी माँसपेशियाँ (वही)

वह मुंडारी पहाड़ो-सी काली काया (वही)

अब गुंदी मिट्टी के लोथड़ा-सा तब्दील होने लगा (पृ.68)

हाथियों की तरह खुरंजा जमाते (पृ.71)

जिंदा होता रहा अग्नि पक्षी-सा (पृ.81)

अब ठूँठ-सा यह प्रश्न (पृ.98)

डरे हुए खरगोश-सी मेरी चेतना (पृ.107)

बेजान पेंडुलम-सी (पृ.111) [69]

उपर्युक्त उदाहरणों में कवि ने ऐसे बेजोड़ उपमानों का प्रयोग किया जिसे वे अपने रोजमर्रा के जीवन में देखते और जीते आए हैं और जिनको पढ़कर पाठक के हृदय में एक हलचल-सी मच जाती है। एक महत्वपूर्ण चीज यह भी की इन कवियों ने अधिकतर उपमान प्रकृति से ही लिए हैं जो इनकी प्रकृति-संबद्धता को पुष्ट करता है।

इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण यहाँ दृष्टव्य हैं जिन्हें अश्विनी कुमार पंकज के काव्य संग्रह 'खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता' में देखा जा सकता है –

बच्चों-सी उत्सुकता लिये (पृ.9)

पहाड़ की चोटियों-सी तनी है (पृ.22)

धर्म पठार की तरह नंगा हो गया है (पृ.35)

अफवाह रक्तबीज की तरह पैदा होती है (पृ.37)

शब्द मचलते हुए, बच्चों की तरह निकल आते हैं (पृ.49)

बच्चे हैं मासूम फूलों की तरह खुलो मैदानों में बयान की तरह (पृ.50)

और स्त्री से चौपाये की तरह पेश आता है (पृ.63)

मां की पहाड़ जैसी जिंदगी (पृ.73)

दर्द की तरह उमड़ती (पृ. 122)[70]

रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित पुस्तक 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' से अन्य उदाहरण -

तब-तब बरगद सी हुई वह (पृ.25)

गमले में किसी बोनसाई की मानिंद (वही)

मासूम धूप सी (पृ.38)

उधर ही झुक गए बांस की तरह (पृ.44)

कांपती लौ की तरह (पृ.60)

तुम्हारे विचार तिनके-से उड़ जाएंगे (पृ.62)

कलियां-सी खिल उठती थी (पृ.63) [71]

भगवान गव्हाड़े के काव्य संग्रह 'आदिवासी मोर्चा' से उपमा अलंकार के कुछ उदाहरण –

ढिबरी के टिमटिमाते उजाले की तरह (पृ.15)

पंखुरी-सा कोमल स्पर्श (पृ.69)

आज वह लक्ष्मण रेखा-सी बन गयी (पृ.77)

नये फ्लैट में पहली बार खिड़की से प्रवेश कर रही छिपकली-सा (पृ.81) [72]

जमुना बीनी तादार के काव्य संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' से कुछ उदाहरण देखिए –

लोरी जैसे हल्के-फुल्के गीत (पृ.20)

बच्चे-सा ज्यों ही रोने को था (पृ.123) [73]

उपर्युक्त उदाहरणों में ऐसे उपमान भी हैं जो बिल्कुल नए हैं। आदिवासी कवियों ने सरल भाषा में ऐसे बेजोड़ उपमानों का प्रयोग किया है। ऐसे उपमानों को पढ़कर यह स्पष्ट होता है कि कवियों ने अपनी भावनाओं एवं विचारों की प्रस्तुति के लिए कई नए उपमानों को जन्म दिया है। ये उपमान इनकी काव्य की भाषा एवं भाव के साथ बहुत ही सटीक बैठते हैं तथा काव्य सौंदर्य की वृद्धि में भी योगदान देते हैं। सरल से सरल शब्दों में हृदय को प्रभावित करने वाले ऐसे उपमान आदिवासी कवि ही गढ़ सकते हैं।

उत्प्रेक्षा अलंकार

जहाँ उपमेय (जिसकी उपमा दी जाए) में उपमान (जिससे उपमा दी जाती है) की संभावना की जाती है तो वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

आदिवासी कविताओं में प्रसंगानुसार उत्प्रेक्षा अलंकार की झलक मिलती है। जैसे - भगवान गव्हाड़े के काव्य संग्रह 'आदिवासी मोर्चा' से उत्प्रेक्षा अलंकार के कुछ उदाहरण –

जैसे भट्ठी में तपकर बन चुकी थीं खरा-सच्चा 'बावन कश्शी सोना (पृ.17)

जिंदगी के घने जंगल में, फिर से तुम शिरकत की

जैसे घनघोर घटा छायी, पहली बरसात की झड़ी लगी (पृ. 72) [74]

हरिराम मीणा के काव्य संग्रह 'सुबह के इंतजार में' से उत्प्रेक्षा अलंकार के कुछ उदाहरण –

मिली अंततः वह समुद्र में जैसे पिघला मोम में ऐसे (पृ.58)

अमूर्तन तो तिलिस्मी है जैसे हवा में कोई अदृश्य महल (पृ.62) [75]

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'बेघर सपने' से उत्प्रेक्षा अलंकार के कुछ उदाहरण देखिए -

जिसे देखकर मुझे लग रहा है कि यह मेरे भीतर से उठ रही तरंगे हैं (पृ.22)

मानो दोनों का दुःख एक हो (पृ.22)[76]

अश्विनी कुमार पंकज के काव्य संग्रह 'खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता' से उत्प्रेक्षा अलंकार के दृष्टांत देखिए –

- पसर जाते हैं जमीन पर मानों आरामदेह बिस्तरों वाला (पृ.105)

-हां, तुम आओ जैसे कोई नदी आती है (पृ.60)[77]

हरिराम मीणा द्वारा संपादित संग्रह 'आदिवासी, जलियाँवाला एवं अन्य कविताएं' से उत्प्रेक्षा अलंकार के दृष्टांत हैं –

-मस्तिष्क-कंदराओं के फाटक ज्यों धन के आघात (पृ.88)

-ज्यों वे आदमजात नहीं हो कर शिकार के लिए झुंड खरगोशों का हो (पृ. 90)

-आँखों में ज्यों देखा तो पथराथी आँखें पिघल गई (पृ.94)

-ज्यों वस्तुनिष्ठ कोई यथार्थ बह रहा भाव की धारा में (पृ. 94)

-ज्यों समय-सिंधु के तल में से मैंने कोई मोती खोजा (पृ.95)

-हुई तेज ज्यों अकस्मात बौराई (पृ.101)[78]

रूपक अलंकार

जहाँ उपमेय और उपमान एक रूप हो जाते हैं अर्थात् उपमेय को उपमान के रूप में दिखाया जाता है तो वहाँ रूपक अलंकार होता है।

हरिराम मीणा द्वारा संपादित संग्रह 'आदिवासी, जलियाँवाला एवं अन्य कविताएं' से रूपक अलंकार के उदाहरण हैं-

-षड्यंत्र-अश्व की ठोकर से मेरी सह-प्रतिभा हुई नष्ट (पृ.10)

-किंतु नहीं है लोक-मदारी ठोसतंत्र का (पृ.18)

-दिवस-ईश सूरज ज्यों जागा (पृ.20)

-शीत-रात्रि हिम क्रीड़ा करती (पृ.22)

-ज्यों समय-सिंधु के तल में से (पृ.95)[79]

अश्विनी कुमार पंकज के काव्य संग्रह 'खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता' से रूपक अलंकार के दृष्टांत देखिए –

-मुस्कराहट जो कि सरगुजा के फूल है (पृ. 22)

-फल है सपने, आओ सींचो इसे (पृ. 60)[80]

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' से रूपक अलंकार के दृष्टांत देखिए –

-यह कविता नहीं मेरे एकांत का प्रवेश-द्वार है (पृ. 88) [81]

इसी तरह हरिराम मीणा के काव्य संग्रह 'सुबह के इंतज़ार में' में भी रूपक के दृष्टांत देखे जा सकते हैं –

- **समय**

  हवा का बुर्का ओढ़कर

  आने वाले मौसमों की तासीर है

  या धूप

  या कि स्याह अँधेरा (पृ. 59)

- **परम्परा एक सड़ी हुई लाश**

  साहित्य व संस्कृति महज फैशन

  और भविष्य विकल्पहीन बकवास (पृ. 66)[82]

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'बेघर सपने' से रूपक अलंकार के कुछ उदाहरण देखिए

- कैसे भूल जाऊँ वह राक्षसी रात (पृ.14)

-मन-सिंहासन पर विराजमान (पृ. 15)

- **दिल जंग लगा हुआ ताला है**

  दुमका की मिट्टी से बना झारखंड का पठार हूँ मैं

  जंगल-पहाड़ों में खिलने वाला जंगली फूल हूँ मैं (पृ. 47) [83]

रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित 'आदिवासी स्वर और नई शताब्दी' संग्रह से रूपक अलंकार के कुछ दृष्टांत –

- देखकर उसका शमशान-नृत्य (पृ. 34)

- बन गया हूँ गीदड़ (पृ. 42)

- जो पहले फूल थी

वही आज कांटा है (पृ. 63) [84]

अश्विनी कुमार पंकज के काव्य संग्रह 'खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता' से रूपक अलंकार के कुछ और दृष्टांत देखिए –

-रिश्ते उतरी हुई कमीज हैं (पृ.92)

-मन पहाड़ हो जाता है, सांस हवा

हौंसला बरसाती नदी (पृ. 93) [85]

उपर्युक्त कवितांशों में हम देख सकते हैं किस प्रकार सरल और बिल्कुल बोलचाल की भाषा भी उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों को अपने आप में सँजोए रहती है।

मानवीकरण अलंकार

काव्य में जहाँ जड़ पदार्थों पर मानवीय भावनाओं का आरोप किया जाता है अर्थात् निर्जीव या जड़ पदार्थों को मानव की तरह व्यवहार या कार्य करते हुए दिखाया जाता है, वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है।

आदिवासी कविताओं में मानवीकरण अलंकार का प्रयोग कर कवियों द्वारा अपनी भाषा को और अधिक संप्रेषणीय बनाया गया है। निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' से मानवीकरण अलंकार के दृष्टांत देखिए –

-किस कदर रोती हैं नदियाँ? (पृ. 31)

-मौन समाधि लिये बैठा पहाड़ का सीना (पृ.32)

-हथौड़ों की चोट से टूटकर बिखरते पत्थरों की चीख?

- खून की उल्टियाँ करते देखा है कभी हवा को (पृ.32)

- मौन समाधि लिये बैठा बरगद (पृ. 84)[86]

रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित 'आदिवासी स्वर और नई शताब्दी' संग्रह से मानवीकरण अलंकार के कुछ दृष्टांत –

-क्या तुमने कभी देखा है पर्वत को रोते (पृ.23)

-क्या कभी नदिया लौट कर पूछेगी (पृ.24)

-उगल रही धरती आग है (पृ.26)

-बूढ़ा हो गया बरगद (पृ.38)

-सूरज कहां मानता है

वृक्ष नहीं जानते भेदभाव

नदियां चुनती हैं अपना मार्ग

शब्द है कि कागज पर ठहरते ही नहीं (पृ.63)[87]

अश्विनी कुमार पंकज के काव्य संग्रह 'खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता' से मानवीकरण अलंकार के कुछ और दृष्टांत देखिए –

-बाँधों की कैद में छटपटाती नदियों के बारे में (पृ.14)

-पठार के औंठों से लिपती (पृ.22)

-गाती हुई नदी (पृ.35)

-पहाड़ चुप है

आसमान बेचैन

- नदियों में घबराहट (पृ.86)

-गेट खड़े-खड़े थक चुके थे (पृ. 92)

-गदरायी जमीन को खा गयी सड़क (पृ.96)[88]

हरिराम मीणा के काव्य संग्रह 'सुबह के इंतज़ार में' में भी मानवीकरण के दृष्टांत देखें –

-पृथ्वी काँप रही है (पृ.53)

-लुढ़कती जा रही है पृथ्वी (पृ. 88)

-प्यासी धरती रही तड़पती (पृ.94)

-शीतकुण्ड में नहायी अमावस की स्याह रात (पृ.104)

-सड़क काँपती है

-सहमी काली रात

- घड़ी की सूई की अंतिम साँस

-सूई नीचे लटक गई (पृ.111)[89]

निर्मला पुतुल के काव्य संग्रह 'बेघर सपने' से मानवीकरण अलंकार के कुछ उदाहरण देखिए –

-घर मुझे बना रहा है (पृ. 76)

-हँसती हुई ऊँची-ऊँची इमारते हैं (पृ.78)

-और अँधेरा है कि

- भागने का नाम ही नहीं ले रहा है (पृ.78)[90]

भगवान गव्हाड़े के काव्य संग्रह 'आदिवासी मोर्चा' से मानवीकरण अलंकार के कुछ उदाहरण –

-रो रहा है पहाड़ आज आँसू भी सूख रहे हैं (पृ.11)

-बादल से कहो अपना धर्म निभा दे (पृ.35)

-महसूस किया घर का दर्द

-देखा गाँव का पुराना घाव (पृ.63)[91]

हरिराम मीणा द्वारा संपादित संग्रह 'आदिवासी, जलियाँवाला एवं अन्य कविताएं' से मानवीकरण अलंकार का यह काव्यगत उदाहरण –

-क्षत-विक्षत चौतरफा माहौल

अजनबी दिनों में बाँझ होती उम्मीदें

जादुई यथार्थ के तहखाने सा जीवन

झिझकता रहा हस्तक्षेप से

वही आदिजन का भूगोल

समय के पाटे पर निढाल पड़ा हुआ

असहाय सदमे में अधनंगा-भूखा शरीर

बेहोश दिमाग में घुस आती है (पृ. 83)[92]

आदिवासी कविताओं में अलंकार योजना जहाँ-तहाँ दिखती है। कविताओं में उपमा और मानवीकरण अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है। बेहद सरलता ली हुई भाषा में उपमा और मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग अत्यंत प्रभावशाली ढंग से हुआ है। आदिवासी समुदाय से आए हुए कवियों की कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। इसका कारण यह है कि प्रकृति उनका जीवन ही नहीं, उनकी प्रेरणा भी है। आदिवासी सरल भाषा के कवि हैं इसलिए उनकी कविताओं में अलंकार सप्रयास नहीं, बल्कि अनायास आए हैं। हम कह सकते हैं कि आदिवासी कवि अलंकारवादी कवि नहीं हैं।

प्रतीक

प्रतीक का अर्थ है चिन्ह, संकेत, आकृति आदि। प्रतीक का अंग्रेजी में अर्थ है- symbol (सिंबल)। किसी वस्तु को वास्तविक रूप में न देखकर/कहकर किसी अन्य वस्तु, अवस्था, स्थान, व्यक्ति आदि के रूप में प्रस्तुत करना प्रतीक व्यवस्था है।

डॉ. कृष्णबल्लभ जोशी प्रतीक के महत्व और प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "प्रत्येक कवि अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं के अनुसार ही अपना माध्यम चुनता है। अपने अनुभवों, भाव-बोधों तथा अपनी संवेदनाओं को वह पूरी सच्चाई से पाठकों तक पहुँचा दे, यही उसका अभीप्सित है। इस इष्ट की प्राप्ति के लिए वह कला के क्षेत्र में नये आयामों की खोज

करता है – नये बिंबो, प्रतीकों और उपमानों की संयोजना करता है। किन्तु ये अनुभूतियाँ और संवेदनाएं इतनी वेगवती होती हैं कि भाषा की पकड़ और उसका सारा कला-वैभव भी उन्हें पूरी तौर पर अभिव्यक्ति नहीं दे सकते। ऐसी अवस्था में उन अनुभूतियों को संकेतों, प्रतीकों तथा बिंबों से चित्रित किया जाता है।"[93] डॉ. नित्यानन्द शर्मा ने प्रतीक की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी हैं - "अप्रस्तुत अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु विधान को प्रतीक कहते हैं जो देश, काल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्र भावना को जागृत करता है।"[94] प्रतीक भावना को उत्पन्न या जागृत करने की शक्ति है। प्रतीकों के माध्यम से अनुभव, संवेदना, विचारों को अधिक प्रभावशाली ढंग से पाठक तक पहुँचाने में मदद मिलती है।

उदाहरणार्थ - सिग्नल की लाल बत्ती जलते ही सब रुक गए। रास्ते किनारे लाल झंडा देख यात्री वापस लौट आए। यहाँ लाल बत्ती और लाल झंडा क्रमशः रुकने और खतरे के प्रतीक बन गए हैं।

मनुष्य अपनी भावनाओं और विचारों को प्रकट करने के लिए सदियों से प्रतीकों का सहारा लेता आया है। साहित्य में भी रचनाकारों ने समय और स्थिति के अनुसार अपने ढंग से प्रतीकों की रचना की और उन्हें कविताओं में गढ़कर अपनी रचनाओं में अनुभवों एवं संवेदनाओं को अधिक प्रभावशाली ढंग से पाठकों तक पहुंचाने की कोशिश की है। आदिवासी कविताओं में संवेदनाओं के अनुरूप प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। प्रतीक संप्रेषण को सशक्त बनाने का हथियार है। कविताओं में अधिकतर ऐसे प्रतीक गढ़े गए हैं जो किसी घटना विशेष, राजनीति,

सामाजिक व्यवस्था, मानवीय संबंध, शोषण, भूख, गरीबी, पीड़ा, क्रांति, विद्रोह आदि से संबंधित हैं। निम्नलिखित कविताओं में प्रतीकों के उदाहरण देखे जा सकते हैं-

निर्मला पुतुल ने अपनी कविता 'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए' में एक आदिवासी स्त्री को कई प्रतीकों से जोड़कर उसके अंदर की संवेदनाओं को सफल रूप से पाठक तक पहुंचाया है। स्त्री के प्रतीक में स्थिरता न दिखाकर उसे गतिशील बनाते हुए कभी तकिया, कभी खूंटी, कभी घर, कभी डायरी तो कभी दीवार, गेंद या चादर का रूप दिया है। लेकिन ये प्रतीक पुरुष या स्त्री के संदर्भ में अलग अलग रूप धारण करते हैं। संदर्भ पितृसत्ता का हो तो प्रतीक अलग रूप में रचे जाते हैं। निर्मला पुतुल के प्रतीक तो प्रेम और वितृष्णा या घृणा को भी बेहतरीन ढंग से व्यक्त करते हैं। कविता पढ़ने सुनने में सरल दिखती है किंतु दैनिक जीवन की वस्तुओं को जब प्रतीक रूप में स्त्री के संदर्भ में जोड़ा जाता है तो अर्थ-संवेदनाएँ अधिक गहरी हो उठती हैं । निर्मला पुतुल जी की यह प्रतीक व्यवस्था देखिए -

क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए

एक तकिया

कि कहीं से थका-मांदा आया

और सिर टिका दिया

कोई खूँटी कि ऊब उदासी थकान से भरी

कमीज उतारकर टांग दी

× × ×

कोई घर कि सुबह निकला

शाम लौट आया

× × ×

कोई डायरी कि जब चाहा

कुछ न कुछ लिख दिया [95]

वर्षों से शोषित आदिवासियों की घुटन अब असहनीय और विस्फोटक बन गयी है। वह छिपी चिनगारी जैसी है। इस घुटन के लिए इस्पात, ज्वालामुखी, लावा जैसे प्रतीकों संदर्भानुसार सफल प्रयोग किया गया है। दिकुओं के लिए अतीत एवं वर्तमान जैसे प्रतीकों के प्रयोग मिलते हैं। हरिराम मीणा की प्रतीक योजना मानवीय संवेदनाओं की वाहक बनने में सफल सिद्ध हुई हैं। यह उदाहरण देखिए -

अतीत ने जिन्हें सरेआम सताया

वर्तमान ने बारीकी से छला भविष्य

× × ×

घुटन की झिल्ली में पैक विस्फोटक पदार्थ

पदार्थ के निकट राख़ में छिपी चिनगारी

गर्भ के तल में पकती हुई इस्पात की धार

लंबी नीद से ऊब चुका ज्वालामुखी

जिसके पेट में खदबदाता लावा।[96]

आदिवासी लड़कियों के लिए वंदना टेटे ने अपनी कविता में सुंदर और मौलिक प्रतीकों का प्रयोग किया है जो आदिवासी लड़कियों की विशिष्टताओं को व्यक्त करते हैं और इन लड़कियों को देखने का एक नया दृष्टिकोण देते हैं। लड़कियों के लिए 'छप्पर', 'फसल', 'आग', 'रोशनी', 'लाठी' जैसे प्रतीकों का बेजोड़ प्रयोग देखें -

लड़कियां

घर की छप्पर

खेत की लहलहाती फसल

चूल्हे की आग

बूढ़ी आँखों की रोशनी

और

झुकी कमर की लाठी होती हैं।[97]

आदिवासी स्त्रियों के साथ हो रहे धोखे और छलावा का जमुना बीनी तादर ने अपनी कविता 'परीकथा' में दानव, परी, स्वर्ण–पिंजरा जैसे प्रतीकों का सार्थक और साहसपूर्ण प्रयोग किया है -

रोजगार का

सब्जबाग दिखा

ये दानव

इन परियों को

नकली स्वर्ण-पिजरों में

करते कैद।[98]

आदिवासी कविताओं में प्रतीकों के कई उदाहरण हैं। प्रकृति और जीव-जंतु जिनके ये सबसे करीब हैं, वही इनकी कविताओं में प्रभावशाली ढंग से प्रतीक बनकर आते हैं। गरीबी, भूख, विडंबना, अराजकता, राजनीति आदि से संबंधित बेजोड़ प्रतीक इन कविताओं में देखने को मिलते हैं। जैसे कि -

स्वागत किया सूरज का

गले मिलाया चंदा को

मैंने की हवाओं से बातें

पक्षियों से की मुलाकातें

× × × ×

जानी पीड़ा शेर की

सुना बाघ का भाषण

जो करते है जंगल पर

राज और अनुशासन

लिया बकरी का साक्षात्कार

डांट दिया बिल्ली को

की बहस कुत्तों से

चारा डाला बैलों को

पिलाया गऊ को पानी [99]

ये निरीह, निराश्रित बंदर

बैठे निहार रहे हैं,

× × × ×

इसके अतिरिक्त यह प्रतीक व्यवस्था भी देखिए -

इसलिए नहीं कि

वह कत्ल या चोरी करेंगे

शायद इसलिए कि वह भूखे हैं [100]

सुन लो ऐ! मठाधीशों,

अब बहुत हो चुका नंगा नाच।

× × × ×

भ्रष्टता के रक्त से

तुमने अपनी बगिया सींची।

आज हम डालेंगे तुम्हारे

नागफनी के बगियों में गर्म पानी,

× × × ×

क्योंकि यह देश है हमारा

और हम यहाँ के पांडव। [101]

अश्विनी कुमार पंकज की कविता 'सोनचांद' में सोनचांद केवल एक आदिवासी लड़की का नाम भर नहीं है। वह प्रतीक है समस्त आदिवासी स्त्रियों का जो अपनी भूमि की लड़ाई में सर पर कफन बाँध कर चलती है। वह ऐतिहासिक आदिवासी क्रांतिकारी नारी 'सिनगी दाई' की प्रतीक है। कवि ने सोनचाँद की मुस्कराहट के लिए गतिशील प्रतीकों का प्रयोग कर उसे हर जंगल, पठार, पहाड़ों तथा फूलों में जीवित रखा है -

जोन्हा प्रपात-सी

सौम्य, निर्मल, शांत और पवित्र

मुस्कराहट जो कि सरगुजा के फूल हैं

× × × ×

मौसम कि असभ्यता के विरुद्ध

बिवाई फटे खेतों में

दूर-दूर तक पसरी सोनचांद की मुस्कराहट

पहाड़ की चोटियों-सी तनी है

× × × ×

दावेदार है जंगल की

सिनगी दाई की तरह

× × × ×

विस्थापन के विरुद्ध

सरगुजा के फूलों का आक्रोश है

प्रकृति के युद्ध में शामिल

सरगुजा के फूलों का चटख रंग है

तूफानों को लयमय प्रवाह देती

जिंदगी की गीत है

× × × ×

सोनचांद

जैसे

हजार-हजार फूलों के बीच

एक टहकता हुआ पलाश [102]

युवा कवि मुन्ना साह ने अपनी कविताओं में छोटी-छोटी चीजों को प्रतीक बनाकर अपनी अभिव्यक्ति में ताजगी और नयापन भरा है। उनकी कविता 'मिट्टी का दीया' एक आदिवासी का प्रतीक बनकर आया है जो वर्षों से जलता हुआ प्रेम और प्रकाश फैलाता है किंतु यह मिट्टी का दीया बुझ जाता है क्योंकि उस दीये को बुझने से कोई नहीं बचाता -

मिट्टी का दीया

प्रेम का दीया

× × × ×

हवाओं के झोंके बार-बार आते

बुझाने के प्रयास में

× × × ×

वर्षों से जलता हुआ दीया

बुझ जाता है [103]

'गौरैया' कविता में गौरैया गैरों द्वारा शोषित, लाचार आदिवासी स्त्री का प्रतीक है जिसका सब कुछ छीन लिया गया है। खेत-खलिहान, तालाब सब सूने है। वह भूख से तड़पती हुई यहाँ-वहाँ भोजन की तलाश में भटक रही है-

उड़ी डाल से गौरैया

अन्न की तलाश में

खेतों में उड़ती रही

खलिहान भी सूना-सूना

तालाब भी सूखे

नीबू की डाल पर

पुनः बैठी गौरैया

मुख फैलाये

आकाश की ओर निहारती

बादल को चलते देखा

पर किसी ने मिटा दी है

गौरैया की

जीवन रेखा। [104]

महादेव टोप्पों की कविता 'बदल डाला है खुद को कुछ ऐसा' में आदिवासी 'सखुआ का पेड़' बनकर आए हैं जिसे साजिशों के तहत उखाड़ फेंक दिया जाता है। अब ये इतने जिद्दी हो गए हैं कि फिर कहीं थेथर पौधे की तरह कभी भी किसी भी मौसम में निकल आते हैं। इन्हें मिटाना इतना आसान नहीं-

जीते थे कभी

सखुआ पेड़ की तरह हम

जड़ से उखाडों

रोपों कहीं और

जाते थे मर

××××

अब उग आते हैं सखुए की तरह तो नहीं

जिद्दी, बेशर्म थेथर पौधे की तरह

कहीं भी, किसी भी मौसम में [105]

आदिवासियों का गहरा लगाव है- प्रकृति, अपनी जमीन और संस्कृति से। इसलिए इनकी कविताओं में प्रकृति के विभिन्न अंग यथा पहाड़, जंगल, पेड़-पौधे, नदी, पशु-पक्षी, मिट्टी तथा

संस्कृति के जुड़े माँदर, बांसुरी, धनुष-तीर जैसे शब्दों से हम बार-बार रूबरू होते हैं। महादेव टोप्पो अपनी कविता 'माँदर का साथ' में माँदर को कई प्रतीकों से जोड़कर कविता में सौंदर्यानुभूति का विकास और विस्तार करते हैं। माँदर के प्रति आदिवासियों की संवेदनाओं का नया रूप सामने आता है-

मिट्टी की सोंधी महक है माँदर

बसंत की मादक सुगंध है माँदर

हमारे खेत-खलिहानों का रक्षक भी है माँदर

अगहन की ठंड में तन में ऊर्जा भरता अंगार

भी है माँदर

× × × ×

जीवन है, भाषा है, साँस है, गीत है,

हिम्मत है, सपना है, आशा है

पुरखों के संघर्ष की प्रेरणा है

विरोध और असहमति का गर्जन भी है

एकजुट होने का संदेश भी है

उलगुलान का जोश भी है

शांत रहने का होश भी है

पसीनों से नहायी देह की पवित्र गंध

हरे खेतों, धान भरे खलिहानों का सपना [106]

नागालैंड की कवयित्री तेमसुला आओ की कविता 'पहाड़ के बच्चे' में परिस्थिति और संदर्भ के अनुसार आदिवासी बच्चों को पहाड़ के बच्चे, काव्यात्मक, राजनैतिक, बर्बर, लयात्मक, पानी के खोजकर्ता, आग के योद्धा, बहुभाषी, दुनिया, उन्मत्त प्रेमी, शिल्पकार, किसान, शिकारी, कलाकार, गायक, दार्शनिक, गृह-निर्माता, नगरों के विध्वंसक आदि प्रतीकों से व्यक्त किया है। पूरी कविता पहाड़ी बच्चों के लिए बेजोड़ और नए-नए प्रतीकों का प्रयोग कर बच्चों में छुपी अनोखी प्रतिभा को उजागर करती है। काव्य में अलग-अलग प्रतीक गतिशीलता के साथ प्रकट हुए हैं जो कविता में सजीवता लाते हैं-

पहाड़ के बच्चे

काव्यात्मक और राजनीतिक

बर्बर और लयात्मक

पानी के खोजकर्ता

और आग के योद्धा

× × × ×

पहाड़ के बच्चे

रचने गढ़ने वाले शिल्पकार

उपजाने वाले किसान

शिकारी और कलाकार

गायक और दार्शनिक

उदात्त प्रेमी और अगुआ जंगली

गृह-निर्माता और नगरों के विध्वंसक[107]

बिंब

बिंब शब्द का अर्थ है छाया, परछाई, तस्वीर! अंग्रेजी में बिंब का अर्थ 'image' है। काव्य में बिंब वह शब्द चित्र है जो कल्पना द्वारा किसी अमूर्त वस्तु को मूर्त रूप प्रदान करता है। कवि किसी वस्तु की छवि पहले निर्मित करता है फिर कल्पना को शब्दों के माध्यम से भाव देता है जिसका इंद्रियों से अहसास कराया जाता है। डॉ. जयनाथ नलिन बिंब के महत्व एवं उपयोगिता पर लिखते हैं "बिंब में भावों की अराजक, अनियंत्रित, गुम्फित, गुंजलों में उलझी, अवचेतन मन: की कुंठाए और चेतन मन की स्पष्ट गोचर भावनाएं व्यक्त हो सकती हैं। क्योंकि बिंब में विविध रंग, स्पर्श, शब्द, गंध, स्वाद आदि और उनके प्रभाव विभिन्न उपमानों से व्यक्त कर दिए जाते हैं। व्यंजना तो बिंब में भी रहती है, लेकिन वह अभिधात्मक अभिव्यंजना पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों की हिंदी में नयी व्याख्या का स्वरूप भी लिए होती है। इसलिए बिंब काव्य की बोध ग्राह्यता के कारण अधिक सहज और उपयोगी है।“[108]

बिंब शब्दों की भावनात्मक रचना है अर्थात बिंब एक शाब्दिक चित्र है जिसमें एंद्रियता अनिवार्य है। बिंब न केवल कथ्य को रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं बल्कि पाठक के मन में

इंद्रियों द्वारा एक प्रभावशाली तस्वीर भी रचते हैं। बिंब से काव्य का कथ्य अधिक स्पष्ट और अधिक प्रभावी बनता है।

आदिवासी कविताओं में बिंब का प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करने हेतु नहीं हुआ है, बल्कि अपने भाव -विचार, परिस्थितियों को सरल भाषा में नए-नए बिंबों के प्रयोग से संप्रेषित किया गया है। ये बिंब स्वतः कविता में बनते गए और कविता में पूर्ण जीवन प्रस्तुत करते गए। आदिवासी कविताओं में पाए जाने वाले निम्नलिखित एन्द्रिक बिंबों का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाएगा, जो इस प्रकार हैं –

1. दृश्य बिंब / चाक्षुष बिंब
2. स्वाद बिंब
3. गंध बिंब
4. श्रव्य बिंब
5. स्पर्श बिंब
6. मिश्रित बिंब

आदिवासी कविताओं में बिंबों के विविध उदाहरण मिलते हैं। कवि जिन परिस्थितियों में, जिस समाज में जीवन जिया, उसी के अनुरूप उनके काव्य में बिंबों का प्रकटीकरण देखा गया है। उनके सुख-दुख, संवेदनाएँ, क्रोध, संघर्ष, भाव और विचार उनके बिंबों द्वारा अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुए हैं।

1. दृश्य बिंब/ चाक्षुष बिंब

आदिवासी कविताओं में दृश्य बिंब/चाक्षुष बिंब की प्रधानता दिखाई देती है। कविताओं में वस्तु, व्यक्ति, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, प्राकृतिक, धार्मिक, साहित्यिक पौराणिक, ऐतिहासिक स्थितियों एवं घटनाओं के बिंब अधिक सजीव, विश्वसनीय और प्रभावशाली होकर आए हैं-

(i) वस्तु बिंब

बाँस जो कभी छप्पर में लगता है तो कभी
तंबू का खूँटा बनता है
कभी बाँसुरी बनता है तो कभी डंडा
सूप, डलिया हो या पंखा
सब में बाँस का उपयोग होता है। [109]

(ii) व्यक्ति बिंब

वह जो सर पे सूखी लकड़ियों का गट्ठर लादे
पहाड़ से उतर रही है
पहाड़ी स्त्री
चादर में बच्चे को
पीठ पर लटकाये
धान रोपती पहाड़ी स्त्री [110]

(iii) आर्थिक बिंब

बेचता कोसा महुआ

सराई का गोला

फिर भी

जुटा नहीं पाता

तन ढकने को कपड़े

घुटने के ऊपर

कमर में लटकता चिथड़ा

लंगोट का [111]

(iv) राजनैतिक बिंब

हमारी भलाई में जुड़ी होने का करती हैं दावा

पार्टियाँ हो दक्षिण, वाम या मध्यमार्गी

सदा करती है हमारे हित की बात

हम जादूगोड़ा में गल रहे हो

नर्मदा में डूब रहे हों

उड़ीसा में चाहे भूखे मर रहे हों

या देश में कहीं गालियाँ या गोलियाँ खाकर मर रहे हों

या दामोदर का पी रहे हों गंदा पानी

बताया जाता है

हमारे लिए कहीं-न-कहीं विकास का कार्य, है प्रगति पर [112]

(v) सामाजिक बिंब

भरी दुपहरिया में

अपनी बेटी से ढिल हेरवाते

शरबतिया भी दिखी है वहाँ कई बार

गुजरते राहगीर भी

दिखे हैं कई बार सुस्ताते वहाँ

देखा है उसके आस-पास

गाँव-भर के बच्चों को दौड़-भागकर

हँसते-खेलते [113]

(vi) प्राकृतिक बिंब

बारिश की सौंधी महक

ले आई है अपने साथ

उफियों की बारिश

नन्हीं आदि पुलक-पुलक

चुन रही है जैसे-

गिर रहे हैं महुए

या कि

उड़ रहे हैं जैसे –

फूल सरई के

फिर्र- फिर्र-फिर्र .....[114]

(vii) धार्मिक बिंब

मंदिर में दीये जलाने वाले उसके हाथ

अब चर्च की चौखड़ पर खड़े मोमबत्तियाँ जलाये मिन्नतें कर रहे हैं

अज़ान के दौरान भी खुदा से उम्मीदें बढ़ जाती हैं उसकी। [115]

(viii) साहित्यिक बिंब

अपने परिवेश की पहचान करने से बचा है कवि कौन?

कबीर, मुक्तिबोध, धूमिल, सुकांत

पाब्लो, पाश, सीताकांत, अरुण कमल,

ज्ञानेंद्रपति, नारायण सुर्वे, भुजंग

गिनाऊँ नाम और कितने?[116]

(ix) पौराणिक और ऐतिहासिक बिंब

शबरी के जूठे बेर खाकर बनवास में राम रह सके जीवित

वीरांगना झलकारी के प्राणार्पण से हुई रानी लक्ष्मीबाई की जीत

कालीबाई सिनगी दई के राष्ट्रप्रेम से हुआ इतिहास सुसज्जित [117]

उपर्युक्त बिंबों से स्पष्ट होता है कि आदिवासी कविताओं में चित्र खींचने का जबरदस्त कौशल है। आम बोलचाल की भाषा में रचित विभिन्न बिंबों के प्रयोग ने जीवन के लगभग सभी पहलुओं को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया है।

आदिवासी कविताओं में स्वाद, गंध, श्रव्य, स्पर्श बिंबों में अत्यंत सजीवता, सरसता दिखाई देती हैं। कविताओं में श्रव्य बिंब के बेजोड़, सजीव उदाहरण दिखते हैं। ये बिंब इनके अपने ही लोक-जीवन के बीच से चुनकर देशज शब्दों के मिश्रण के साथ प्रकट हुए हैं -

स्वाद बिंब

नहीं है 'टोकी' में अब

'पियार' और 'पिठोर' की मिठास [118]

महुआ लट्ठा, इमली के बीज के साथ

औटाया गया खाने का स्वाद

× × × ×

आग में पके शकरकंद और मछली का स्वाद [119]

आता है याद लाल चींटी का स्वाद

आग में भुने तीतर का स्वाद, पोठी मछली का स्वाद [120]

2. गंध बिंब

और धूप में धुमसाए

घास की गंध

मेरे नथुनों में समा जाती। [121]

बारिश की सोंधी महक

ले आई है अपने साथ [122]

और बेहद प्रिय लोगों की तरह होती है मिट्टी

जिसकी गंध सकून देती है ताउम्र [123]

जैसे ही उसने डायरी खोली

एक बेहद खुशनुमा गंध हवा में तैर गयी [124]

पसीने की तरह

उमड़ पड़ूँगा मैं

और तेज-तीखी गंध से[125]

3. श्रव्य बिंब

बूढ़े की मनपसंद खीर

चूल्हे पर खदर- खदर सीझ रही है [126]

हाट –बाजार में हल्ला हुआ

नगाड़ा, ढोलक पीटे गए। [127]

सुना है कभी

किस कदर रोती है नदियाँ?[128]

फिसलकर गिरते रहते रहे

भरभरा कर सर्र sss से नीचे [129]

कुछ नगाड़े बजाकर मचा रहे हैं शोर

कुछ साहसी बच्चे फोड़ रहे हैं पटाखे [130]

पेट में भूख से सिकुड़ी उसकी आँतों को

सुनो उन आँतों का आर्तनाद [131]

किसी ने बाहर से सांकल खड़खड़ाई [132]

व्हिसिल बजती है

आवाज - ठक-ठक –ठक –ठक

पुलिस की गश्त [133]

फुसफुसाता है-

“स्स sss

ध्यान से सुनो [134]

जुबान की बोली समझते

चल रहे हैं पागुर भांजते

दूर से मांदर की आवाज

कुहू पक्षी की आवाज से

सुरीला होता हुआ वातावरण [135]

होगी भी सुबह दादा

तो घंटे बजेंगे

घड़ियाल बजेंगे

लाउडस्पीकरों में

फिल्मी धुनों पर भजन बजेंगे [136]

गगनचुंबी वृक्षों तक

धाय –धाय आवाजों के बीच [137]

4. स्पर्श बिंब

मगर खरोचों के अलावा

कोई हादसा नहीं हुआ।- पृ. 32

जिसका सारा बदन लहूलुहान

चेहरे और छाती पर उभरे थे

जंगली सूअर के दाँतों के निशान

जाँघ और पिण्डलियों पर आई हुई थी

नारियल के खुरदरे तनों की खरोचें - पृ. 38

तुम्हारी नसें तन रही हैं

तुम्हारी भुजाएँ फड़क रहीं हैं - पृ. 43

पर देखो, मेरा भी जीवट-देहके

जिस-जिस हिस्से पर घाव हुए- पृ॰ 82

कड़कड़ाती ठण्ड का जोरदार थप्पड़

नाक पर हुआ हिमपात

गालों पर पड़ा पाला

कटकटाती बत्तीसी

पूरे बदन में फैलती धड़धड़ी- पृ. 104 [138]

मुझे हरदम पाओगे

कीचड़ से सने कुम्हार की हथेली में

बोझ ढोते कुलियों के पसीने में

लुहार के हथौड़े में, धूप में कर्मरत किसानों

के चेहरे की झुर्रियों में

जंगल दर जंगल भटकते हुए शहद जमा करती

आदिवासी स्त्री के पैरों की बिवाई में [139]

चोटी पर पहुँचकर

पसीने से तर-बतर [140]

मेरी कोमल उँगलियाँ

आप्पा का खुरदरा

मिटी से सना

हाथ को थाम- पृ.11

हल्की- हल्की

पड़ी देह पर

जब ये बुँदे

अगले ही पल

हुई कंपकंपी

आए ज्यों

बेदर्द सर्दी- पृ॰ 111 [141]

5. मिश्रित बिंब

हिम्मत, सपना, संघर्ष और जोश, तो कभी शांत जैसी एक साथ कई स्थितियों के आभास के साथ-साथ स्पर्श और गंध बिंब का सुंदर उदाहरण कविता की इन पंक्तियों में मिलता है-

हिम्मत है, सपना है, आशा है

पुरखों के संघर्ष की प्रेरणा है

विरोध और असहमति का गर्जन भी है

एकजुट होने का संदेश भी है

उलगुलान का जोश भी है

शान्त रहने का होश भी है

पसीनों से नहायी देह की पवित्र गंध [142]

अंत में कहा जा सकता है कि आदिवासी कविताओं में प्रायः सभी प्रकार के बिंबों के प्रयोग मिलते हैं। अपनी सरल बोलचाल की भाषा के माध्यम से बिंबों का सफल प्रयोग हुआ है, पाठक के मन में वही चित्र उभरते हैं जो कवि दिखाना चाहता है। आदिवासी कवियों ने अपने ही ढंग से बिंबों का प्रयोग किया जिसमें मौलिकता देखी जा सकती है।

आदिवासियों की तरह ही आदिवासी कविताओं के बिंबों में भी आदिवासीपन झलकता है।

ख) शैली

किसी भी विषय की अभिव्यक्ति अथवा लेखन में भाषा जितनी महत्वपूर्ण होती है उतनी ही महत्वपूर्ण शैली होती है। कहने का ढंग ही शैली है अर्थात कवि जिस प्रकार अपने भाव-विचार को प्रकट करता है, उसे ही शैली कहते हैं। शैली साहित्यकार के व्यक्तित्व का आइना होती है। इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता शोषित, पीड़ित और अपमानित भोले-भाले साधारणजनों की संघर्ष की कविता है। जो भी कहा बिना लाग-लपेट के सीधे-सीधे कहा। कविता सौन्दर्य पक्ष से अधिक भाव पक्ष को महत्त्व देती है। कविताओं में उनके दुख–दर्द हैं, आक्रोश है जो बिना किसी सजावट के अभिव्यक्त हुए हैं। संप्रेषण ही कविता का मुख्य ध्येय है। अलंकार, प्रतीक, बिंब स्वतः ही काव्य में जुड़ते गए। आदिवासी कविताओं में वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, भावात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, व्यंग्यात्मक कथा-शैली, संवाद शैली, कल्पनात्मक शैली, प्रश्नात्मक शैली, विरोधात्मक शैली, आलोचनात्मक शैली और विचारात्मक शैली के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जो अत्यंत रोचक, संवेदनायुक्त और संप्रेषणीय हैं।

1. वर्णनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली में किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, दृश्य या किसी घटना का वर्णन होता है। आदिवासी कविताओं में वर्णनात्मक शैली के कई उदाहरण मिलते हैं। कवियों ने भाषा में

सरलता एवं सहजता से इस शैली का प्रयोग किया है। 'सबसे डरावनी रात' कविता में कवयित्री निर्मला पुतुल ने उस डरावनी रात की घटना का वर्णन अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया है-

घुस आयी तुम कमरे में
गोरी चिट्टी चमड़ी वाले उस अधेड़ पुरुष के साथ
फुसफुसाहटों में बोलती हुई
आहिस्ता.....आहिस्ता दबे पाँव
इधर-उधर झाँकते हुए
सिर्फ पेटीकोट में लिपटी [143]

कवयित्री जमुना बीनी तादर अपने गाँव में बने घर का वर्णन अत्यंत सरल ढंग से इस प्रकार करती है-

यह नाम्दा है हमारा
यानि गाँव का
सबसे बड़ा घर
बाँस के बने
इस घर में
कुल चौदह अंगीठियाँ
जब ये सारी

एक साथ

जल उठतीं

तब रोशनियाँ

घर के छिद्रों से

तैरकर बाहर निकलतीं

और बाहर

खूब उजाला फैलता [144]

2. कथा शैली

कथा शैली के माध्यम से भी आदिवासी कवि अपने विचार और भाव पाठकों तक पहुंचाने में सफल हुए हैं -

कहीं किसी समय

किसानों का एक गाँव

हुआ करता था

गाँव में

बहुत खुशहाली थी

खूब खेती होती थी

धान रोपी जाती थी [145]

3. संवाद शैली

संवाद शैली के माध्यम से आदिवासी कवियों ने समाज में फैले भ्रष्टाचार, न्याय, प्रशासन पर व्यंग्य कसे हैं जो कविता में रोचकता और बौद्धिकता का भाव उत्पन्न करने में सक्षम हुए हैं। रामदयाल मुंडा की कविता 'कथन शालवन के अंतिम शाल का' में राजनैतिक मंत्री जी स्वयं पर ही व्यंग्य प्रकट करते दिखते हैं -

मंत्रीजी अपने बेटे से पूछ रहे थे-

"जानते हो बेटे, हम क्यों शाल के बदले

यूकेलिप्टस के पेड़ लगवा रहे हैं?"

"कौन से पेड़, पापा?"

"यूकेलिप्टस, वही, जो आसमान में ऊँचे पतले उठते हैं"।

"वही खजूर की तरह बिना छाया वाले?"

"हाँ-हाँ, वही। पता है क्यों ?"

"नहीं पापा, मुझे मालूम नहीं। .....क्यों?"

"बेटे, हम ऋषियों की

एक नई परंपरा शुरू करना चाहते हैं।

जो पेड़ों के नीचे न बैठकर

उनकी चोटियों पर बैठा करेंगे"। [146]

4. कल्पनात्मक शैली

आदिवासी कविताओं में कवियों ने कल्पना शैली का प्रयोग कर अपनी भाव-संवेदना प्रकट की हैं। रवि कुमार गोंड की कविता 'आदिवासी स्त्री की कल्पना' का यह उदाहरण देखें -

शाम हुई और सूर्य छिपा

मंद-मंद सा झोंका

यूँ मुझसे कुछ कहने लगा।

चीड़ों का पेड़ खड़ा

जैसे मुझसे कुछ कह रहा,

जल्दी आओ हे देश के आदिवासी,

ले लूँ तुम्हारे दुख दर्द सभी। [147]

5. प्रश्नात्मक शैली

प्रश्नात्मक शैली का सुंदर उदाहरण महादेव टोप्पो की कविता 'आप क्यों हँसते हैं' में मिलता है-

आप क्यों हँसते है?

देखकर हमें।

कम कपड़े पहनते है इसलिए ?

काले दिखते हैं इसलिए

जंगल बीच गाँवों में रहते हैं इसलिए?

आपकी तरह लिख-पढ़ नहीं पाते हैं इसलिए?

आप क्यों हँसते हैं?[148]

प्रश्नात्मक शैली के साथ-साथ प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग भी है-

इसलिए हमने उस बूढ़े से पूछा –

“जीवन क्या है?”

.....“रतालू के पत्तों से गिरती पानी की क्षणिक बूँद”

“और इतिहास क्या है?”

.....“अमीरों और प्रसिद्ध लोगों की कहानियाँ,[149]

6. विरोधात्मक शैली

आदिवासी कविता प्रतिरोध की कविता है। कविताओं में शोषण, अपमान झेलते इन आदिवासियों के विरोध के स्वर तेज हो रहे हैं। विरोधात्मक शैली में आदिवासियों ने उन तमाम प्रस्तावों, बंधनों तथा न्याय व्यवस्थाओं का विरोध किया है जो उन्हें मंजूर नहीं हैं -

हमारे संसाधनों को हमसे छीनकर

विकास के ऊँचे शिखर तक पहुँचे हैं वे

जानती हूँ, सब जानती हूँ

क्षमा करना

नकारती हूँ तुम्हारे इस विकास प्रस्ताव को

जो पटना, रांची, दिल्ली से बनाकर लाए हो तुम हमारे लिए। [150]

एक अन्य उदाहरण -

नहीं चलेगा अब तुम्हारा

मठाधीशी का तांडव

क्योंकि यह देश है हमारा

और हम यहाँ के पांडव ।

बहुत राज किया तुमने हम पर,

बहुत की मनमानी। [151]

7. आलोचनात्मक शैली

आदिवासी कविताओं में विरोध के साथ-साथ आलोचना के स्वर भी अधिक हैं। 'तुम्हारी मुख्य-धारा में' कविता में महादेव टोप्पो ने मुख्यधारा की आलोचना की है -

मुख्य–धारा में तुम्हारे

और देख रहा हूँ अब

न सहृदयता

न शिष्टाचार

न सहयोग

न स्वच्छता

न सच्चाई

न ईमान

न करुणा

न दया

न एकजुटता

नहीं, वहाँ वह कुछ नहीं, जिसे समझूँ मैं

पवित्रता तुम्हारी मुख्यधारा की

इसलिए चाहता हूँ लौटना [152]

एक अन्य उदाहरण-

हमारी सरकार हमसे

हमारी जमीन छीनकर

विदेशी कंपनियों को उपलब्ध करा रहे हैं

हम चुप हैं

रोजगार गारंटी योजना के तहत

हमें जॉब कार्ड मिला

पर काम नहीं मिल रहा

महिला घरेलू हिंसा विधेयक पारित हुए

जगह-जगह गोष्ठी–सेमिनार आयोजित होते रहे

बावजूद इसके बलात्कार, उत्पीड़न

जैसी घटनाएँ उत्तरोतर बढ़ती रहीं

हम चुप हैं [153]

8. भावात्मक शैली

इस शैली का प्रयोग कविताओं में अधिक मिलता है। आदिवासी कविता यथार्थ के ऐसे धरातल पर लिखी कविता है जहाँ दुख है, कष्ट है, क्रोध है, विरोध है और मुक्ति का संघर्ष है। इनके संघर्ष और पीड़ा को महसूस कर पाठक के मन में उत्तेजना, चंचलता, संवेदनाएँ तीव्र गति उमड़ पड़ती हैं-

कैसी विडंबना है

जमीन पर बैठे बुनती हो चटाइयाँ

और पंखा बनाते टपकता है

तुम्हारे करियाये देह से टप....टप ....पसीना। [154]

एक अन्य उदाहरण-

रोज कंक्रीट के ओखल में

पिसते हैं उनके तलवे

और लोहे की ढेंकी में

कुटती है उनकी आत्मा [155]

9. विचारात्मक शैली

इस शैली के माध्यम से कवियों ने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि विषयों पर अपने विचारों को प्रस्तुत किया है जिसका संबंध पाठक के हृदय से कम, मस्तिष्क और बुद्धि विवेचन अधिक है-

मैं जानता हूँ, नए जंगल भी लगेंगे
किंतु वह शालवन नहीं होगा
कॉमर्शियल पेड़ होंगे।
जिसका अर्थ हुआ
कॉमर्स से जिसे काम नहीं
उसके लिए ये पेड़ किसी काम के नहीं। [156]

10. चित्रात्मक शैली

चित्रात्मक शैली का प्रयोग भी आदिवासी कविताओं में विपुल मात्रा में दिखता है। इस शैली से कवियों ने घटना, स्थान, वस्तु, व्यक्ति, विभिन्न परिस्थितियों के बेजोड़ और सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं जो पाठक के इर्द-गिर्द घूमते नजर आते हैं-

कुत्ते भौंक रहे हैं दूर
मगर आवाज बहुत निकट जैसे
मेरी रजाई पर चक्कर काटती

कान बंद करता हूँ अंगुलियों से

छाती से सटाता हूँ दोनों घुटने

घुटनों तक ले जाता हूँ माथा

माथे में छिपी हुई

डरे हुए खरगोश–सी मेरी चेतना [157]

एक अन्य उदाहरण-

जंजीर से जकड़े

भरी अदालत में

हट्टा-कट्टा, सुडौल डील-डौल

उसे मुजरिम की तरह पेश किया गया

कड़क, खूँखार

आँखें रक्तरंजित सा [158]

11. आत्मकथात्मक शैली

कवि अपने जीवन में घटित घटनाओं, अनुभूतियों को स्वयं अनुभव करता हुआ कविता में प्रमुख पात्र या अन्य पात्र का स्थान ग्रहण कर स्वयं की ओर से घटना का चित्रण करता है तो वह आत्मकथात्मक शैली कहलाती है। आदिवासी कविताओं में इस शैली की बहुलता दिखाई देती है -

मैं जब भी लौटती हूँ यहाँ

और ताला खोलकर खोलती हूँ किवाड़

घर दौड़ के लिपट जाता है मुझसे [159]

एक अन्य उदाहरण-

मैंने दोनों हाथ

अपनी नजर की सीध में उठाए

बाएँ हाथ को आगे की ओर

दाहिने हाथ को पीछे ताना

यह बनी धनुष चलाने की आकृति [160]

12. व्यंग्यात्मक शैली

इस शैली का प्रयोग कर आदिवासी कवियों ने अपने और गैर-आदिवासी समाज की राजनीति तथा धूर्त, लुटेरे व स्वार्थी प्रशासनिक अधिकारियों पर तीखे कटाक्ष या व्यंग्य अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किए हैं -

ये वे लोग हैं

जो हमारे बिस्तर पर करते हैं

हमारी बस्ती का बलात्कार

और हमारी ही जमीन पर खड़े हो

पूछते हैं हमसे हमारी औकात। [161]

एक अन्य उदाहरण-

शिकारी दल अब आते हैं

खरगोश का रूप धरे

जंगलों में [162]

उपर्युक्त विभिन्न शैलियों के उदाहरण देखकर यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी कविताओं में अभिव्यक्ति के लिए लगभग सभी प्रकार की शैलियों का प्रयोग सरल, सहज और बोलचाल की भाषा में प्रभावशाली ढंग से हुआ है। अभिव्यक्ति का माध्यम अर्थवान और सशक्त रहा है ।

अंत में यह कहा जा सकता है कि आदिवासी कविताओं की भाषा में कथ्य और भाव सहजता, सरलता और पूर्ण संप्रेषण के साथ उतरा है। यह भाषा जनभाषा, साधारण बोलचाल की भाषा होने के चलते पाठक से आत्मीय संबंध बनाने में सक्षम है। भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, आंचलिक, अंग्रेजी, उर्दू तथा फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो हम आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग करते हैं। काव्य भाषा में आदिवासियों की ठेठ बोली के शब्द भी जहाँ-तहाँ दिखते हैं जो पाठक को आदिवासियों के और निकट ले जाते हैं। काव्य की भाषा सीधी-सरल होने के साथ ही नवीन अलंकार, मुहावरे, बिंब और प्रतीकों के साथ अत्यंत अर्थपूर्ण और प्रभावशाली ढंग से भावों को संप्रेषित करने में पूर्ण सफल रही है।

काव्य में अभिव्यक्ति विविध शैलियों के माध्यम से हुई है जो पूर्णतः संप्रेषणीय है। कवि की अनुभूति ठीक उसी प्रकार पाठक या श्रोता तक पहुँचती है जैसे कवि अनुभव करता है। वर्णात्मक, चित्रात्मक, भावात्मक, संवादात्मक, व्यंग्यात्मक, प्रश्नात्मक, विचारात्मक शैलियों का मौलिक ढंग से प्रयोग अत्यंत सफल हुआ है। आदिवासी कविता का मुख्य ध्येय संप्रेषण है। संप्रेषण के लिए जिन शैलियों को अपनाया गया, वे कलात्मक ढंग से कविता में उभरती गईं और कविता को संवेदनशील, भावपूर्ण और सजीव बनाने में पूर्ण सक्षम रही।

आदिवासियों की जीवन-दृष्टि उनकी काव्य दृष्टि में झलकती है। नवीन उपमान, बिंब, प्रतीक के साथ-साथ विविध शैलियों के साथ कविता अत्यंत सहज और सरल है। भाषा-शैली में खुलापन और ताजगी दिखती है।

संदर्भ सूची

1.भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा, मुकेश अग्रवाल, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 12-13

2. वृहत हिंदी कोश, सं. कालिका प्रसाद, ज्ञान मंडल, वाराणसी, सातवाँ संस्करण, 1992 पृ. 842

3. भाषा और समाज, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 1968, पृ. 406

4. आदिवासी साहित्य विमर्श, सं. गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ. 9

5. समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013 , भूमिका

6. पक्षधर, सं.विनोद तिवारी, वर्ष-12, जुलाई-दिसम्बर, 2018, जन-जून, 2019, सन्युक्तांक-25,26, दिल्ली, पृ. 226

7. कोंजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 , पृ. 54

8. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ. 32

9. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 41

10. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 9

11. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 33

12. जो मिट्टी की नमी जानते हैं, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 50

13. नागकेसर का देश यह, एकांत श्रीवास्तव, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2016 , पृ. 30

14. थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, रणेन्द्र, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 87

15. काला बाँका तिरछा, लीलाधार मंडलोई, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2004, पृ. 55-56

16. आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, हरिराम मीणा, अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2019, पृ. 63

17. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 ,पृ. 37

18. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण ,2014, पृ. 40

19. वही, पृ. 23

20. वही, पृ. 43

21. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ. 95

22. कोंजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 , पृ. 46

23. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ.25

24. आदिवासी अभिव्यक्ति, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन,दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 28

25. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 35

26. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 72

27. नागकेसर का देश यह, एकांत श्रीवास्तव, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2016 , पृ. 81

28. थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, रणेन्द्र, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 37

29. धरती अधखिला फूल, एकांत श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013, पृ.119

30. पत्थर फेंक रहा हूँ, चंद्रकांत देवताले, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014,पृ.51

31. समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013, पृ. 15

32. कोंजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 पृ. 11-13

33. जो मिट्टी की नमी जानते हैं, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 9

34. खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 14

35. रोया नहीं था यक्ष, हरिराम मीणा, जगतराम एंड संस, नयी दिल्ली, संस्करण, 2011, पृ. 43

36. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 34

37. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 21

38. वही, पृ. 36

39. कोंजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 , पृ.12

40. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ.86

41. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 25

42. वही, पृ. 36

43. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ.16

44. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 24

45. वही, पृ.78

46. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादार, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 8

47. वही, पृ. 37

48. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 22

49. जो मिट्टी की नमी जानते हैं, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 9

50. वही, पृ. 12

51. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली,2017, पृ. 21

52. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ. 61

53. समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013, पृ.16

54. पत्थर फेंक रहा हूँ, चंद्रकांत देवताले, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ. 78

55. आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, हरिराम मीणा, अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2019, पृ. 83

56. संशयात्मा, ज्ञानेन्द्र पति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2004, पहली आवृत्ती, 2010 , पृ. 21

57. कोंजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015 पृ. 11

58. जो मिट्टी की नमी जानते हैं, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 21

59. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 72

60. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ. 20

61. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादार, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 37

62. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ. 53

63. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 51

64. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ.10,104

65. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ.11,105

66. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015 पृ. 9-45

67. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादार, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 9- 98

68. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ.17-76

69. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ. 11-111

70. खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 9-120

71. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं.रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 22- 63

72. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015 पृ.15- 81

73. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादार, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 20-123

74. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ.17- 72

75. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ.18- 62

76. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ . 22

77. खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 62,105

78. आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएं, हरिराम मीणा, अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2019, पृ. 88-101

79. वही, पृ.10-95

80. खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 22, 60

81.नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005, पृ. 28- 88

82. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ. 59, 66

83. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ. 14- 47

84.आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 34-63

85.खमोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, अश्विनी कुमार पंकज, , प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 17, 93

86.नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005, पृ. 31-84

87.आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 23- 63

88. खमोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ.14- 96

89. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008 , पृ. 53-111

90. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014, पृ. 76, 78

91. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाडे, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 11, 63

92. आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएं, हरिराम मीणा, अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2019, पृ. 83

93. हिंदी काव्यशास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ, डॉ. जगदेव सिंह विद्यालंकार, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020 पृ. 270

94.वही, पृ. 270

95. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005, पृ. 28

96. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 84,85

97. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015, पृ. 62

98. पक्षधर, सं. विनोद तिवारी, वर्ष-12, जुलाई-दिसम्बर, 2018, जन-जून, 2019, सन्युक्तांक- 25,26, दिल्ली, पृ. 228

99. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 62

100. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली,2017, पृ. 24

101. वही, पृ. 76

102. खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 22-24

103. डेहरी, मुन्ना साह, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2014, पृ. 23

104. वही, पृ. 26

105. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पों, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 35

106. वही, पृ. 37, 38

107. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020,पृ. 21, 22

108. हिंदी काव्यशास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ, डॉ. जगदेव सिंह विद्यालंकार, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 263, 264

109. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020,पृ. 159

110. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005, पृ. 36

111. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 52

112. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017,पृ. 25

113. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005, पृ. 82

114. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015, पृ. 21

115. पक्षधर, सं. विनोद तिवारी, वर्ष-12, जुलाई-दिसम्बर, 2018, जन-जून, 2019, सन्युक्तांक- 25,26, दिल्ली, पृ. 210

116. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 45

117. आदिवासी मोर्चा, भगवान, गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 49

118. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 22

119. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015, पृ. 12,13

120. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 12

121. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 43

122. कोनजोगा, वंदना टेटे, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015, पृ. 21

123. खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008, पृ. 77

124. वही, पृ. 79

125. वही, पृ. 87

126. वही, पृ. 52

127. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 18

128. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005, पृ. 31

129. वही, पृ. 63

130. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 53

131. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 18

132. वही, पृ. 107

133. वही, पृ. 108

134. वही, पृ. 110

135. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण, 2014, पृ. 36

136. वही, पृ. 47

137. वही, पृ. 57

138. सुबह के इंतजार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 32-104

139. आदिवासी मोर्चा, भगवान गव्होड, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015, पृ. 48

140. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 95

141. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादर, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 11,111

142. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 39

143. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 ,पृ. 13

144. जब आदिवासी गाता है, जमुना बीनी तादार, नॉटनल, ई-बुक, पृ. 14

145. वही, पृ.15

146. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 61

147. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली,2017, पृ. 31

148. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ.19

149. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 149

150. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 , पृ. 42

151. आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंड, अनंग प्रकाशन, दिल्ली,2017, पृ. 76

152. जंगल पहाड़ के पाठ, महादेव टोप्पो, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017, पृ. 71

153. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 , पृ. 53

154. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 157

155. वही, पृ. 172

156. वही, पृ. 60

157. सुबह के इंतज़ार में, हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ.107

158. बेघर सपने, निर्मला पुतुल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014 , पृ. 102

159. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005, पृ. 68

160. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 165

161. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005, पृ. 54

162. लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, सं. वंदना टेटे, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 90

उपसंहार

इस शोध कार्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन के अंतर्गत यह पाया गया कि आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं जो अधिकतर पर्वतीय प्रदेश या जंगलों में रहते हैं। 'आदिवासी' शब्द से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है - 'आदि' यानि आरंभ, और 'वासी' यानि वास करने वाले। अर्थात जो आरंभ या सबसे पहले के वासी हैं, वे ही आदिवासी हैं। आदिवासियों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसेकि 'वनवासी', 'जंगली', अंग्रेजी में 'प्रिमिटिव', 'इंडिजिनस' आदि। परंतु इन नामों से आदिवासी समुदाय की पहचान का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। आदिवासी स्वयं को 'आदिवासी' नाम से ही कहलाना पसंद करते हैं। 'वनवासी' नाम से आदिवासियों को सख्त एतराज है। यह नाम उन्हें किसी गाली की तरह लगता है। विभिन्न विचारकों की 'आदिवासी' संबंधी परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदिवासी एक सामूहिक जीवन व्यतीत करते हैं। ये अधिकतर पर्वतीय प्रदेश या जंगलों में रहते हैं जिनकी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, देवी-देवता, धर्म, दर्शन, नियम कानून, पर्व-त्योहार, नाच-गान तथा राग आदि होते हैं तथा जिनको संविधान में अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत रखा गया है।

भारत में लगभग 532 आदिवासी जनजातियाँ पाई जाती हैं जो भारत की जनसंख्या का लगभग 7 प्रतिशत है। आदिवासियों की एक विशिष्ट पहचान हैं जो इन्हें अन्य समुदायों से अलग करती है। ये एक निश्चित भू-भाग में अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा और तत्संबंधी व्यवस्था को कायम रखते हुए रहते हैं। ये भारत के उत्तरी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिम क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र एवं पूर्वोत्तर क्षेत्रों में रहते हैं। अलग-अलग क्षेत्रों के अनुसार सभी आदिवासी समुदायों की

अपनी भिन्न बोली, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा है किंतु सभी आदिवासी समुदायों की संस्कृतियों में समानता, सहयोग भावना, लैंगिक समानता, सामूहिकता, प्रकृति से निकटता जैसे बेशकीमती मानवीय गुण दिखते हैं। प्रकृति पूजा ही इनका धर्म है। ये न तो हिन्दू हैं और न ही ईसाई। इनके अपने देवी देवता हैं जिसका संबंध प्रकृति और इनके पूर्वजों से हैं। इनके अपने देवी देवता हैं जिसका संबंध प्रकृति और इनके पूर्वजों से हैं। इनका मुख्य व्यवसाय खेती-बाड़ी है। विकास के नाम पर सरकार व गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा आदिवासियों को कई बलिदान देने पड़े हैं। ये बार-बार ठगे और छले गए हैं।

आदिवासी विभिन्न समस्याओं से जूझ रहे हैं, जैसेकि अर्थ संबंधी, शिक्षा संबंधी, स्वास्थ्य संबंधी, पलायन से जुड़ी समस्या आदि। मुख्यधारा के साथ यदि ये संपर्क स्थापित करते हैं तो अन्य समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। अपने अस्तित्व के मूल को ये खोना नहीं चाहते। अपने आदिम मूल्यों का संरक्षण करना आदिवासियों का मुख्य ध्येय है। आदिवासी साहित्य मूलतः मौखिक रहा है। आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरुआत सन 1991 के बाद से मानी जाती है। अपने मुद्दों पर आदिवासी लेखक तो लिख रहे ही हैं, साथ ही गैर-आदिवासी लेखक भी लिख रहे हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक, यात्रावृतांत आदि विधाएँ रचकर समय के साथ चल रहे हैं और अपने समाज के मुद्दों सहित बाहरी समाज से जुड़ाव की प्रक्रिया में उपजे मुद्दों, जिनमें कई किस्म की विकृतियाँ भी शामिल हैं, पर तीखा प्रहार कर रहे हैं। आदिवासी साहित्य उनके अपने जीवन का ही हिस्सा है। यह साहित्य केवल रचनात्मक लेखन

करने या कल्पना के सपनों में रहकर कोई पुरस्कार पाने हेतु नहीं लिखा गया, बल्कि सही अर्थों में यह भारत को बचाए रखने और अपने अस्तित्व के संघर्ष का साहित्य है।

आदिवासी साहित्य मुख्यधारा से हटकर स्वयं में अपनी अलग विशिष्ट पहचान बनाता साहित्य है। यह साहित्य प्रकृति और जीवन के साथ न्याय करता हुआ समानता का संदेश देता हैं। इस साहित्य में जीवन की बहुरंगी दुनिया जिसमें सामूहिकता, समानता, एकता, प्रकृति प्रेम, नृत्य-गीत, संस्कृति, धर्म, जीवन–मरण, सुख-दुख, आक्रोश, पीड़ा, शोषण, सवाल, लोक-जीवन दर्शन आदि सम्मिलित हैं, की अभिव्यक्ति हुई है। आदिवासी साहित्य अपनी संस्कृति, समाज और जीवन मूल्यों के प्रति गहरे लगाव और संरक्षण का साहित्य है। समुदाय की रक्षा करते हुए जीवन के सभी पहलुओं को सुरक्षित रखना ही इस साहित्य का उद्देश्य है। आदिवासी साहित्य की संवेदना भी उसी प्रकार भिन्न है जैसे आदिवासी समाज अन्य समाजों से भिन्न है। अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा और समस्याओं से मुक्ति के लिए ही आदिवासी साहित्य की रचना हुई है। वंदना टेटे के अनुसार 'आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। साहित्य अभी सृजन की अवस्था में है। इसका प्रौढ़ रूप सामने आना अभी बाकी है।'

कविताओं में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति के अध्ययन के क्रम में पाया गया कि आदिवासी समाज श्रमशील, निष्ठावान, ईमानदार और निश्छल होता है। आदिवासी समाज जातिभेद, लिंगभेद एवं वर्गभेद पर आधारित समाज व्यवस्था पर विश्वास नहीं करता है। यह समाज समानता और पारस्परिक सहयोग भावना का कायल है। आज गैर-आदिवासी समाज के संपर्क में आकर इस समाज में विकृति पनप रही हैं। ये कई समस्याओं का सामना तो कर ही रहे हैं,

विभिन्न तरह के शोषणों का शिकार भी हो रहे हैं। विकास के नाम पर ये कई बार उजाड़ दिए जाते हैं जिससे इनकी अस्मिता खतरे में पड़ गयी है। इनकी ज़मीनों पर आज बड़े-बड़े कल-कारखाने, खदान और बाँध बन गए हैं। आदिवासी समाज मूलतः कृषि पर निर्भर है। आदिवासी पुरुषों द्वारा शराब-हड़िया का उपयोग आदिवासी समाज की एक नकारात्मक कड़वी सच्चाई है। इसका उपयोग आदिवासी पुरुष हर सुख-दुख में करते हैं। ये विदेशी शराब के आकर्षण में फँसते जा रहे हैं। इनके विदेशी शराब के लालच में आने के दुष्परिणाम आज समाज की लड़कियाँ भुगत रही हैं, वे बेहद असुरक्षित महसूस करती हैं क्योंकि शराब के चलते इनका सौदा कर दिया जाता है। आदिवासी समाज कभी बाहरी साजिशों का शिकार बनता है, तो कभी अकाल में भूख की समस्या, कभी अपने समाज में फैली रूढ़ि-अंधविश्वासों से जूझता है। सदा हाशिये पर पड़े रहने वाले इस समाज को समानता, प्रेम, सामूहिकता और निश्छलता वाला उनका जीवन दर्शन उन्हें एक बनाए रखता है। उन्हें टूटने नहीं देता।

आदिवासियों की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन के क्रम में यह पाया गया कि आदिवासियों की पहचान उनकी संस्कृति से ही है। अपनी विशेष संस्कृति के कारण ही ये अन्य समाज से भिन्न हैं। उनकी संस्कृति का गहरा संबंध उनके जीवन से है। आदिवासियों की संस्कृति बहुरंगी और पारंपरिक जीवन मूल्यों में आस्था रखने वाली संस्कृति है। इनके सांस्कृतिक संसार में प्रकृति–प्रेम, नृत्य-गीत, कला, धार्मिक आस्थाएँ, मिथक, सामाजिक संस्कार, खान-पान, पौशाक, रहन-सहन एवं मनोरंजन की अन्य क्रियाएँ हैं। ये इनकी आत्मीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इतने कष्टों से जूझ रहे आदिवासियों के पास अपना कहने का कुछ है तो वह

इनकी संस्कृति है। गीत और नृत्य इनके जीवन का हिस्सा है। जोहार सुख-दुख में इनका साथी है। इसका धर्म प्रकृति से जुड़ा है। सूर्य-चंद्र, पेड़-पौधे, पहाड़ धरती को ही ये पूजते हैं। इनके देवी –देवता इनके साथी हैं, हर सुख-दुख में इनके साथ मौजूद रहते हैं। आज बाहरी घुसपैठ या गैर-आदिवासी संस्कृति के आकर्षण से इनकी संस्कृतियाँ बदल रही हैं। सोची समझी साज़िश के तहत इनका धर्मांतरण किया जा रहा है। इनके हाथों में त्रिशूल व बाइबल जबरन थमाए जा रहे हैं। इस बात की चिंता भी इनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है।

कविताओं में आदिवासी स्त्रियों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आदिवासी समाज की स्त्रियाँ अपने समाज की रीढ़ हैं। ये श्रम में पुरुषों से बढ़कर आगे निकलती हैं। समाज के आर्थिक व्यवस्था में स्त्रियों की बहुत बड़ी भूमिका है। ये हर प्रकार के काम करती हैं जैसकि घास काटना, लकड़ियाँ बीनना, बोझा ढोना, खेतों में काम करना भले ही बारिश हो या धूप, सर्दी हो या गर्मी, दूसरों के घर काम-काज करना, ईंट-भट्टों में पसीना बहाना, पशु पालन आदि से लेकर घर के सारे काम काज। मेहनत करना और घर चलाना, यहीं तक इनकी जिंदगी सिमट गई है। इतना कुछ सहते और करते- करते शायद वह अपने समाज के पुरुषों से भी आगे निकल गई हैं। जब प्रश्न मेहनत का हो तो निर्विवाद रूप से ये इनसे आगे हैं किंतु बात जब उनके हक की या उनकी पहचान की हो तो ये सबसे पीछे रह जाती हैं। वंदना टेटे के अनुसार आदिवासी दर्शन में स्त्री-पुरुष में कोई भेद-भाव नहीं। पुरुष-स्त्री को बराबर के हक हैं। स्त्री के भाव–विचारों को महत्ता मिलती है। इक्कीसवीं सदी की आज की आदिवासी कविताओं के अध्ययन में पाया गया कि आदिवासी स्त्रियों को अपने हक की बात करने पर दंडित किया

जाता है, उसे डायन करार दिया जाता है। वह अपने ही समाज में आज असुरक्षित महसूस करती है। उसे समाज के भीतर कई यातनाएँ झेलनी पड़ रही है। हाँ, यह अवश्य है कि पूर्वोत्तर की आदिवासी स्त्रियाँ अन्य क्षेत्रों की आदिवासी स्त्रियों की तुलना में अधिक स्वतंत्र हैं, किंतु गौर से देखा जाए तो अधिक स्वतंत्र माने जाने वाली पूर्वोत्तर की स्त्रियाँ की यह स्थिति भी केवल श्रम के मामले में ही है। यहाँ की स्त्रियाँ घर चलाने और खेती बाड़ी करने के अलावा बाज़ार-व्यवसाय चलाना, ड्राइविंग करने, जूते बनाने जैसे कार्यों में सक्षम हैं। इसका मुख्य कारण यह भी है कि पूर्वोत्तर की आदिवासी स्त्रियाँ अन्य आदिवासी स्त्रियों की तुलना में अधिक शिक्षित हैं। अपनी साक्षरता के कारण ही वे कई क्षेत्रों में स्वतंत्र हैं, इसके बावजूद ये अपने समाज में भी असुरक्षित हैं। इनमें से बहुत सी बलात्कार की शिकार होती हैं और पुरुषों के शोषण को सहन करती हैं। विस्थापन की त्रासदी झेलती ये उत्पीड़ित स्त्रियाँ अपनी अस्मिता व अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्षरत हैं।

अगले चरण में इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी संसाधनों पर कब्ज़े की राजनीति, संस्कृति संरक्षण का सवाल और आदिवासियों के पलायन की समस्या के अध्ययन के पश्चात यह पाया गया कि वैश्वीकरण के इस दौर में आदिवासी क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है। आदिवासियों के खुशहाल जीवन को स्वार्थी दिक्कुओं तथा पूँजीपतियों, ठेकेदारों तथा सरकार के अमला वर्ग ने तहस-नहस कर दिया है। राजनैतिक पार्टियाँ या सरकार और पूँजीपतियों द्वारा इनके संसाधनों यथा जंगल, जमीन, लोह-अयस्क, कोयला, पेड़-फूल, जंगली औषधियाँ आदि को लूटा जा रहा है। संसाधनों के मामले में

आदिवासी इलाके बेहद समृद्ध हैं। संसाधनों के कब्ज़े के लिए कई दमनकारी नीतियाँ सरकार द्वारा बनाई जा रही हैं। कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, ठेकेदार, सरकारी अधिकारी आते हैं और आदिवासियों को कई प्रकार के लुभावने सपने दिखाकर उन्हें छलते हैं। कविताओं के अवलोकन से पता चलता है कि आदिवासी इन गंभीर समस्याओं से निजात पाने के लिए छटपटा रहे हैं। पर्यावरण शुद्धि और संसाधन संरक्षण के नाम पर नई नीतियाँ बनती तो हैं किंतु आदिवासियों के हित में इन्हें कभी क्रियान्वित नहीं किया जाता। गैर-आदिवासियों की घुसपैठ इनके जीवन में केवल और केवल समस्याएँ ही लायीं जिन्होंने इनके पवित्र और खुशहाल जीवन को पूरी तरह बिगाड़कर रख दिया। जल, जंगल और जमीन के छिन जाने के साथ ही इनकी संस्कृति भी खतरे में पड़ जाती है। गैर-आदिवासी संस्कृति के संपर्क में आने पर उनकी संस्कृति पर बड़ा बुरा असर पड़ रहा है। इस संपर्क के चलते उनकी भाषा, वेषभूषा, नृत्य-गीत, रीति-रीवाज, धर्म-प्रथाएँ सब शनै: शनै: बदलते जा रहे हैं। आदिवासी कविताओं में अपनी संस्कृति लुप्त होने की चिंता और भय दिखाई पड़ता है। ये कवितायें हमें आदिवासी सांस्कृतिक जीवन के अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं। हम देखते हैं कि आदिवासियों की लोककला खत्म होने की कगार पर है। इनकी मूल पहचान इनकी संस्कृति से जुड़ी है। संस्कृति के विलुप्त होने के चलते इनकी अस्मिता भी खतरे में पड़ रही है।

इस दौर की कविताओं में पलायन एक विकराल समस्या के रूप में उभरा है। संसाधनविहीन आदिवासी एक सस्ता मजदूर बन गया है। आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण आदिवासी अपने जल-जंगल, जमीन से हाथ धो बैठे हैं। पेट की मजबूरी और परिवार के भरण-पोषण के

लिए आदिवासी अपने गाँव-जमीन छोड़ दूर अन्य शहरों में पलायन कर रहे हैं। गैर-आदिवासियों के बीच वे वहाँ दोयम दर्जा का व्यवहार का सामना कर रहे हैं। पलायन का सबसे बुरा असर महिलाओं पर पड़ रहा है। बलात्कार की शिकार आदिवासी महिलाएं ही हो रही हैं। मुक्त बाज़ार और व्यापार के नाम पर आदिवासियों के जीवन को दाँव पर लगाया जा रहा है। आदिवासी कविताएँ इस तरह के शोषण और समस्याओं के खिलाफ संघर्ष करने के प्रेरणा तो देती ही है, साथ ही अपनी से मुक्ति की कामना करती भी दिखती हैं। ये कविताएँ क्रांतिदर्शी है जिनका मुख्य स्वर मुक्ति का है।

कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न के अध्ययन उपरांत यह पाया गया कि आदिवासी इन कविताओं में स्त्रियों के खिलाफ हो रहे अन्याय, अत्याचार के खिलाफ विद्रोह के स्वर भी फूट रहे हैं। अपने जंगल-जमीन की कभी मालकिन रहीं ये आदिवासी महिलाएं आज बाह्य आतंक और शोषण के कारण विस्थापन एवं शोषण की जिंदगी जीने को अभिशप्त हैं। कविताओं में स्त्री मुक्ति की राहें कई रूपों में सामने आई हैं। आदिवासी स्त्रियाँ आज अपने सभी तरह के शोषण जिसमें आर्थिक, मानसिक, दैहिक, राजनैतिक, पारिवारिक शोषण शामिल है, के खिलाफ विद्रोह के बिगुल बजा रही हैं। ये अपने घर, परिवार और समाज को नियंत्रित करती अंध-श्रद्धाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, चूल्हा-बिस्तर तक सीमित अपनी इयत्ता से मुक्ति की गीत गाती हैं। घर, परिवार और समाज को नयी राह दिखाती हुई ये आगे बढ़ रही हैं। वह अब अपना हक मांगती है, शिक्षा का पूरा अधिकार मांगती है। घर में केवल खाना बनाना, बच्चों की देखभाल करना मात्र उसके

जीवन का लक्ष्य नहीं। परिवार वालों की दखल-अंदाजी के बिना अपना जीवन साथी वह स्वयं चुनना चाहती है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर गहरा प्रहार करती ये आदिवासी स्त्रियाँ पुरुषों के स्वभाव और उनकी मानसिकता में बदलाव लाने का संकल्प लिए ये खड़ी हैं। रूढ़ि-आडंबर से दूर वास्तविकता और पहचान की एक नयी जमीन तलाशती ये बेचैन स्त्रियाँ अब अपना इतिहास स्वयं रचना चाहती हैं। ये स्त्री अस्मिता की रक्षा तथा समाज में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करने पर बल दे रही हैं। आदिवासी स्त्रियाँ अब चेतनासंपन्न हो गई हैं। उनकी आँखें खुल गई हैं। ये अपने समाज के स्त्रियों को अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित कर रहीं हैं। आदिवासी कविताएं स्त्रियों को उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दे रही है। अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासियों ने संघर्ष और मुक्ति की गाथा का एक नया साहित्य रचा है।

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं के भाषागत वैशिष्ट्रय के अध्ययन पश्चात यह निष्कर्ष निकला कि आदिवासी कविताओं की अपनी सहज कथन-भंगिमा है। जिस प्रकार आदिवासियों का स्वभाव सरल और सहज है, उसी प्रकार उनकी काव्य भाषा भी सरलता और सहजता लिए हुए है। उनकी अभिव्यक्ति शास्त्रीय या विशिष्ट नहीं है किंतु कविता के भाव एवं संदेश तथाकथित मुख्यधारा के समकालीन कविताओं से कम नहीं, बल्कि सरल-सहज शब्दों में गहरे भाव- विचार उत्पन्न करना आदिवासी कविताओं की मुख्य विशेषता रही हैं। आदिवासी कवियों ने रोज़मर्रा की बोल-चाल की भाषा को चुना है। बिना लाग-लपेट के जैसे वे

हैं, वैसी ही भाषा भी है। भाषा में सहजता के गुण के कारण ही कविताओं के गहरे से गहरे प्रसंग भी संप्रेषणीय बन गए हैं। कविताओं में तत्सम, तद्भव और देशज, आंचलिक, उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी शब्दों के प्रसंगानुकूल प्रयोग मिलते हैं। आदिवासी जनकवि हैं, इसी कारण उनकी कविताओं में साधारण जन की भाषा मिलती है, इससे काव्य में सरलता और अर्थवत्ता सहज ही फूट पड़ी है। काव्य भाषा में आदिवासियों के ठेठ बोली के शब्द जहाँ-तहाँ दिखते हैं, जो पाठक को आदिवासियों के और निकट ले जाते हैं। काव्य भाषा में सरल मुहावरे और नवीन अलंकार मिलते हैं जो अत्यंत सहजता से काव्य में प्रयोग हुए हैं। बिंब और प्रतीकों के माध्यम से वे अपनी बात अत्यंत अर्थपूर्ण और प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने में पूर्ण सफल रहे हैं। कविताओं में कवियों ने अपने ही ढंग से अपने दैनिक जीवन की वस्तुओं, खान-पान तथा अन्य स्थितियों से जुड़े बिंबों-प्रतीकों का प्रयोग दिखाया है जिनमें मौलिकता के दर्शन होते हैं।

काव्य में अभिव्यक्ति विविध शैलियों के माध्यम से हुई है जो पूर्णत: संप्रेषणीय है। कवि की अनुभूति ठीक उसी प्रकार पाठक या श्रोता तक पहुँचती है जैसे कवि अनुभव करता है। वर्णात्मक, चित्रात्मक, भावात्मक, संवाद, व्यंग्यात्मक, प्रश्नात्मक, विचारात्मक शैलियों का सफल प्रयोग अत्यंत मौलिक ढंग से हुआ है। संप्रेषण के लिए जिन शैलियों को अपनाया गया वे कलात्मक ढंग से कविता में उभरती गईं जिसके चलते कविता संवेदनापूर्ण और सजीव बनने में पूर्ण सक्षम रही है।

आदिवासियों की जीवन-दृष्टि उनकी काव्य दृष्टि में झलकती है। नवीन उपमान, बिंब, प्रतीकों के साथ-साथ विविध शैलियों के साथ कविता अत्यंत सहज और सरल है। भाषा शैली में खुलापन और ताजगी दिखती है।

संदर्भ –ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ :

1. अविनाश कुमार सिंह (सं.), इस्पातिका, अंक-1, वर्ष -2, जन- जून , 2012

2. अश्विनी कुमार पंकज, खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008

3. अश्विनी कुमार पंकज, जो मिट्टी की नमी जानते हैं, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008

4. अश्विनी कुमार पंकज, भाषा कर रही है दावा, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2009

5. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013(कविता- 'डूब',पृ.119-136)

6. एकांत श्रीवास्तव, नागकेशर का देश यह, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2016

7. चंद्रकांत देवताले, पत्थर फेंक रहा हूँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014

8. जमुना बीनी तादर, जब आदिवासी गाता है, (नॉटनल, ई-बुक)

9. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, रमणिका फ़ाउंडेशन, दिल्ली, 2004

10. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005

11. निर्मला पुतुल, बेघर सपने, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014

12. भगवान गव्हाड़े, आदिवासी मोर्चा, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015

13. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017

14. मुन्ना साह, डेहरी, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2014

15. रणेन्द्र, थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2010

16. रमणिका गुप्ता (सं.), आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी,वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण - 2014

17. रमणिका गुप्ता (सं.), युद्धरत आम आदमी,अंक-107,अप्रैल- जून,2011, (नॉटनल, ई-बुक)

18. रमणिका गुप्ता (सं.), युद्धरत आम आदमी, हाशिये उलांघती स्त्री , भाग-1,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)

19. रमणिका गुप्ता (सं.), युद्धरत आम आदमी, हाशिये उलांघती स्त्री , भाग-2,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)

20. रविकुमार गोंड, आदिवासी अभिव्यक्ति,अनंग प्रकाशन,दिल्ली,पहला संस्करण,2015

21. रविकुमार गोंड, आदिवासी स्वर, अनंग प्रकाशन, दिल्ली,2017

22. लीलाधर मंडलोई, काला बाँका तिरछा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2004

23. वंदना टेटे, कोंजोगा, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015

24. वंदना टेटे (सं.), लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020

25.वाहरु सोनवने,पहाड़ हिलने लगा,शिल्पायन प्रकाशन,दिल्ली, 2009

26. विनोद तिवारी (सं.), पक्षधर, वर्ष-12, संयुक्तांक-25,26, जुलाई-दिसंबर,2018-जन –जून ,2019 ,दिल्ली

27. सरिता सिंह बड़ाईक, नन्हें सपनों का सुख, रमणिका फ़ाउंडेशन, नयी दिल्ली, 2008,

28. हरिराम मीणा, आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2019

29. हरिराम मीणा, रोया नहीं था यक्ष, जगतराम एंड संस, नयी दिल्ली, संस्करण, 2011

30. हरिराम मीणा (सं.), समकालीन आदिवासी कविता, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013

31. हरिराम मीणा, सुबह के इंतजार में, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008

32. ज्ञानेंद्रपति, संशयात्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2004, पहली आवृत्ती, 2010 (कविता-'एक आदिवासी गाँव से गुजरती सड़क,पृ.20-22)

सहायक ग्रंथ :

1. अविनाश कुमार सिंह(सं), इस्पातिका,अंक-1,वर्ष-2,जन-जून,2012,जमशेदपुर

2. कमल स्वरूप श्रीवास्तव, भारतीय जंजातीय संस्कृति,आदि बुक्स, दिल्ली,2013

3. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, दूसरा संस्करण, 1998

4. कालिका प्रसाद(सं), बृहत हिंदी कोश, ज्ञान मंडल, वाराणसी, सातवाँ संस्करण, 1992

5. कुमार कमलेश, आदिवासी विमर्श,तेज प्रकाशन, नई दिल्ली,पहला संस्करण,2014

6. कुमार चौहान,श्रीमति रेनू चौहान, आदिवासी स्वर-सामाजिक आर्थिक जीवन,स्वर्ण जयंती, दिल्ली, संस्करण,2005

7. केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण,2014

8. गया पाण्डेय,भारतीय जंजातीय संस्कृति, कान्सैप्ट पब्लिसिंग कंपनी, नयी दिल्ली,प्रथम संस्करण,2007

9. गंगा सहाय मीणा(सं),आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015

10. डॉ.अल्पना सिंह(सं), डॉ.आलोक कुमार सिंह(सं.), स्त्री मुक्ति के प्रश्न और समकालीन विमर्श, देव प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण,2015

11. डॉ.उषाकीर्ति,डॉ.सतीश पाण्डेय,डॉ.शितलाप्रसाद दुबे(सं), आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य,अतुल प्रकाशन, कानपुर, दूसरा संस्करण,2017

12. डॉ.जगदेव सिंह विद्यालंकार, हिंदी काव्य शास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ, दीपू प्रकशान, दिल्ली,पहला संस्करण,2004

13. डॉ.जनकसिंह मीणा(सं), अरावली उदघोष,वर्ष 25, अप्रैल-2013,अंक-99,जयपुर

14. डॉ.पंडित बन्ने,हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर,पहला संस्करण,2014

15. दुर्गाराव बाणावतु(सं), भीम सिंह(सं), साक्षात्कारों में आदिवासी, अलख प्रकाशन, जयपुर,पहला संस्करण,2015

16. मुकेश अग्रवाल, भाषा-विज्ञान एवं हिंदी भाषा, राज प्रकास्वशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2015

17. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण,2016

18. रमणिका गुप्ता(सं), आदिवासी साहित्य यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण,2018

19. रमणिका गुप्ता(सं),आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015

20. रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण,2014

21. रमणिका गुप्ता(सं), आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह, सुरभि प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण,2015

22. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2013

23. रमणिका गुप्ता(सं), आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण,2018

24. रमणिका गुप्ता(सं), युद्धरत आम आदमी,अंक-107, अप्रैल-जून,2011, (नॉटनल, ई-बुक)

25. रमणिका गुप्ता(सं), युद्धरत आम आदमी,पूर्णांक-108, ,(स्त्री मुक्ति आंदोलन पर केंद्रित कविता विशेषांक,भाग-1), विशेषांक, 2011(नॉटनल, ई-बुक)

26. रवि कुमार गोंड(सं),महेंद्र प्रताप सिंह(सं), समकालीन मुद्दे और बहस,अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2014

27. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण,1968

28. वंदना टेटे(सं), आदिवासी दर्शन और साहित्य,विकल्प प्रकाशन, दिल्ली,पहला संस्करण,2016

29. वासवी, ताबेन जोम-जमीन का हिस्सा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पहला संस्करण,2003

30. विशाल शर्मा(सं),कोलहारे दत्ता(सं), आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण,2016

31. संजीव तंवर, विश्व की आदिवासी जंजातियाँ, अरुण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण,2014

32. हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2013

33. हरिराम मीणा(सं), समकालीन आदिवासी कविता, अलख प्रकाशन, जयपुर,पहला संस्करण,2013

पत्रिकाएँ :

1. इस्पातिका, अविनाश कुमार सिंह(सं), वर्ष-2, जन-जून 2012, अंक-1, जमशेदपुर
2. पक्षधर, विनोद तिवारी(सं), वर्ष-12, जुलाई-दिसम्बर, 2018, जन-जून, 2019, सन्युक्तांक-25,26, दिल्ली
3. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता (सं.), अंक-107,अप्रैल- जून,2011, (नॉटनल, ई-बुक)

4. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता (सं.), स्त्री मुक्ति आंदोलन पर केंद्रित कविता विशेषांक, भाग- 1,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)
5. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता (सं.), हाशिये उलांघती स्त्री , भाग- 2,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)

अनुसंधित्सु का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

नाम : कुसुम कुमारी

जन्म : 18.11.1977

शिक्षा : बी.ए. (IGNOU), 2008

बी.एड. (MHTC), 2011

एम.ए. (IGNOU), 2013

व्यवसाय : अध्यापिका, गवर्मेंट गोर्खा उच्च विद्यालय, खटला, आइज़ोल

स्थायी पता : गवर्मेंट कॉम्प्लेक्स, आइज़ोल, मिज़ोरम-796009

मोबाइल : 09436196274

ई-मेल : kusumkala77@gmail.com

प्रकाशन स. : आलेख- 02

1.आदिवासी कविता और हरिराम मीणा, इंटरडिसिप्लिनरी जनरल ऑफ कोण्टेंपोररी रिसर्च-अगस्त, 2018

2.मिज़ो आदिवासी: नृत्य एवं त्यौहार, शोध दृष्टि, जुलाई, 2018

संगोष्ठी पत्र प्रस्तुति सं. : 02

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : कुसुम कुमारी

शिक्षा : पीएच.डी.

विभाग : हिंदी

शोध-प्रबंध का शीर्षक : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि : 04.08.2014

शोध प्रस्ताव की संस्तुति :

(i) डी.आर.सी. : 26.02.2015

(ii) बी.ओ.एस. : 11.05.2015

(ii) स्कूल बोर्ड : 21.05.2015

मिज़ोरम विश्वविद्यालय पंजीयन संख्या : 6897 of 2014

पीएच.डी.पंजीयन संख्या : MZU/Ph.D/806 of 21.05.2015

एक्सटेंशन : 20.05.2022 (2 yrs), No.16-2/MZU/Acad)/19/341-343 Dated 5th November, 2020

ABSTRACT

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

IKKISAVIN SADI KI AADIVASI HINDI KAVITA KA VISHLESHNATMAK ADHYAYAN

[मिज़ोरम विश्वविद्यालय के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध सार]

कुसुम कुमारी

KUSUM KUMARI

MZU Regn.No.6897of 2014

Ph.D. Regn.No.: MZU/Ph.D/806 of 21.05.2015

हिंदी विभाग

DEPARTMENT OF HINDI

शिक्षा एवं मानविकी संकाय

SCHOOL OF EDUCATION AND HUMANITIES

दिसंबर-2020

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Ikkisavin Sadi ki Aadivasi Hindi kavita ka Vishleshnatmak Adhyayan

[मिज़ोरम विश्वविद्यालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध सार]

शोध- प्रबंध सार

ABSTRACT

शोध-निर्देशक	सह -शोध निर्देशक	शोधार्थी
डॉ.सुषमा कुमारी	डॉ. प्रीति राय	कुसुम कुमारी

Supervisor	Joint Supervisor	Kusum Kumari
Dr. Sushma Kumari	Dr. Priti Rai	Registration Number: MZU/Ph.D/806 of 21.05.2015

हिंदी विभाग

मिज़ोरम विश्वविद्यालय

आइज़ोल – 796004

दिसंबर-2020

हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आइज़ोल -796004

केंद्रीय विश्वविद्यालय
A Central University
(Accredited by NAAC with 'A' Grade)

Department of Hindi
Mizoram University
Aizawl - 796004

दिनांक -03/12/2020

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कुसुम कुमारी** ने मेरे निर्देशन में हिंदी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजोल से डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी (पीएच.डी) हिंदी की उपाधि हेतु **'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन'**, विषय पर शोध- कार्य किया है। प्रस्तुत शोध कार्य शोधार्थी की अपनी निजी गवेषणा का फल है यह इनका मौलिक कार्य है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, प्रस्तुत शोध- प्रबंध या इसके किसी भी अंश को किसी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी प्रकार की उपाधि हेतु अद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं प्रस्तुत शोध- प्रबंध को मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजोल की मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति करती हूँ।

प्रीति राय

(डॉ. सुषमा कुमारी)

शोध-निर्देशक

(डॉ. प्रीति राय)

सह - शोध-निर्देशक

घोषणा- पत्र

मैं **कुसुम कुमारी** एतद द्वारा घोषित करती हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विषय सामाग्री मेरे द्वारा किए गए शोध –जहाँ तक मुझे ज्ञात है, न किसी अन्य को कोई उपाधि प्रदान की गयी है न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में प्रस्तुत किया गया है-कार्यों का सुपरिणाम है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध मिज़ोरम विश्वविद्यालय के सम्मुख हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी (पीएच.डी) हिंदी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

प्रीति राय

(प्रो.संजय कुमार)	(डॉ. सुषमा कुमारी)	(डॉ. प्रीति राय)	(कुसुम कुमारी)
अध्यक्ष	शोध-निर्देशक	सह-शोध निर्देशक	अनुसंधित्सु

शोध-प्रबंध सार

'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन'

इस शोध-प्रबंध में 21 वीं सदी में हिन्दी में रचित आदिवासी कविताओं के माध्यम से आदिवासी समाज और उसकी संस्कृति, उनके अस्तित्व से जुड़ी समस्याओं, चुनौतियों तथा उनसे मुक्ति संबंधी सवालों को जानने-समझने का प्रयास किया गया है। इस शोध प्रबंध में कुल 45 कवियों की आदिवासी कविताओं को शामिल किया गया है, जिनमें से 34 आदिवासी कवि -कवयित्री हैं और 11 गैर-आदिवासी कवि-कवयित्री हैं। इनमें से पूर्वोत्तर के 02 आदिवासी कवि और 07 कवयित्री हैं। कुल 17 कवयित्रियों की कविताओं को शामिल किया गया है जो इस शोध प्रबंध के चौथे अध्याय का आधार है। ये सारे कवि-कवयित्री पूरे भारत में से झारखंड, गुजरात, महाराष्ट्र, छतीसगढ़, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मेघालय, अरुणाचल, त्रिपुरा, नागालैंड, मेघालय, असम और मिज़ोरम राज्य के हैं।

इस शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय **'आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य : अवधारणा, स्वरूप एवं विकास'** शीर्षक से है जिसके अंतर्गत दो उप-अध्याय हैं – **'आदिवासी : अवधारणा एवं स्वरूप'**, और **'आदिवासी साहित्य की अवधारणा'।**

आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं जो अधिकतर पर्वतीय प्रदेश या जंगलों में रहते हैं। 'आदिवासी' शब्द से ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है - 'आदि' यानि आरंभ, और 'वासी' यानि वास

करने वाले। अर्थात जो आरंभ या सबसे पहले के वासी हैं, वे ही आदिवासी हैं। आदिवासियों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे कि 'वनवासी', 'जंगली', अंग्रेजी में 'प्रिमिटिव', 'इंडिजिनस' आदि । परंतु इन नामों से आदिवासी समुदाय की पहचान स्पष्ट नहीं होती। आदिवासी स्वयं को 'आदिवासी' ही कहलाना सर्वोचित मानते हैं। 'वनवासी' नाम से आदिवासियों को सख्त एतराज है। यह नाम उन्हें किसी गाली की तरह लगता है। विभिन्न विचारकों की आदिवासी संबंधी परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदिवासी एक सामूहिक जीवन व्यतीत करते हैं। ये अधिकतर पर्वतीय प्रदेश या जंगलों में रहते हैं जिनकी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, देवी-देवता, धर्म, दर्शन, नियम कानून, पर्व-त्योहार, नाच-गान तथा राग आदि होते हैं तथा जिनको संविधान में अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत रखा गया है।

भारत में लगभग 532 आदिवासी जनजातियाँ पाई जाती हैं जो भारत की जनसंख्या का लगभग 7 प्रतिशत है। आदिवासियों की एक विशिष्ट पहचान है जो इन्हें अन्य समुदायों से अलग करती है। ये एक निश्चित भू-भाग में अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा और तत्संबंधी व्यवस्था को कायम रखते हुए रहते हैं। ये भारत के उत्तरी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिम क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र एवं पूर्वोत्तर क्षेत्रों में रहते हैं। अलग-अलग क्षेत्रों के अनुसार सभी आदिवासी समुदायों की अपनी भिन्न बोली, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा है किंतु सभी आदिवासी समुदायों की संस्कृतियों में समानता, सहयोग भावना, सामूहिकता, प्रकृति से निकटता जैसे बेशकीमती मानवीय गुण दिखते हैं। प्रकृति पूजा ही इनका धर्म है। ये न तो हिन्दू हैं और न ही

ईसाई। इनके अपने देवी देवता हैं जिसका संबंध प्रकृति और इनके पूर्वजों से हैं। इनका मुख्य व्यवसाय खेती-बाड़ी है। विकास के नाम पर सरकार व गैर-सरकारी संस्थाओं के लिए आदिवासियों को कई बलिदान देने पड़े हैं। ये बार-बार ठगे और छले गए हैं।

आदिवासी विभिन्न समस्याओं से जूझ रहे हैं, जैसे कि आर्थिक समस्या, शैक्षिक पिछड़ापन, स्वास्थ्य और पलायन से जुड़ी समस्या आदि। मुख्यधारा के साथ यदि ये संपर्क स्थापित करते हैं तो अन्य समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। अपने अस्तित्व को ये खोना नहीं चाहते। अपने आदिम मूल्यों का संरक्षण करना आदिवासियों का मुख्य ध्येय है। आदिवासी साहित्य मूलतः मौखिक रहा है। आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरुआत सन 1991 के बाद से मानी जाती है। अपने मुद्दों पर आदिवासी लेखक तो लिख ही रहे हैं, साथ ही गैर-आदिवासी लेखक भी लिख रहे हैं। वे कविता, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, नाटक, यात्रावृतांत आदि विधाएँ रचकर समय के साथ चल रहे हैं। वे अपने समाज के मुद्दों सहित बाहरी समाज से जुड़ाव की प्रक्रिया में उपजे मुद्दों, जिनमें कई किस्म की विकृतियाँ भी शामिल हैं, पर तीखा प्रहार कर रहे हैं। आदिवासी साहित्य उनके अपने जीवन का ही हिस्सा है। यह साहित्य केवल रचनात्मक लेखन करने या कोई पुरस्कार पाने हेतु नहीं लिखा गया, बल्कि सही अर्थों में यह भारत को बचाए रखने और आदिवासियों के अस्तित्व के संरक्षण हेतु संघर्ष का साहित्य है।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीन तरह के मत हैं:-

1. आदिवासी पर जो भी साहित्य गैर आदिवासी द्वारा लिखा गया हो, वह आदिवासी साहित्य है।

2. जो साहित्य आदिवासियों द्वारा लिखा गया है, वह आदिवासी साहित्य है।

3. जो साहित्य आदिवासी दर्शन के तत्वों पर लिखा गया है, वह आदिवासी साहित्य है।

पहली अवधारणा के अनुसार जो साहित्य गैर -आदिवासियों द्वारा आदिवासी जीवन पर लिखा गया है वह आदिवासी साहित्य कहलाएगा। इसके समर्थन में आदिवासी लेखक भी हैं। गैर-आदिवासी लेखकों में रमणिका गुप्ता, महाश्वेता देवी, प्रतिमा राय, शिनु कुमार पंकज, भाल चंन्द्र जोशी, विरेन जैन, राकेश कुमार सिंह, बजरंग बिहारी तिवारी आदि हैं।

दूसरी अवधारणा के अनुसार जो साहित्य आदिवासियों द्वारा स्वयं लिखा गया है, वह भी आदिवासी साहित्य है। इसमें स्वानुभूति और प्रामाणिक अनुभव की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति इसे अत्यंत महत्वपूर्ण, अनुभवजनित, रचनात्मक और आकर्षक बनाती है । आदिवासी लेखकों में रामदयाल मुंडा, वाहरू सोनवड़े, भुजुंग मिश्राम, चेतन मांझी, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, महादेव टोप्पो, हरिराम मीणा, पीटर पॉल एका, फादर वाल्टर वेक आदि हैं ।

तीसरी अवधारणा है, जो साहित्य आदिवासी दर्शन के तत्वों पर लिखा गया है। इसे 'आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा-पत्र' के तौर पर जाना जाता रहा है। इस अवधारणा की अगुवाई वंदना टेटे वाले आदिवासी और मूलवासी लेखकों व संस्कृतिकर्मियों के राष्ट्रीय संगठन, झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा ने की थी।

आदिवासी साहित्य मुख्यधारा से हटकर स्वयं में अपनी अलग विशिष्ट पहचान बनाता साहित्य है। यह साहित्य प्रकृति और जीवन के साथ न्याय करता हुआ समानता का संदेश देता हैं। यह साहित्य विविध सामाजिक और नैतिक मूल्यों सामूहिकता, समानता, एकता, प्रकृति प्रेम, नृत्य-गीत, संस्कृति, धर्म और जीवन–मरण, सुख-दुख, आक्रोश, लोक-जीवन दर्शन आदि की अभिव्यक्ति हुई है। आदिवासी साहित्य अपनी संस्कृति, समाज और जीवन मूल्यों के प्रति गहरे लगाव और संरक्षण का साहित्य है। समुदाय की रक्षा करते हुए जीवन के सभी पहलुओं को सुरक्षित रखना ही इस साहित्य का उद्देश्य है। आदिवासी साहित्य की संवेदना भी उसी प्रकार भिन्न है जैसे आदिवासी समाज अन्य समाजों से भिन्न है। अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा और समस्याओं से मुक्ति के लिए ही आदिवासी साहित्य की रचना हुई है। वंदना टेटे के अनुसार 'आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। साहित्य अभी सृजन की अवस्था में है। इसका प्रौढ़ रूप सामने आना अभी बाकी है।'

द्वितीय अध्याय **'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति'** नाम से है। इसके भी दो उप-अध्याय हैं। प्रथम उप-अध्याय **'आदिवासी समाज एवं संस्कृति'** और दूसरा उप-अध्याय **'आदिवासी समाज में स्त्री'** शीर्षक से है। आदिवासी श्रमशील, निष्ठावान, ईमानदार और निश्छल होते है। आदिवासी समाज जातिभेद, लिंगभेद एवं वर्गभेद पर आधारित समाज व्यवस्था पर विश्वास नहीं करता है। यह समाज समानता और पारस्परिक सहयोग भावना का कायल है। आज गैर-आदिवासी समाज के संपर्क में आकर

इस समाज में विकृति पनप रही हैं। ये कई समस्याओं का सामना तो कर ही रहे हैं, विभिन्न तरह के शोषणों का शिकार भी हो रहे हैं। विकास के नाम पर ये कई बार उजाड़ दिए जाते हैं जिससे इनकी अस्मिता खतरे में पड़ गयी है। इनकी ज़मीनों पर आज बड़े-बड़े कल-कारखाने, खदान और बाँध बन गए हैं। आदिवासी समाज मूलतः कृषि पर निर्भर है। आदिवासी पुरुषों द्वारा शराब-हड़िया का उपयोग आदिवासी समाज की एक नकारात्मक कड़वी सच्चाई है। इसका उपयोग आदिवासी पुरुष हर सुख-दुख में करते हैं। ये विदेशी शराब के आकर्षण में फँसते जा रहे हैं। इनके विदेशी शराब के लालच में आने के दुष्परिणाम आज समाज की लड़कियाँ भुगत रही हैं, वे बेहद असुरक्षित महसूस करती हैं क्योंकि शराब के चलते इनका सौदा तक कर दिया जाता है। आदिवासी समाज कभी बाहरी साजिशों का शिकार बनता है, तो कभी अकाल में भूख की समस्या, कभी अपने समाज में फैली रूढ़ि-अंधविश्वासों से जूझता है। सदा हाशिये पर पड़े रहने वाले इस समाज को समानता, प्रेम, सामूहिकता और निश्छलता वाला उनका जीवन दर्शन उन्हें एक बनाए रखता है। उन्हें टूटने नहीं देता।

आदिवासियों की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन के क्रम में यह पाया गया कि आदिवासियों की पहचान उनकी संस्कृति से ही है। अपनी विशेष संस्कृति के कारण ही ये अन्य समाज से भिन्न हैं। उनकी संस्कृति का गहरा संबंध उनके जीवन से है। आदिवासियों की संस्कृति बहुरंगी और पारंपरिक जीवन मूल्यों में आस्था रखने वाली संस्कृति है। इनके सांस्कृतिक संसार में प्रकृति–प्रेम, नृत्य-गीत, कला, धार्मिक आस्थाएँ, मिथक, सामाजिक

संस्कार, खान-पान, पौशाक, रहन-सहन एवं मनोरंजन की अन्य क्रियाएँ हैं। ये इनकी आत्मीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इतने कष्टों से जूझ रहे आदिवासियों के पास अपना कहने का कुछ है तो वह इनकी संस्कृति है। गीत और नृत्य इनके जीवन का हिस्सा है। जोहार सुख-दुख में इनका साथी है। इसका धर्म प्रकृति से जुड़ा है। सूर्य-चंद्र, पेड़-पौधे, पहाड़ धरती को ही ये पूजते हैं। इनके देवी –देवता इनके साथी हैं, जो हर सुख-दुख में इनके साथ मौजूद रहते हैं। इसका एक उदाहरण हम कवि रामडायल मुंडा की कविता में देख सकते हैं-

हमारे बूढ़े पुरखें / तुम्हारे बनाये रास्ते का /हम अनुगमन करते

हम तुम्हें गुहारते हैं / हमारे संग बैठ लो /हमारे संग बतिया लो

एक दोना हड़िया एक पत्तल खिचड़ी भात / हमारे संग पी लो खा-लो

जोहार , जोहार , जोहार [1]

आज बाहरी घुसपैठ या गैर-आदिवासी संस्कृति के आकर्षण से इनकी संस्कृतियाँ बदल रही हैं। सोची समझी साज़िश के तहत इनका धर्मांतरण किया जा रहा है। इनके हाथों में त्रिशूल व बाइबल जबरन थमाए जा रहे हैं। इस बात की चिंता भी इनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है।

कविताओं में आदिवासी स्त्रियों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आदिवासी समाज की स्त्रियाँ अपने समाज की रीढ़ हैं। ये श्रम में पुरुषों से बढ़कर आगे निकलती हैं। समाज

---

[1]आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य , (सं) डॉ.उषाकीर्ति, अतुल प्रकाशन ,कानपुर, दूसरा संस्करण, 2017, पृ. 253

की आर्थिक व्यवस्था में स्त्रियों की बहुत बड़ी भूमिका है। ये हर प्रकार के काम करती हैं जैसे कि घास काटना, लकड़ियाँ बीनना, बोझा ढोना, खेतों में काम करना। बारिश हो या धूप, सर्दी हो या गर्मी, दूसरों के घर काम-काज करना, ईंट-भट्टों में पसीना बहाना, पशु पालन आदि से लेकर घर के सारे काम-काज तक पूरी निष्ठा से करती हैं । मेहनत करना और घर चलाना, यहीं तक इनकी जिंदगी सिमट गई है। कवि भगवान गव्हाड़े अपनी कविता में लिखते हैं-

घास काटती / लकड़ियाँ बिनती / बोझ ढोती / घर बुहारती / धूप में तपती /

बारिश में भीगती / ठंड में सिहरती / कीचड़ में सनती / काँटों में चलती

औरत .....[2]

इतना कुछ सहते और करते-करते शायद वह अपने समाज के पुरुषों से भी आगे निकल गई हैं। जब प्रश्न मेहनत का हो तो निर्विवाद रूप से ये इनसे आगे हैं किंतु बात जब उनके हक की या उनकी पहचान की हो तो ये सबसे पीछे रह जाती हैं। वंदना टेटे के अनुसार आदिवासी दर्शन में स्त्री-पुरुष में कोई भेद-भाव नहीं। स्त्री-पुरुष को बराबर के हक हैं। स्त्री के भाव और विचारों को महत्ता मिलती है। इक्कीसवीं सदी की आज की आदिवासी कविताओं के अध्ययन में पाया गया कि आदिवासी स्त्रियों को अपने हक की बात करने पर दंडित किया जाता है, उसे डायन करार दिया जाता है। वह अपने ही समाज में आज असुरक्षित महसूस करती है। उसे समाज के भीतर कई यातनाएँ झेलनी पड़ रही है। हाँ, यह अवश्य है कि पूर्वोत्तर की आदिवासी स्त्रियाँ अन्य

[2] आदिवासी मोर्चा , भगवान गव्हाड़े, वाणी प्रकाशन , पहला संस्करण , नयी दिल्ली , 2015 , पृ. 54-55

क्षेत्रों की आदिवासी स्त्रियों की तुलना में अधिक स्वतंत्र हैं, किंतु गौर से देखा जाए तो अधिक स्वतंत्र माने जाने वाली पूर्वोत्तर की स्त्रियों की यह स्थिति भी केवल श्रम के मामले में ही है। यहाँ की स्त्रियाँ घर चलाने और खेती बाड़ी करने के अलावा बाज़ार-व्यवसाय चलाने, ड्राइविंग करने, जूते बनाने जैसे कार्यों में सक्षम हैं। इसका मुख्य कारण यह भी है कि पूर्वोत्तर की आदिवासी स्त्रियाँ अन्य आदिवासी स्त्रियों की तुलना में अधिक शिक्षित हैं। अपनी साक्षरता के कारण ही वे कई क्षेत्रों में स्वतंत्र हैं, इसके बावजूद ये अपने समाज में भी असुरक्षित हैं। मेघालय की कवयित्री एस्थर सिएम आदिवासी स्त्रियों की मार्मिक स्थिति सामने लाती हैं-

जिसकी आज़ादी भी लगी है दाव पर / लुटी है मासूमियत

साधन- विहीन निर्धन उस औरत को / नहीं कोई अधिकार

कि करे वह प्यार.....[3]

इनमें से बहुत सी स्त्रियाँ बलात्कार का शिकार होती हैं और पुरुषों के शोषण को सहन करती हैं। विस्थापन की त्रासदी झेलती ये उत्पीड़ित स्त्रियाँ अपनी अस्मिता व अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्षरत हैं।

तृतीय अध्याय 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी मुक्ति के प्रश्न' है। इसमें तीन उप-अध्याय हैं। पहला, 'आदिवासी संसाधनों पर कब्ज़े की राजनीति,

---

[3] युद्धरत आम आदमी , (सं.) रमणिका गुप्ता , हाशिये उलांघती स्त्री , भाग-2 ,पूर्णांक – 108,विशेषांक – 2011,(नॉटनल – ई-बुक) पृ. 394

दूसरा - 'संस्कृति संरक्षण का सवाल' और तीसरा 'आदिवासियों के पलायन की समस्या' है। वैश्वीकरण के इस दौर में आदिवासी क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है। आदिवासियों के खुशहाल जीवन को स्वार्थी पूँजीपतियों, ठेकेदारों तथा सरकार के अमला वर्ग ने तहस-नहस कर दिया है। राजनैतिक पार्टियाँ या सरकार और पूँजीपतियों द्वारा इनके संसाधनों यथा जंगल, जमीन, लोह-अयस्क, कोयला, पेड़-फूल, जंगली औषधियाँ आदि को लूटा जा रहा है। संसाधनों के मामले में आदिवासी इलाके बेहद समृद्ध हैं। संसाधनों के कब्ज़े के लिए कई दमनकारी नीतियाँ सरकार द्वारा बनाई जा रही हैं। कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, ठेकेदार, सरकारी अधिकारी आते हैं और आदिवासियों को कई प्रकार के लुभावने सपने दिखाकर उन्हें छलते हैं। कविताओं के अवलोकन से पता चलता है कि आदिवासी इन गंभीर समस्याओं से निजात पाने के लिए छटपटा रहे हैं। रविकुमार गोंड लिखते हैं-

नक्काशेदार हरे-भरे यह वृक्ष / काट रहा है, दिन- ब- दिन

छीन रहा जमीनी हक आदिवासियों से / उसे यह नहीं मालूम कि

आदिवासी ही प्रकृति के सच्चे साधक पुत्र हैं / सच्चाई से अंजान मानव भूल गया कि

पर्यावरण का संतुलन बिगड़ते ही / जल उत्प्लावन होगा, बड़े तूफान आएंगे [4]

[4] आदिवासी स्वर, रविकुमार गोंग, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण ,2017, पृ. 43

पर्यावरण शुद्धि और संसाधन संरक्षण के नाम पर नई नीतियाँ बनती तो हैं किंतु आदिवासियों के हित में इन्हें कभी क्रियान्वित नहीं किया जाता। गैर-आदिवासियों की घुसपैठ ने इनके जीवन में केवल और केवल समस्याएँ ही लायीं जिन्होंने इनके खुशहाल जीवन को पूरी तरह बिगाड़कर रख दिया। इस से इनके जल, जंगल और जमीन के छिन जाने के साथ ही इनकी संस्कृति भी खतरे में पड़ जाती है। गैर-आदिवासी संस्कृति के संपर्क में आने पर उनकी संस्कृति पर बड़ा बुरा असर पड़ रहा है। इस संपर्क के चलते उनकी भाषा, वेशभूषा, नृत्य-गीत, रीति-रिवाज, धर्म-प्रथाएँ सब शनै: शनै: बदलते जा रहे हैं। आदिवासी कविताओं में अपनी संस्कृति लुप्त होने की चिंता और भय दिखाई पड़ता है। कवयित्री ग्रेस कुजूर अपनी संस्कृति को लुप्त होते देख चिंतित है। वे कहती हैं-

किसने की है चोरी / भिनसरिया में ढेंकी के संगीत की

और उखाड़ी है किसने / 'आजी' के जाता की कील [5]

ये कवितायें हमें आदिवासी सांस्कृतिक जीवन के अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं। हम देखते हैं कि आदिवासियों की लोककला खत्म होने की कगार पर है। इनकी मूल पहचान इनकी संस्कृति से जुड़ी है। संस्कृति के विलुप्त होने के चलते इनकी अस्मिता भी खतरे में पड़ रही है।

---

[5]आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी ,(सं.) रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन , नयी दिल्ली , आवृति संस्करण ,2014, पृ. 22

इस अध्याय में पलायन की विकराल समस्या पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। संसाधनविहीन आदिवासी एक सस्ता मजदूर बन गया है। आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण आदिवासी अपने जल-जंगल, जमीन से हाथ धो बैठे हैं। पेट की मजबूरी और परिवार के भरण-पोषण के लिए आदिवासी अपने गाँव-जमीन छोड़ दूर अन्य शहरों में पलायन कर रहे हैं।

अनुज लुगुन लिखते हैं-

कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते देखा / उससे पहले नदी गई /

अब खबर फैल रही है कि / मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है

शहर में मेरे लोग तुमसे मिले / तो उनका ख्याल जरूर रखना

यहाँ से जाते हुए / उनकी आँखों में मैंने नमी देखि है

और हाँ ,उन्हे शहर का रीति- रिवाज भी तो नहीं आता [6]

गैर-आदिवासियों के बीच वे दोयम-दर्जे के व्यवहार का सामना कर रहे हैं। पलायन का सबसे बुरा असर महिलाओं पर पड़ रहा है। मुक्त बाज़ार और व्यापार के नाम पर आदिवासियों के जीवन को दाँव पर लगाया जा रहा है। आदिवासी कविताएँ इस तरह के शोषण और समस्याओं के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा तो देती ही है, साथ ही उनसे मुक्ति की कामना करती भी दिखती हैं। ये कविताएँ क्रांतिदर्शी हैं जिनका मुख्य स्वर मुक्ति का है।

---

[6] इस्पातिका, (सं.) अविनाश कुमार सिंह , वर्ष-2, जन-जून, 2012 ,अंक- 1 जमशेदपुर , पृ. 32

चतुर्थ अध्याय में 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न' पर चर्चा की गई है। इसके भी दो भाग हैं - पहला, 'विवाह, परिवार और अर्थ स्वातंत्र्य का सवाल' और दूसरा, 'स्त्री मुक्ति की राहें' । पहले उप-अध्याय में इस पर चर्चा की गई है कि आदिवासियों के बीच प्रचलित विवाह संस्था में उनकी हैसीयत कैसी है, परिवार में क्या स्थिति है। कविताओं के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि विवाह और परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के क्रम में क्या गैर-आदिवासी महिलाओं की तरह आदिवासी महिलाएं भी शोषण की शिकार हैं, फिर चाहे वह पूर्वोत्तर की आदिवासी महिलाएं हों या गैर-पूर्वोत्तर की। आदिवासी कविताएँ हमें बताती हैं कि इन समुदायों की स्त्रियों की स्थिति भी कम चिंताजनक नहीं है। लेकिन इन कविताओं में स्त्रियों के साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार के खिलाफ विद्रोह के स्वर भी फूट रहे हैं। अपने जंगल-जमीन की कभी मालकिन रहीं ये आदिवासी महिलाएं आज बाह्य आतंक और शोषण के कारण विस्थापन एवं शोषण की जिंदगी जीने को अभिशप्त हैं। कविताओं में स्त्री मुक्ति की राहें कई रूपों में सामने आई हैं। आदिवासी स्त्रियाँ आज आर्थिक, मानसिक, दैहिक, राजनैतिक, पारिवारिक शोषण के खिलाफ विद्रोह के बिगुल बजा रही हैं। ये अपने घर, परिवार और समाज को नियंत्रित करती अंध-श्रद्धाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, चूल्हा-बिस्तर तक सीमित अपनी नियति से मुक्ति के गीत गाती हैं। घर, परिवार और समाज को नयी राह दिखाती हुई ये आगे बढ़ रही हैं। वह अब अपना हक मांगती है, शिक्षा का पूरा अधिकार मांगती है। घर में केवल खाना बनाना, बच्चों की देखभाल करना मात्र उसके जीवन का लक्ष्य नहीं। परिवार वालों की दखल-अंदाजी के बिना अपना

जीवन साथी वह स्वयं चुनना चाहती हैं। झारखंड की प्रसिद्ध कवयित्री निर्मला पुतुल कहती हैं-

बाबा ,मत चुनना ऐसा वर / जो पोचई और हड़िया में डूबा रहता हो अक्सर

काहिल-निकम्मा हो / जो नहीं जानता हो 'ह ' से हाथ / उसके हाथ मत

देना कभी मेरा हाथ ![7]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर गहरा प्रहार करती ये आदिवासी स्त्रियाँ पुरुषों के स्वभाव और उनकी मानसिकता में बदलाव लाने का संकल्प लिए खड़ी हैं। रूढ़ि-आडंबर से दूर यथार्थ और अपनी पहचान की एक नयी जमीन तलाशती ये बेचैन स्त्रियाँ अब अपना इतिहास स्वयं रचना चाहती हैं। ये स्त्री अस्मिता की रक्षा तथा समाज में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करने पर बल दे रही हैं। आदिवासी स्त्रियाँ अब चेतनासंपन्न हो रही हैं। ये अपने समाज की स्त्रियों को अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित कर रहीं हैं। कवयित्री सरिता बढ़ाईक स्त्री के अस्तित्व और मुक्ति का आवाहन करती हैं। वह कहती हैं-

चूल्हे बिस्तर कि परिधि में / मुझे नहीं है रहना / गऊ चाल में चलकर नहीं है

थकना / मन में भरी है कविता / मंजूर नहीं है थकना / हे प्रियवर .....[8]

---

[7] नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005,पृ. 50

[8] नन्हें सपनों का सुख, सरिता बढ़ाईक, रमणिका फ़ाउंडेशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 47

आदिवासी कविताएं स्त्रियों को उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दे रही हैं। अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासियों ने संघर्ष और मुक्ति की गाथा का एक नया साहित्य रचा है।

पंचम अध्याय में 'इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं का भाषागत वैशिष्ट्रय' पर बात की गई है। इस अध्याय में यह समझने का प्रयास किया गया है कि अपने जीवन की कड़वी सच्चाइयों और जीवन के सौंदर्य को प्रस्तुत करने के लिए आदिवासी कविता में किस प्रकार की भाषा और शैली का प्रयोग किया गया है। साथ ही यह भी कि यह कितनी सायास है और कितनी सहज । आदिवासी कविताओं की अपनी सहज कथन-भंगिमा है। जिस प्रकार आदिवासियों का स्वभाव सरल और सहज है, उसी प्रकार उनकी काव्य भाषा भी सरलता और सहजता लिए हुए है। उनकी अभिव्यक्ति शास्त्रीय या विशिष्ट नहीं है। कविता के भाव एवं संदेश मुख्यधारा की समकालीन कविताओं से कम नहीं, बल्कि सरल-सहज शब्दों में गहरे भाव-विचार उत्पन्न करना आदिवासी कविताओं की मुख्य विशेषता रही है। आदिवासी कवियों ने रोज़मर्रा की बोल-चाल की भाषा को चुना है। बिना लाग-लपेट के जैसे वे हैं, वैसी ही भाषा भी है। भाषा में सहजता के गुण के कारण ही कविताओं के गहरे से गहरे प्रसंग भी संप्रेषणीय बन गए हैं। कविताओं में तत्सम, तद्भव और देशज, आंचलिक, उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी शब्दों के प्रसंगानुकूल प्रयोग मिलते हैं। आदिवासी जनकवि हैं, इसी कारण उनकी कविताओं में साधारण जन की भाषा मिलती है, इससे काव्य में सरलता और अर्थवत्ता सहज ही फूट पड़ी है। काव्य

भाषा में आदिवासियों के ठेठ बोली के शब्द जहाँ-तहाँ दिखते हैं, जो पाठक को आदिवासियों के और निकट ले जाते हैं। जैसे-

सारंडा में कौन लोग हाथ जोड़ा रहे हैं / ए दादा सलय सलय

नेटरहाट के पाट पर कौन लोग आग जला रहे हैं / ए दीदी सलय सलय [9]

काव्य भाषा में सरल मुहावरे और नवीन अलंकार मिलते हैं जो अत्यंत सहजता से काव्य में प्रयोग हुए हैं। उपमा अलंकार के कुछ नवीन उदाहरण हैं-

पहाड़ के छोटे-छोटे टुकड़ों-सा पहाड़ी बच्चा / आँगन में टूटे झाड़ू के समान स्त्री के दर्द [10]

तपते नंगे पहाड़ों- सी बेचैनी [11] **/ हाड़ी में भात की तरह पकता / काली कुतिया- सी**

पिता का जंगल जैसा क्रूर सौन्दर्य / धूप चुभती आलपीन-सी [12]

बिंब और प्रतीकों के माध्यम से वे अपनी बात अत्यंत अर्थपूर्ण और प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने में पूर्ण सफल रही हैं। कविताओं में कवियों ने अपने ही ढंग से अपने दैनिक जीवन की वस्तुओं, खान-पान तथा अन्य स्थितियों से जुड़े बिंबों-प्रतीकों का प्रयोग दिखाया है

---

[9] कोंजोगा , वंदना टेटे, प्यारा केर्केट्टा फ़ाउंडेशन , रांची ,पहला संस्करण ,2015, पृ. 84

[10] नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2005,पृ. 39,46

[11] सुबह के इंतजार में,हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2008,पृ. 92

[12] खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता,अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केर्केट्टा फ़ाउंडेशन , रांची ,पहला संस्करण ,2008 , पृ.28, 31,73

जिनमें मौलिकता के दर्शन होते हैं। आदिवासी लड़कियों के लिए एक सुंदर और मौलिक प्रतिकों का उदाहरण है –

लड़कियाँ / घर की छप्पर, खेत की लहलहाती फसल, चूल्हे की आग,

बूढ़ी आँखों की रोशनी और झुकी कमर की लाठी होती हैं। [13]

काव्य में अभिव्यक्ति की विविध शैलियां प्रयुक्त हुई हैं जो पूर्णत: संप्रेषणीय है। कवि की अनुभूति ठीक उसी प्रकार पाठक या श्रोता तक पहुँचती है जैसे कवि अनुभव करता है। वर्णात्मक, चित्रात्मक, भावात्मक, संवाद, व्यंग्यात्मक, प्रश्नात्मक, विचारात्मक शैलियों का सफल प्रयोग अत्यंत मौलिक ढंग से हुआ है। चित्रात्मक शैली का एक सफल प्रयोग देखते हैं-

कुत्ते भौंक रहे हैं दूर / मगर आवाज बहुत निकट जैसे /

मेरी रज़ाई पर चक्कर काटती / कान बंद करता हूँ अंगुलियों से

छाती से सटाता हूँ दोनों घुटने / घुटने तक ले जाता हूँ माथा

माथे में छिपी हुई / डरे हुए खरगोश-सी मेरी चेतना [14]

संप्रेषण के लिए जिन शैलियों को अपनाया गया वे कलात्मक ढंग से कविता में उभरती हैं, जिसके चलते कविता संवेदनापूर्ण और सजीव बनने में पूर्ण सक्षम रही है। नवीन उपमान, बिंब,

---

[13] कोंजोगा , वंदना टेटे, प्यारा केर्केट्टा फ़ाउंडेशन , रांची ,पहला संस्करण ,2015, पृ. 62

[14] सुबह के इंतजार में,हरिराम मीणा, अक्षर शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2008,पृ. 107

प्रतीक और विविध शैलियों के साथ कविता के भाव अत्यंत सहज और सरल हैं। भाषा शैली में खुलापन और ताजगी दिखती है। कहा जा सकता है कि आदिवासियों की जीवन-दृष्टि उनकी काव्य दृष्टि में झलकती है।

संदर्भ –ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ :

1. अविनाश कुमार सिंह (सं.), इस्पातिका, अंक-1, वर्ष -2, जन- जून , 2012

2. अश्विनी कुमार पंकज, खामोशी का अर्थ पराजय नहीं होता, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008

3. अश्विनी कुमार पंकज, जो मिट्टी की नमी जानते हैं, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2008

4. अश्विनी कुमार पंकज, प्रेम और युद्ध, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2009

5. अश्विनी कुमार पंकज, भाषा कर रही है दावा, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2009

6. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2013

7. एकांत श्रीवास्तव, नागकेशर का देश यह, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2016

8. चंद्रकांत देवताले, आग हर चीज में बतायी गयी थी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली,दूसरा संस्करण-1988,पहली आवृति - 2007

9. चंद्रकांत देवताले, पत्थर फेंक रहा हूँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014

10. जमुना बीनी तादार, जब आदिवासी गाता है, (नॉटनल, ई-बुक)

11. डॉ.उषाकीर्ति,डॉ.सतीश पाण्डेय,डॉ.शितलाप्रसाद दुबे(सं), आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य,अतुल प्रकाशन, कानपुर, पहला संस्करण,2012

12. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, रमणिका फ़ाउंडेशन, दिल्ली, 2004

13. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2005

14. निर्मला पुतुल, बेघर सपने, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पहला संस्करण, 2014

15. भगवान गव्हाड़े, आदिवासी मोर्चा, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015

16. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2017

17. मुन्ना साह, डेहरी, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2014

18. रणेन्द्र, थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2010

19. रमणिका गुप्ता (सं.), आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी,वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली,आवृति संस्करण - 2014

20. रमणिका गुप्ता (सं.), युद्धरत आम आदमी,अंक-107,अप्रैल- जून,2011, (नॉटनल, ई-बुक)

21. रमणिका गुप्ता (सं.), युद्धरत आम आदमी,स्त्री मुक्ति आंदोलन पर केंद्रित कविता विशेषांक, भाग-1, पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)

22. रमणिका गुप्ता (सं.), युद्धरत आम आदमी, हाशिये उलांघती स्त्री , भाग- 2,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)

23. रविकुमार गोंड, आदिवासी अभिव्यक्ति,अनंग प्रकाशन,दिल्ली,पहला संस्करण,2015

24. रविकुमार गोंड, आदिवासी स्वर, अनंग प्रकाशन, दिल्ली,2017

25. लीलाधर मंडलोई, काला बाँका तिरछा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2004

26. वंदना टेटे, कोंजोगा, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण, 2015

27. वंदना टेटे (सं.), लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020

28. वासवी, ताबेन जोम-जमीन का हिस्सा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पहला संस्करण, 2003

29.वाहरु सोनवने,पहाड़ हिलने लगा,शिल्पायन प्रकाशन,दिल्ली, 2009

30. विनोद तिवारी (सं.), पक्षधर, वर्ष-12, संयुक्तांक-25,26, जुलाई-दिसंबर,2018-जन – जून ,2019 ,दिल्ली

31. सरिता सिंह बड़ाईक, नन्हें सपनों का सुख, रमणिका फ़ाउंडेशन, नयी दिल्ली, 2008,

32. हरिराम मीणा, आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ, अनुज्ञ बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण, 2019

33. हरिराम मीणा, रोया नहीं था यक्ष, जगतराम एंड संस, नयी दिल्ली, संस्करण, 2011

34. हरिराम मीणा (सं.), समकालीन आदिवासी कविता, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2013

35. हरिराम मीणा, सुबह के इंतजार में, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, संस्करण, 2008

36. ज्ञानेंद्रपति, संशयात्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2004, पहली आवृत्ती, 2010

सहायक ग्रंथ :

1. अविनाश कुमार सिंह(सं), इस्पातिका,अंक-1,वर्ष-2,जन-जून,2012,जमशेदपुर

2. कमल स्वरूप श्रीवास्तव, भारतीय जंजातीय संस्कृति,आदि बुक्स, दिल्ली,2013

3. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, दूसरा संस्करण, 1998

4. कालिका प्रसाद (सं), बृहत हिंदी कोश, ज्ञान मंडल, वाराणसी, सातवाँ संस्करण, 1992

5. कुमार कमलेश, आदिवासी विमर्श,तेज प्रकाशन, नई दिल्ली,पहला संस्करण,2014

6. कुमार चौहान, श्रीमति रेनू चौहान, आदिवासी स्वर-सामाजिक आर्थिक जीवन,स्वर्ण जयंती, दिल्ली, संस्करण,2005

7. केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण,2014

8. गया पाण्डेय,भारतीय जंजातीय संस्कृति, कान्सैप्ट पब्लिसिंग कंपनी, नयी दिल्ली,प्रथम संस्करण,2007

9. गंगा सहाय मीणा(सं),आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015

10. डॉ.अल्पना सिंह(सं), डॉ.आलोक कुमार सिंह(सं), स्त्री मुक्ति के प्रश्न और समकालीन विमर्श, देव प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण,2015

11. डॉ.उषाकीर्ति,डॉ.सतीश पाण्डेय,डॉ.शितलाप्रसाद दुबे(सं), आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य,अतुल प्रकाशन, कानपुर, पहला संस्करण,2012

12. डॉ.जगदेव सिंह विद्यालंकार, हिंदी काव्य शास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ, दीपू प्रकशान, दिल्ली,पहला संस्करण,2004

13. डॉ.जनकसिंह मीणा(सं), अरावली उदघोष,वर्ष 25, अप्रैल-2013,अंक-99,जयपुर

14. डॉ.पंडित बन्ने,हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर,पहला संस्करण,2014

15. दुर्गाराव बाणावतु(सं), भीम सिंह(सं), साक्षात्कारों में आदिवासी, अलख प्रकाशन, जयपुर,पहला संस्करण,2015

16. मुकेश अग्रवाल, भाषा-विज्ञान एवं हिंदी भाषा, राज प्रकास्वशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2015

17. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण,2016

18. रमणिका गुप्ता(सं), आदिवासी साहित्य यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2016

19. रमणिका गुप्ता(सं),आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2015

20. रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण,2014

21. रमणिका गुप्ता(सं), आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह, सुरभि प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण,2015

22. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण,2013

23. रमणिका गुप्ता(सं), आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण,2018

24. रमणिका गुप्ता(सं), युद्धरत आम आदमी,अंक-107, अप्रैल-जून,2011, (नॉटनल, ई-बुक)

25. रमणिका गुप्ता(सं), युद्धरत आम आदमी,पूर्णांक-108, ,(स्त्री मुक्ति आंदोलन पर केंद्रित कविता विशेषांक,भाग-1), विशेषांक, 2011(नॉटनल, ई-बुक)

26. रवि कुमार गोंड(सं),महेंद्र प्रताप सिंह(सं), समकालीन मुद्दे और बहस,अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2014

27. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण,1968

28. वंदना टेटे, आदिवासी साहित्य: परंपरा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण,2013

29. वंदना टेटे(सं), आदिवासी दर्शन और साहित्य,विकल्प प्रकाशन, दिल्ली,पहला संस्करण,2016

30. वासवी, ताबेन जोम-जमीन का हिस्सा , आधार प्रकाशन, पंचकूला, पहला संस्करण,2003

31. विशाल शर्मा(सं),कोलहारे दत्ता(सं), आदिवासी साहित्य एवं संस्कृति, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण,2016

32. संजीव तंवर, विश्व की आदिवासी जनजातियाँ, अरुण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण,2014

33. हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,नयी दिल्ली,पहला संस्करण,2013

34. हरिराम मीणा(सं), समकालीन आदिवासी कविता, अलख प्रकाशन, जयपुर,पहला संस्करण,2013

पत्रिकाएँ :

1. इस्पातिका, अविनाश कुमार सिंह(सं), वर्ष-2, जन-जून 2012, अंक-1, जमशेदपुर
2. पक्षधर, विनोद तिवारी(सं), वर्ष-12, जुलाई-दिसम्बर, 2018, जन-जून, 2019, सन्युक्तांक-25,26, दिल्ली
3. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता (सं.), अंक-107,अप्रैल- जून,2011, (नॉटनल, ई-बुक)
4. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता (सं.), स्त्री मुक्ति आंदोलन पर केंद्रित कविता विशेषांक, भाग-1,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)
5. युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता (सं.), हाशिये उलांघती स्त्री , भाग- 2,पूर्णांक-108,विशेषांक-2011, (नॉटनल, ई-बुक)

इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

भूमिका

प्रथम अध्याय : आदिवासी एवं आदिवासी साहित्य : अवधारणा , स्वरूप एवं विकास

(क) आदिवासी : अवधारणा एवं स्वरूप

(ख) आदिवासी साहित्य की अवधारणा

द्वितीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त समाज एवं संस्कृति

(क) आदिवासी समाज एवं संस्कृति

(ख) आदिवासी समाज में स्त्री

तृतीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में आदिवासी मुक्ति के प्रश्न

(क) आदिवासी संसाधनों पर कब्ज़े की राजनीति

(ख) संस्कृति संरक्षण का सवाल

(ग) आदिवासियों के पलायन की समस्या

चतुर्थ अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं में स्त्री मुक्ति के प्रश्न

(क) विवाह , परिवार और अर्थ स्वातंत्रय का सवाल

(ख) स्त्री – मुक्ति की राहें

पंचम अध्याय : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविताओं का भाषागत वैशिष्ट्य

(क) भाषा

(ख) शैली

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ सूची : (क) आधार ग्रंथ

(ख) सहायक ग्रंथ

(ग) पत्रिकाएँ

अनुसंधित्सु का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

नाम : कुसुम कुमारी

जन्म : 18.11.1977

शिक्षा : बी.ए (IGNOU), 2008

बी.एड (MHTC), 2011

एम.ए (IGNOU), 2013

व्यवसाय : अध्यापिका, गवर्मेंट गोर्खा उच्च विद्यालय, खटला, आइज़ोल

स्थायी पता : गवर्मेंट कॉम्प्लेक्स, आइज़ोल, मिज़ोरम-796009

मोबाइल : 09436196274

ई-मेल : kusumkala77@gmail.com

प्रकाशन स. : आलेख- 02

1.आदिवासी कविता और हरिराम मीणा, इंटरडिसिप्लिनरी जनरल ऑफ कोण्टेंपोररी रिसर्च-अगस्त,2018

2.मिज़ो आदिवासी: नृत्य एवं त्यौहार, शोध दृष्टि,जुलाई,2018

संगोष्ठी पत्र प्रस्तुति सं. : 02

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : कुसुम कुमारी

शिक्षा : पीएच.डी.

विभाग : हिंदी

शोध-प्रबंध का शीर्षक : इक्कीसवीं सदी की आदिवासी हिंदी कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि : 04.08.2014

शोध प्रस्ताव की संस्तुति :

(i) डी.आर.सी. : 26.02.2015

(ii) बी.ओ.एस. : 11.05.2015

(ii) स्कूल बोर्ड : 21.05.2015

मिज़ोरम विश्वविद्यालय पंजीयन संख्या : 6897 of 2014

पीएच.डी.पंजीयन संख्या : MZU/Ph.D/806 of 21.05.2015

एक्सटेंशन : 20.05.2022 (2 yrs), No.16-2/MZU/Acad)/19/341-343

Dated 5th November, 2020